चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

वापसी

राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली-६

भूमिका

गत वर्ष मुझे आइसलैण्ड के नोबल पुरस्कार विजेता सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री हालडोर लैक्सनैस से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ था। जब एक कहानी-लेखक के रूप में मेरा परिचय उनसे करवाया गया, तो उन्होंने मुझसे पूछा 'आप एक कहानी कितनी बैठकों में लिखते हैं ?'

मैंने कहा, 'शुरू-शुरू में मैं प्राय: एक कहानी एक ही बैठक में लिखा करता था। उसके बाद दो बैठकों में एक कहानी लिखने लगा और अब तो तीन या चार बैठकों तक नौबत पहुंच गई है। इसका कारण यह भी है कि अब अपने समय पर मेरा अधिकार नहीं रहा।'

तब उन्होंने पूछा 'एक कहानी को आप एक ही बार में अन्तिम रूप दे लेते हैं, या दूसरी-तीसरी बार उसका परिष्कार होता है ?'

मैंने कहा, 'अपनी कहानी को प्रेस में भेजने से पहले दूसरी बार मैं पढ़ता ज़रूर हूं, पर उसमें अधिक परिवर्तन करने की ज़रूरत मुझे प्राय: अनुभव नहीं होती।'

श्री हालडोर का तीसरा प्रश्न था, 'आपकी कहानी की कल्पना का प्रथम रूप किस तरह का होता है ?'

मैंने कहा, 'केवल एक वाक्य, बल्कि बहुत बार तो केवल एक-दो शब्दों में ही मैं कहानी का केन्द्रीय भाव अपनी डायरी में नोट कर लेता हूं। बस इतना ही। समय मिलने पर उसी भाव को कहानी का मूर्त रूप देता हूं।'

तब उन्होंने मुझे अपने एक अंग्रेज़ मित्र लेखक के बारे में, जो आजकल अंग्रेज़ी के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखकों में गिने जाते हैं, वताया कि वह अत्यन्त संक्षेप में अपनी कहानी लिखकर उसे अपने ड्राअर में डाल देते हैं। कम से कम छः महीना वह उसी तरह वहां पड़ी रहती है। उसके बाद वह एक ही बैठक में उसे पूरे विस्तार से लिख लेते हैं। दूसरे ही दिन वह कहानी सम्पादक के पास चली जाती है, जो उसमें आवश्यक परिष्कार करता है।'

मेरे लिए यह बात दिलचस्प थी। पर मैंने उनसे कहा कि 'सम्पादन करना तो अब मेरा पेशा ही है।'

इसी बातचीत के सिलसिले में मैंने श्री हालडोर से कहा, 'साहित्य के सभी माध्यमों (कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना, संस्मरण आदि) में कहानी सबसे अधिक सौभाग्यशालिनी है।'

उन्होंने पूछा, 'यह किस तरह ?'

मैंनै कहा, 'यह इस तरह कि साहित्य के अन्य माध्यमों का रूप उस पूर्णता से सार्वभौम नहीं है, जिस पूर्णता से कहानी सार्वभौम है। संसार के विभिन्न देशों में कविता, नाटक, उपन्यास आदि के रूप और प्रकार में काफी भेद है। पर कहानी का रूप पूरी तरह सार्वभौम है। यों तो साहित्य मात्र की पुकार सार्वभौम है, पर यह कहना अशुद्ध न होगा कि कहानी की पुकार सबसे अधिक सार्वभौम है। कहानी की टेकनीक संसार भर के सभी देशों में एक ही है, जबकि साहित्य के अन्य माध्यमों की टेकनीक के सम्बन्ध में मतभेद की काफी गुंजाइश है। इसका प्रमाण यह है कि एक अच्छी कहानी संसार भर की किसी भी भाषा में अनुवादित होकर संसार भर के किसी भी देश में 'अच्छी कहानी' ही मानी जाएगी।'

श्री हालडोर ने जैसे बीच ही में टोकते हुए कहा, 'ठीक है साहब। पर यह तथ्य भी आप भूलिए नहीं कि एक अच्छी कहानी लिखना बहुत ही कठिन काम है।'

मैंने कहा, 'बिलकुल ठीक !'

श्री हालडोर ने कहा, 'मैं तो यहां तक कहूंगा कि अच्छी कहानियां बहुत कम लिखी जाती हैं। यह इस कारण कि साहित्य के सभी माध्यमों में सबसे कठिन माध्यम भी कहानी ही है।'

मुझे अपने से सहमत पाकर वह कहते चले गए, 'साहित्य के अन्य सभी माध्यमों में आपको इस बात का अवसर प्राप्त है कि आप चाहें तो बहक भी जाएं। पर एक अच्छी कहानी तो एक सधी हुई लीक के समान है, जिसपर से ज़रा भी इधर-उधर होने की गुंजाइश नहीं है। एक भी वाक्य कहानी में ऐसा हुआ, जिसका सीधा सम्बन्ध कहानी के केन्द्रीय भाव से नहीं है, तो बस आप पकड़ लिए जाएंगे। कवि कल्पना की आड़ ले सकता है; उपन्यासकार के

सम्मुख तो एक बहुत विशाल कैन्वस रहता ही है; निबन्ध में एक विषय का सम्बन्ध बहुत आसानी से चाहे जिस भी विषय से जोड़ लिया जा सकता है; नाटक में रंगमंच की दृष्टि से भिन्न रस ग्राह्य माने जाते हैं, पर कहानी में बहक जाने की रत्ती भर भी गुंजाइश नहीं है। इसीसे मैं कहता हूं कि अच्छी कहानी लिखना सबसे अधिक कठिन काम है।'

श्री लैक्सनैस की उस बात से मैं लगभग पूरी तरह सहमत हूं। 'लगभग' इस लिए कि साहित्य के क्षेत्र में 'कठिनता' शब्द का व्यवहार खतरनाक है। इस क्षेत्र में रुचि तथा सहज प्रतिभा कितनी ही कठिन गहराइयों को इस तरह पार कर जाती है, जिस तरह कुशल तैराक सैकड़ों गज़ गहरे पानी में मज़े के साथ तैर जाता है। फिर भी यदि किसी आलोचक के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि कहानी लिखने के लिए गहरी सूझ-बूझ के साथ इस बात का ज्ञान रहना भी आवश्यक है कि कहानी एक लगभग अदृश्य लकीर पर चलने के समान है, इस लकीर को तालाश कर सकने की शक्ति कहानी-लेखक में होनी चाहिए।

कहानी क्या है और उसकी परिभाषा क्या है, इस सम्बन्ध में अपनी राय मैं 'तीन दिन' नामक पिछले कहानी-संग्रह में व्यक्त कर चुका हूं। उसी वक्तव्य में मैंने कहा था कि कहानी स्वयं अपने में इतनी नवीन है कि 'नई कविता' के समान उसके साथ नया विशेषण जोड़ना एकदम निरर्थक होगा।

पर इस बीच मैंने पाया है कि 'नई कहानी' शब्द का व्यवहार खुले आम होने लगा है। 'आजकल' का सम्पादक होने के नाते पिछले कुछ वर्षों से मुझे हिन्दी साहित्य के लेखन और प्रकाशन की वर्तमान गतिविधि से सुपरिचित रहने की असाधारण सुविधाएं प्राप्त हैं। और मेरी धारणा है कि कहानी के साथ 'नई' संज्ञा का प्रयोग मुख्यत: उन लेखकों की ओर से हुआ है, जो कुछ वर्षों से कहानी लिख रहे हैं, पर उन्हें जितनी मान्यता प्राप्त हुई है, उससे वे सन्तुष्ट नहीं हैं।

अन्य सभी शब्दार्थों के समान 'नयापन' भी सापेक्ष है। इससे किसी वस्तु या भाव को नया या पुराना कहने में कोई हर्ज नहीं है। इसमें भी सन्देह नहीं कि पिछले कितने ही वर्षों से, विशेषत: दूसरे महायुद्ध से, ज्ञान-विज्ञान के

सभी क्षेत्रों में असाधारण प्रगति हुई है। इस युग में मानव-समाज में जो बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं, उनके कारण आज के युग को 'नया युग' कहने में भी अनौचित्य नहीं है। यों भी, अच्छा हो, चाहे बुरा हो, वर्तमान काल ही तो 'नया' होता है। इन अर्थों में आप चाहें तो आज के विश्व के सभी क्रिया-कलापों को 'नया' कहकर सम्बोधित कर सकते हैं।

इधर कला और साहित्य के क्षेत्र में भी बहुत-सा 'नयापन' इस युग में आया है। इस नएपन ने चित्रकला का रूप ही बदल कर रख दिया है। सुर-रिअलिज़्म, क्यूबिज़्म, और इम्प्रेशनिज़्म आदि से चित्रकला जहां एक ओर अत्यन्त दुरूह और दुर्ज्ञेय बन गई है, वहां दूसरी ओर उसमें बोगसपन का बहुत बड़ा अवसर उत्पन्न हो गया है। अंकन की दृष्टि से आज की चित्रकला के चित्रण बहुत आसान प्रतीत होते हैं। एक साधारण दर्शक को यह प्रतीति होती है कि जिन लोगों का रेखांकन तक पर प्रभुत्व नहीं है, जो अनुपात और छाया-प्रकाश की सूक्ष्मताओं को भी पूरी तरह नहीं समझते, वे ऊंचे दर्जे के 'नये' चित्रकार मान लिए जाते हैं। पर मातीस और पिकासो जैसे महान् कलाकारों की नवीन शैलियों की कला का मूल्यांकन करने के लिए दर्शकों को अपनी परम्परागत रुचियों में निस्सन्देह कुछ परिवर्तन करना होगा। नई चित्रकला की कृतियों में साधारण दर्शक चाहे ज़रा भी रस न ले पाए, पर इसी आधार पर उसे बोगस नहीं कहा जा सकता। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि चित्रकला का यह नयापन इस क्षेत्र के परम्परागत चित्रों को किसी भी तरह अपने से हीन कोटि का सिद्ध नहीं कर सकता। बल्कि लोकप्रियता और मूल्य की दृष्टि से परम्परागत शैलियां अभी तक बढ़ रही हैं।

नएपन से प्रभावित होने की दृष्टि से चित्रकला के बाद दूसरा स्थान कविता का है। नई कविता को लेकर हिन्दी-जगत् में काफी वाद-विवाद हो चुका है। छन्द, अलंकार, अनुप्रास आदि के बन्धनों में कैद कविता आज के युग में जिस तरह सर्वग्राही और निर्बन्ध बन गई है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। मेरा ख्याल है कि आज की इस नई कविता की कोई एक परिभाषा तक कर सकना भी बहुत कठिन है। वस्तु और शैली दोनों की दृष्टि से आज की नई कविता प्राचीन धारणाओं से एकदम भिन्न है। नई कविता का एक खासा बड़ा भाग साधारण पाठकों के लिए दुर्ज्ञेय है। इसी दुर्ज्ञेयता की आड़ लेकर

आज कविता के नाम से अर्ध प्रलाप प्रतीत होने वाली रचनाएं भी प्रकाश में आने लगी हैं। पर उसके लिए आप नई कविता को दोष नहीं दे सकते। फिर भी यह स्पष्ट है कि यह 'नई कविता' पुरानी कविता से अधिक लोकप्रिय, अधिक उन्नत अथवा अधिक प्रभावशालिनी नहीं है। साथ ही इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस नई कविता के स्थायित्व की परीक्षा होना अभी बाकी है, जबकि वाल्मीकि, व्यास, होमर, कालिदास, शेक्सपियर, तुलसी आदि की कविताएं महाकाल की इस एकमात्र सच्ची परीक्षा में पूरी तरह उत्तीर्ण हो चुकी हैं।

साहित्य, कला, नृत्य, संगीत आदि सभी ललित कलाओं पर इस नएपन का जो कम-अधिक प्रभाव पड़ा है, उसकी चर्चा किए बिना मैं यहां यह कहना चाहता हूं कि कहानी के क्षेत्र में 'नई कहानी' नाम की कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि साहित्य का 'कहानी' नामक यह माध्यम (जिसे अंग्रेजी में 'शार्ट स्टोरी' कहते हैं) स्वयं पूर्णतः एक नया माध्यम है, जिसका जन्म हुए अभी १०० बरस भी नहीं बीते हैं। 'नई कहानी' का अभिप्राय यदि वर्तमान युग की कहानी को पुरानी या मध्यकालीन कथा-कहानियों से पृथक् करना होता, तो उसमें कुछ अर्थ भी था। पर जब नई कहानी को आज के युग में उत्पन्न कहानी नामक साहित्यिक माध्यम से पृथक् रूप में पेश किया जाता है, तो उसका स्पष्ट अभिप्राय यही है कि ऐसा करने वाला व्यक्ति कहानी की नवीनता और सार्वभौमिकता से अनजान है और वह इस माध्यम के सधे हुए रूप तथा व्यापक क्षेत्र से भी अनभिज्ञ है।

और फिर कोई चीज़ नई है, इसी कारण अच्छी नहीं कही जा सकती और कोई चीज़ पुरानी है, इसी कारण वह हेय नहीं मानी जा सकती। साहित्य की पुकार सार्वभौम और सर्वकालीन है क्योंकि वह स्थायी अनुभूतियों और चिरन्तन सत्यों का चित्रण करता है। किसी रचना के स्थायित्व और महत्त्व का वास्तविक अन्दाज़ तभी मिलता है, जब देश और काल की सीमा को अतिक्रान्त कर लेने के बाद भी वह प्रभावशाली और रसोत्पादक सिद्ध होती है। इन परिस्थितियों में 'नए' और 'पुराने' की बहस का अधिक महत्त्व नहीं है। कहानी इसी युग की उपज है। कहानी की परम्पराएं, कहानी की टेकनीक, कहानी का क्षेत्र और कहानी की पुकार—ये सब सार्वभौम हैं। किसी

कहानी पर समकालीन परिस्थितियों और सवालों का सीधा प्रभाव अवश्य पड़ सकता है, और आज से पूर्व लिखी गई कहानियों में आज की घटनाओं का हवाला आप निस्संदेह प्राप्त नहीं कर सकते। पर कहानी क्या है, यह समझ लेने के बाद आपको इन बातों का महत्त्व अधिक प्रतीत नहीं होगा, क्योंकि साहित्य का यह माध्यम प्रायः वहीं सफल और प्रभावशाली सिद्ध होता है, जहां यह आधारभूत सत्यों और तत्त्वों को छूता है।

मेरे इस संग्रह में जो कहानियां हैं, उन्हें मैं किसी तरह के आदर्श या चैलेंज के रूप में पेश नहीं कर रहा हूं। इनमें से कितनी ही कहानियों की पृष्ठभूमि मैं दे तो सकता हूं, पर उस प्रलोभन का भी मैं संवरण कर रहा हूं। इन कहानियों को लिखते हुए और इन्हें पूरा कर जो आनन्द और जो सन्तोष मुझे प्राप्त हुआ था, वह मेरे जीवन की अमूल्य सम्पत्ति है।

रक्षा बन्धन
४, पटौदी हाउस
नई दिल्ली

—*चन्द्रगुप्त विद्यालंकार*

कहानी-क्रम

वापसी

वासिली अब एक बहादुर सिपाही था। पेशे से वह फौजी नहीं था, खारकोव के नजदीक लिखोविडोवका नामक एक गांव का वह एक महत्त्वपूर्ण किसान था। बीजों, पौधों और जानवरों की बीमारियों का विशेषज्ञ होने के कारण सारे गांव में उसकी धाक और प्रतिष्ठा थी। वासिली का घर गांव भर के लोगों को मुफ्त, परन्तु बहुमूल्य सलाह-मशविरा देने का अड्डा बना रहता था। वही वासिली २० जून, १९४१ को, जिस दिन जर्मनी ने रूस पर अचानक हमला कर दिया, रूसी फौज में शामिल हो गया। अपनी सुन्दर पत्नी और दो लड़कियों से विदा लेकर वह खारकोव चला गया।

बहुत जल्द यह साबित हो गया कि वासिली बहुत ऊंचे दर्जे का एक सिपाही है। उसका ओहदा बढ़ा दिया गया और उसे फ्रण्ट पर भेज दिया गया। पूरे २८ महीनों तक वासिली फ्रण्ट पर रहा। इस लम्बे अरसे में रूसी फौजों को लगातार पीछे हटना पड़ा। पीछे हटते हुए रूसी फौजों को जल्दी-जल्दी में पचासों काम करने होते थे। उनकी कोशिश रहती थी कि दुश्मन के हाथ एक भी ऐसी चीज़ न लगे, जिससे उसका बल बढ़े। किस चीज़ की गांव वालों को ज़रूरत है और कौन-कौन-सी चीज़ें दुश्मन के काम आ सकती हैं, इस बारे में वासिली एक विशेषज्ञ माना जाने लगा। फौज में उसकी प्रतिष्ठा और अधिक बढ़ गई।

वासिली की इस बढ़ी हुई प्रतिष्ठा से उसे यह नुकसान पहुंचा कि वह अपनी फौज के लिए लगभग अपरिहार्य हो गया। उसे छुट्टी मिलना असम्भव हो गया। जिस तरह एक बड़े टैंक को लड़ाई के मैदान से दूर ले जाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती, उसी तरह वासिली को फ्रण्ट से दूर भेज सकना लगभग असम्भव माना जाने लगा।

पीछे हटते हुए अपना सभी कुछ बरबाद करते जाने की रूसी नीति से क्रमशः जर्मन फौजी इतने जल-भुन गए कि वे निरीह रूसी बूढ़ों, बच्चों और स्त्रियों पर मनमाना जुल्म करने लगे। रूसी गुरिल्ला जीती हुई जर्मन फौजों को इतना परेशान करते थे कि कभी-कभी तो जर्मनों की जीत उन्हें हार के समान महंगी पड़ती थी। इसका गुस्सा जर्मन फौजी निरीह रूसी स्त्रियों, बूढ़ों और बच्चों पर निकालते थे। परिणाम यह हुआ कि बहुत जल्द रूसी और जर्मन एक दूसरे से गहरी नफरत करने लगे। यह रूसी और जर्मन-दुश्मनी सांप और नेवले की दुश्मनी से कहीं बढ़कर हो गई।

रूसी किसानों पर जुल्म करते हुए अगर कोई जर्मन रूसी सैनिकों के हाथ पड़ जाता, तो उसकी बुरी गत बनाई जाती थी। परन्तु वासिली उन लोगों में से था, जो ऐसे मौकों पर भी अपने साथियों को किसी जर्मन पर जुल्म न करने देता था। वासिली प्रायः कहा करता था, 'जर्मनों की तरह अगर हम भी जंगली पशु बन गए, तो हममें और नाज़ियों में फ़र्क ही क्या रह गया? हम कम्यूनिस्ट सिपाहियों को कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए, जिससे सिपाहियों की बहादुराना संस्था की प्रतिष्ठा को दाग लगे।'

क्रमशः जर्मन आगे बढ़ते आए। वासिली का गांव, कस्बा, प्रांत सब का सब नाज़ियों के अधिकार में चला गया। वासिली को अपनी पत्नी और बच्चों की खबरें मिलनी बन्द हो गईं। वासिली पर एक तरह का जनून सवार हो गया। बीसों बार वह मौत के मुंह में कूदा, मगर कामयाबी के साथ जिन्दा बच आया। आखिर वासिली को यह सौभाग्य भी प्राप्त हुआ कि वह संसार के अब तक के संपूर्ण इतिहास की सबसे अधिक बहादुराना लड़ाई—स्तालिनग्राद की लड़ाई—में भी हिस्सा ले सके। हज़ारों तोपों, सैकड़ों टैंकों और अनगिनत हवाईजहाज़ों की दिन-रात की अग्निवर्षा से स्तालिनग्राद की अधिकांश गगनचुम्बी इमारतें ज़मींदोज़ हो गईं, मगर वासिली जैसे सिपाहियों ने स्तालिनग्राद में बहादुरी का एक नया स्टैण्डर्ड कायम करके दिखा दिया। स्तालिनग्राद भूमिसात हो गया, मगर जीत भी स्तालिनग्राद की ही हुई।

स्तालिनग्राद की इस जीत ने जैसे रूस की किस्मत ही बदल दी। भाग्य का चक्र अब दूसरी ओर को घूम गया। वासिली के बटालियन के कमाण्डर को अब वासिली का भी ध्यान आया। उसे बहादुरी का सबसे बड़ा तमगा दिया

गया और इसके साथ ही उसे यह भी बताया गया कि उसकी फौज अब खारकोव की ओर रवाना हो रही है, और खारकोव पहुंचने के साथ ही साथ वह अपने परिवार से मिलने के लिए दस दिन की छुट्टी ले सकेगा।

भागते हुए जर्मनों का पीछा करते हुए वासिली की फौज बिजली की तेज़ी से खारकोव तक आ पहुंची। मालूम हुआ कि वासिली के गांव पर अभी तक जर्मनों का कब्ज़ा है। अपने कमाण्डर से इजाज़त लेकर अपने कुछ चुने हुए साथियों के साथ वासिली उसी रात अपने गांव के लिए रवाना हो गया।

जब वासिली अपने साथियों के साथ लिखोविडोवका गांव के नज़दीक पहुंचा, तो सुबह हो गई थी, मगर सूरज अभी तक गहरी धुन्ध में छिपा हुआ था। आसमान से तेज़ी के साथ बरफ गिर रही थी, फिर भी दूर ही से वासिली ने देखा कि गांव के कई हिस्सों से गहरा धुआं और आग के शोले निकल रहे हैं। वह समझ गया कि जर्मन गांव से भाग गए हैं और भागते हुए गांव को आग लगाते गए। यह गनीमत थी कि गिरती हुई बरफ के कारण यह आग अधिक फैलने नहीं पाई थी।

सबसे पहले वासिली और उसके साथियों ने आग बुझाने में मदद दी। बरफ गिरने का वेग और भी अधिक बढ़ गया था, इस कारण आग बुझाने में इन लोगों को अधिक वक्त नहीं लगा। आग बुझने के साथ ही साथ वासिली के दिल में स्वभावतः यह इच्छा पैदा हुई कि वह अपने बीवी-बच्चों से जाकर मिले। वह उधर जाने ही वाला था कि नज़दीक के अर्द्धदग्ध मकान की ओट में से उसे किसी औरत के सिसक-सिसककर रोने की आवाज़ आई। रहमदिल वासिली से रहा नहीं गया। वह उसी ओर चल पड़ा।

मकान के पीछे एक खुली जगह थी। वासिली ने देखा, उसी खुली जगह में बैठी एक औरत सिसक रही है। मालूम होता है, वह बहुत देर से रो रही थी, और रोते-रोते उसकी ताकत ने जवाब दे दिया था। अब वासिली को देखकर वह फिर से ऊंचे स्वर में रोने लगी।

वासिली ने रूस और जर्मनी की लड़ाई में पूरे २६ महीनों तक हिस्सा लिया है और इस अरसे में भयंकर से भयंकर वारदातें देखी हैं, मगर ऐसा भयंकर दृश्य तो शायद उसने भी कभी नहीं देखा। मैदान में सब जगह श्वेत बरफ बिछी हुई है और उस बरफ पर दो बच्चों की अधजली काली लाशें पड़ी

हैं—छह साल का एक लड़का और चार साल की फूल की कली-सी एक लड़की! और रोने वाली इन दोनों बच्चों की मां है। मां ने बताया, 'कल रात जब जर्मन यहां से जाने लगे, तो उन्होंने हमारे मकानों में आग लगानी शुरू की। हम सब लोग तो भागकर छिप गए। ये बच्चे कहीं दूर पर खेल रहे थे, मेरा ख्याल था कि ये अपनी चाची के घर गए हैं। मैं अभागी दूर के उस गढ़े में जाकर छिप रही। वहां से मैं सब कुछ देख रही थी। घर में आग लगी देखकर ये बच्चे दौड़कर इधर आए और एक दूसरे से चिपककर, डरी हुई निगाह से मकान की ओर देख ही रहे थे कि पांच-सात जर्मन फौजियों ने इन्हें पकड़ लिया। बच्चों को देखते ही मैं गढ़े से निकलकर उनकी ओर बढ़ी, पर जर्मन फौजियों को देखकर मैं फिर से गढ़े में जा छिपी। मुझे यकीन था कि आखिर ये पशु नहीं हैं। ये निरीह बच्चों को तो छोड़ ही देंगे। दो-तीन मिनट तक उन जर्मनों में कोई सलाह-मशविरा होता रहा। उसके बाद दो जर्मनों ने इन दोनों बच्चों को उठाकर एकदम इसी जलती हुई आग में फेंक दिया। जलते हुए मकान की रोशनी में मैंने यह सब देखा। मैंने अपने कानों से इन मासूम बच्चों की आखरी चीखें भी सुनीं। बच्चों को आग में फेंकते ही वे जर्मन यहां से चले गए। मैं चिल्लाई, कुछ पड़ोसी इधर-उधर से निकलकर मेरी मदद को भी आए। हम लोगों ने धधकती आग से इन बच्चों को निकाल तो लिया, मगर आप लोग देख ही रहे हैं कि ये किस हालत में हैं।'

बहादुर वासिली से वहां खड़ा न रहा गया। उसने अनुभव किया कि दो मासूम बच्चों की इन अधजली लाशों को यदि उसने क्षण भर भी और देखा, तो वह पागल हो जाएगा। एक शब्द भी बोले बिना उसने 'अवाउट टर्न' की और वहां से इतनी तेजी से रवाना हुआ, जैसे किसी भूत से डरकर भाग रहा हो। वह अपने परिवार के लिए अत्यधिक चिन्तित हो उठा था। एक सांस में भागकर जब वह अपने मकान के नज़दीक पहुंचा, तो यह देखकर उसे ज़रा तसल्ली हुई कि न सिर्फ उसका मकान ही सही-सलामत है बल्कि उसका बाग-बगीचा सब ठीक हालत में है। मगर उसी क्षण उसने यह अनुभव किया कि यह क्या? यह सन्नाटा कैसा है? एकदम मौत का-सा सन्नाटा।

बरामदे में पहुंचकर वासिली ने बड़ी घबराई हुई-सी दशा में किवाड़ खटखटाया, पर कोई उत्तर नहीं मिला। क्रमशः अधिकाधिक ऊंची आवाज़ में

वासिली ने किवाड़ खटखटाया—दूसरी बार, तीसरी बार, चौथी बार, मगर कहीं से कोई जवाब नहीं आया। वासिली सहन में उतर आया और उसने आवाज दी, 'अन्ना ! प्यारी अन्ना !' यह उसकी पत्नी का नाम था। उसकी ऊंची आवाज़ अब बुरी तरह कांप रही थी।

अगले ही क्षण उसे एक चिरपरिचित स्वर सुनाई दिया—'हज़ूर !'

वासिली ने देखा, उसका बूढ़ा पड़ोसी सोबर चला आ रहा है। वासिली ने बड़ी बेकली से पूछा, 'कहो सोबर, मेरी अन्ना कहां है ? लिज़ा और मार्या कहां हैं ?'

सोबर ने कहा, 'बाग़ के पीछे एक गढ़े में वे छिपे हुए हैं। तुम्हारे मकान में जर्मन कमाण्डर ने अपना अड्डा बना लिया था, उसीके डर से वे अब तक वहीं छिपे हुए हैं। तुम ज़रा ठहरो, मैं उन्हें बुला लाता हूं।'

वासिली की जान में जान आई। बड़ी उद्विग्नता के साथ वह अपनी पत्नी और बच्चों का इन्तज़ार करने लगा। बहुत जल्द उसने एक नारी-मूर्ति को अपनी ओर आते हुए देखा। ओह, क्या यही अन्ना है। अन्ना को वह एक युवती के रूप में यहां छोड़ गया था। उसी अन्ना के चेहरे पर अब झुर्रियां पड़ी हुई हैं। उसका हाथ पकड़कर यह जो कमज़ोर-सी लड़की चली आ रही है, यह मार्या होगी। अब पांच साल की मालूम होती है। वासिली के चेहरे पर मुस्कराहट छा गई। आगे बढ़कर उसने अपनी पत्नी को छाती से लगा लिया। मगर यह क्या ? अपने प्राणप्रिय के आलिंगन में बद्ध होकर भी अन्ना के चेहरे पर मुस्कराहट की झलक तक नहीं आई। वासिली को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह किसी चेतना-रहित, ठण्डी देह का आलिंगन कर रहा हो। वासिली ने अपनी छोटी लड़की को गोद में उठा लिया और अन्ना से पूछा, 'लिज़ा कहां है ? अब तो वह बहुत बड़ी हो गई होगी।'

अन्ना की जड़वत् आंखों में आंसू भर आए। उसने बोलना चाहा, पर मुंह से आवाज़ नहीं निकली। होंठ ज़रा-से कांपकर रह गए। सिर्फ उंगलियों से वह बाग की ओर कांपता-सा इशारा कर पाई। वासिली ने समझा कि शायद लिज़ा बीमार है। वह अन्ना का हाथ पकड़कर उसे मकान के पीछे की ओर ले चला। पड़ोसी सोबर चुपचाप साथ-साथ चल रहा था।

बाग का मैदान बरफ से ढका हुआ था। क्षण भर के लिए वासिली को

मालूम हुआ कि वह कोई सपना देख रहा है। आज सुबह का देखा हुआ वह महाभयंकर और हृदय-विदारक दृश्य जैसे उसका पीछा ही नहीं छोड़ना चाहता। यहां भी तो बाग के कोने में सफेद-सफेद बरफ पर एक बच्चे की अधजली लाश पड़ी है।

सहसा अन्ना चीखकर रो पड़ी, बच्ची मार्या सिसकने लगी और बूढ़ा सोबर आंसू पोंछने लगा। तब जाकर वासिली समझा कि वह सपना नहीं देख रहा। यह सब अटल और ध्रुव सत्य है। सामने उसकी प्यारी बेटी लिज़ा का अधजला शरीर पड़ा है। उसकी लिज़ा सचमुच बड़ी हो गई थी, उसका शरीर निखर आया था। कल तक वह ज़िन्दा थी। पूरे २९ महीनों तक वह बाप के वापस आने का इन्तज़ार करती रही। और उसके बाद····?

वासिली एकाएक बहुत गम्भीर हो गया। सिपाही की पूरी चेतना जाग्रत हो गई। अपने पर पूरा नियन्त्रण रखकर उसने अपनी रोती हुई पत्नी के कन्धे पर हाथ रखा और कहा, 'अन्ना, धीरज धरो और मुझे बताओ कि आखिर यह हुआ क्या है ?'

अन्ना फिर भी चुप रही, पर बूढ़े सोबर ने कहना शुरू किया, 'जर्मन कमाण्डर ने तुम्हारे मकान को अड्डा बना लिया, तो अन्ना और बच्चे बाग की उन कोठरियों के पिछले हिस्से के एक गढ़े में छिपकर रहने लगे। गांव के सब लोगों की कोशिश थी कि जर्मनों को यह पता न लगे कि अन्ना का पति फौजी अफसर है। जिस तकलीफ से अन्ना और उसके बच्चों को ये दिन काटने पड़े···'

वासिली ने बीच ही में टोककर कहा, 'वे सब बातें जाने दो चचा ! मुझे सिर्फ इतना ही बताओ कि लिज़ा को क्या हुआ है ?'—और इतना कहकर वह लिज़ा की लाश के एकदम समीप जा बैठा और धीरे-धीरे उसके अधजले चेहरे पर हाथ फेरने लगा।

क्षण भर तक सोबर चुप रहा, जैसे आगे कहने की ताकत जमा कर रहा हो। उसके बाद कांपती आवाज़ से वह बोला, 'परसों जर्मन कमाण्डर का जन्मदिन था। रात को उसने अपने कुछ दोस्तों के साथ खूब शराब पी। जब सब लोग चले गए और वह अकेला रह गया, तो उसने अपने जर्मन अर्दली से कहा कि कोई लड़की पकड़कर लाओ। आधी रात का वक्त था। अर्दली को

अन्ना और बच्चों की जगह मालूम थी। वह बदमाश वहां जा पहुंचा। ये सब लोग वहां गहरी नींद में सोए हुए थे कि वह चुपचाप १५ बरस की लिज़ा को वहां से उठा लाया। बाहर आते ही ठण्डी हवा के झोंके से लिज़ा जाग गई, तो अर्दली ने उसका मुंह दबा दिया, ताकि वह चिल्ला न सके।

'लिज़ा थी तो सिर्फ पन्द्रह बरस की, मगर उसके जिस्म का उभार बहुत आकर्षक रूप से निखर आया था। जर्मन कमाण्डर ने जब उसपर बलात्कार करना चाहा, तब पहले तो वह बहुत अनुनय-विनय करती रही। परन्तु जब वह शराबी शैतान बाज़ नहीं आया और उसने लिज़ा को अपनी ओर खींचा, तो लिज़ा ने इतनी ज़ोर से उसके गालों पर दांत गड़ाए कि उस बदमाश का एक गाल कट ही गया। तब उस जानवर ने उसी वक्त पिस्तौल निकाली और लिज़ा का काम तमाम कर दिया। जब उसे होश आया, तो अपना यह अपराध छिपाने के लिए उसने लिज़ा की फूल-सी देह को कम्बल में लिपटवाकर उसपर पेट्रोल छिड़कवाया और आग लगा दी।'

इतना कहकर सोबर चुप हो गया। यह सब सुनकर भी वासिली चुपचाप बैठा रहा। न वह चिल्लाया, न रोया और न सिसका ही। चुपचाप अपलक नयनों से वह अपनी प्यारी लिज़ा के अधजले शरीर की ओर देखता रह गया।

अन्ना अब तक संभल गई थी। वह अपने पति के पास आ खड़ी हुई और उसके बालों में प्यार से उंगलियां चलाने लगी। परन्तु अब पूरा प्रयत्न करके भी वह वासिली का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाई। वासिली अब भी उसी तरह एकटक लिज़ा के अधजले शरीर की ओर देख रहा था। चुपचाप। न उसकी आंखों में आंसू थे और न उसके कण्ठ में स्वर था।

सहसा वासिली को अनुभव हुआ, जैसे यह सामने पड़ा हुआ, अधजला, मसले हुए फूल-सा जिस्म उसकी लाड़ली बेटी लिज़ा का जिस्म नहीं है, यह तो उसकी महाशक्तिशालिनी मां—रूस माता के हज़ारों-लाखों निरीह बच्चों का प्रतीक है! और वासिली जानता है कि वह कौन-सा महादानव है, जिसने रूस-माता के घर के विशाल आंगन को एक महाश्मशान के रूप में परिणत कर दिया है।

वासिली ने अपने में एक नई शक्ति और नई जलन का अनुभव किया और वह चुपचाप उठ खड़ा हुआ। उसने अपनी पत्नी को यह भी नहीं बताया कि

वह छुट्टी लेकर आया है। मार्या को प्यार कर और अन्ना से विदा लेकर वह उसी वक्त खारकोव के लिए रवाना हो गया।

वासिली के बटैलियन के कमाण्डर को यह देखकर बहुत हैरानी हुई कि वासिली छुट्टी के पहले ही रोज़ खारकोव वापस लौट आया है और अनुरोध कर रहा है कि उसकी छुट्टी मंसूख कर दी जाए। जब तक लड़ाई जारी है, उसे एक क्षण की भी छुट्टी नहीं चाहिए। २६ महीने ही क्या, अगर लड़ाई २६ बरसों तक भी जारी रहे, तब भी वह ज़िन्दा रहते नाज़ी जर्मनी के खिलाफ होने वाली इस लड़ाई से कभी एक लहमे की भी छुट्टी नहीं मांगेगा !

वासिली अब एक बदला हुआ शख्स था। उसकी बहादुरी और उसकी समझदारी पहले से भी बढ़ गई थी, परन्तु उसपर एक तरह का जनून सवार हो गया था। 'जर्मन' नाम से ही जैसे उसे गहरी नफ़रत हो गई थी। अपनी डायरी में उसने ये तीन वाक्य दर्ज कर लिए थे :

किसी जर्मन के लिए क्षमा नहीं है !

किसी जर्मन के लिए रहम नहीं है !

किसी जर्मन को मारना एक बहुत बड़ा सवाब है !

और मालूम नहीं, रूसी फौज में इस तरह के कितने वासिली थे, जो प्रति-हिंसा की धधकती आग से हर वक्त दहका करते थे।

वासिली को अब अपनी ज़िन्दगी से एक तरह का मोह हो गया। बहादुर तो अब वह पहले से भी ज़्यादा था, परन्तु पहले के समान मौत के मुंह में नहीं कूदता था। अब वह ज़िन्दा रहना चाहता था और महज़ और अधिक जर्मनों को मारने के लिए ज़िन्दा रहना चाहता था। यही वजह थी कि पोलैंड की एक घमासान लड़ाई में जब वासिली गोली खाकर ज़ख्मी हो गया, तब उसके दुःख का पारावार न रहा। क्योंकि ज़ख्मी होकर वह युद्ध में हिस्सा लेने के अयोग्य हो गया था। लड़ाई के मैदान में वासिली को बेहोशी की हालत में पाया गया था, और उसी हालत में वह अस्पताल में भर्ती कर दिया गया था।

वासिली को जब अस्पताल से छुट्टी मिली, तब तक जर्मन सेनाएं बहुत दूर चली गई थीं और लड़ाई का फ्रंट जर्मनी के फ्रैंकफर्ट नगर तक जा पहुंचा था। रूसी फौजें फ्रैंकफर्ट को घेर लेने का प्रयत्न कर रही थीं और जर्मन अजीब

मक़ते की-सी हालत में थे। हिटलर का हुक्म था कि लड़ते-लड़ते जान देदो, मगर पीछे मत हटो। फ्रैंकफर्ट के फौजी अफसर यह जानते थे कि रूसियों की सुसज्जित, सुसंगठित, विशाल सेना का बढ़ता हुआ प्रवाह अब वे किसी भी दशा में नहीं रोक सकते। नगर की रक्षा करना असम्भव था और पीछे हटने की उन्हें इजाज़त नहीं थी। रूसियों के सामने आत्मसमर्पण करने की बात भी वे नहीं सोच सकते थे, क्योंकि उन्हें हुक्म था कि यदि किसी जर्मन पर यह शक हो जाए कि वह रूसियों के सम्मुख आत्मसमर्पण करने जा रहा है, तो उसे गोली मार दो—चाहे वह कितना ही बड़ा अफसर क्यों न हो। सिर्फ मुमकिन था जान दे सकना या गिरफ्तार हो जाना, और जर्मन फौजी यही कर रहे थे।

सबसे बड़ी मुश्किल फ्रैंकफर्ट के नागरिकों की थी—खास तौर से बच्चों, बूढ़े मर्दों और बूढ़ी औरतों की। नगर छोड़कर भाग सकने के लिए उनके पास कोई सुविधा नहीं थी। नगर की एक-एक इमारत से किलेबन्दी का काम लिया जा रहा था। रूसी हवाई जहाज़, रूसी टैंक और रूसी तोपें फ्रैंकफर्ट की इमारतों को तेज़ी के साथ ज़मींदोज़ करते जा रहे थे।

आज सुबह ही वासिली इस फ्रण्ट पर पहुंचा था और दिन भर उसने अपने मन की महीनों की हवस जी भर कर निकाली थी। उसकी आंखों के सामने हज़ारों जर्मन फौजी, और जर्मन नागरिक हताहत हो रहे थे। फ्रैंकफर्ट का बुरा हाल बना दिया गया था। पिछले एक युग से (लड़ाई के मैदान में ४४ महीनों का अरसा एक युग नहीं तो क्या है!) वासिली इसी दृश्य के सपने देखता आ रहा है। कब वह स्वयं किसी प्रमुख जर्मन शहर की वही हालत बना देने के काबिल होगा, जो हालत लड़ाई के शुरू से जर्मन फौजी रूसी नगरों की बनाते आए हैं। आज उसने सचमुच अनुभव किया कि फ्रैंकफर्ट का अग्निकांड उसके गांव लिखोविडोवका के अग्निकांड से कहीं अधिक बड़ा है।

सांझ हो गई थी कि फ्रैंकफर्ट की जलती हुई इमारतों का निरीक्षण करने के लिए वासिली अकेला ही आगे बढ़ गया। आग की ये धधकती ज्वालाएं उसके सन्तप्त हृदय को जैसे चन्दन की शीतलता पहुंचा रही थीं। फ्रैंकफर्ट का यह टूटा-फूटा, जलता हुआ मुहल्ला पूरी तरह वीरान और सुनसान पड़ा था।

अचानक नज़दीक ही से किसी अत्यन्त निरीह प्राणी के रोने की करुण आवाज़ वासिली को सुनाई दी। लपटों की ऊंची धू-धू ध्वनि की तुलना में यह आवाज़ बहुत ही क्षीण और दुर्बल थी। परन्तु इस आवाज़ में जो गहरी वेदना और अचूक द्रावकता थी, वह उसे बरबस श्राव्य बना देती थी। वासिली का हृदय भी यह करुण आवाज़ सुनकर एक बार कांप गया। उसे कुछ समझ न आया कि यह किस जन्तु की आवाज़ है। पालतू बिल्ली, इन्सान का बच्चा, कोई निरीह परिन्दा—किसीकी भी यह आवाज़ हो सकती है।

वासिली ने ध्यान लगाकर सुना, तो नजदीक की जलती हुई इमारत के तहखाने से उसे यह आवाज़ आती प्रतीत हुई। क्षणभर तो उसने सोचा कि कहीं यह दुश्मन का फन्दा न हो, परन्तु अपनी ताकतवर स्टेनगन पर हाथ रख-कर वह धीरे से उस तहखाने में उतर गया। आसपास के दहकते हुए मकानों का प्रकाश इस अंधेरे तहखाने को काफी प्रकाशित बनाए हुए था। इसी जगते-बुझते प्रकाश में वासिली ने इस तहखाने में सचमुच एक बहुत करुण दृश्य देखा। एक युवती जर्मन स्त्री मरी पड़ी थी। और उसकी नंगी छाती से लगकर ढाई-तीन साल की एक फूल-सी कोमल बालिका न जाने कब से चिल्ला रही थी। क्षणभर तक इधर-उधर देखते रहने के बाद अनायास ही वासिली ने उस बालिका को अपनी गोद में उठा लिया। बालिका रोते-रोते जैसे बिलकुल निराश हो गई थी। वासिली की गोद में पहुंचते ही असाधारण थकान के कारण उसका रोना तो बन्द हो गया, परन्तु घंटों तक रोने की प्रतिक्रिया के रूप में अब वह रह-रहकर और भी अधिक करुण सिसकियां भरने लगी।

तहखाने में खासा धुआं भरा हुआ था। वासिली उस लड़की को गोद में लेकर बाहर चला आया। बाहर आते ही वासिली को जैसे ध्यान हो आया कि अरे मैं तो फ्रैंकफर्ट में हूं। फ्रैंकफर्ट दुश्मन का पहला शहर है, जिसे हम लोग तबाह कर रहे हैं। अपनी ज़िन्दगी में मेरा यह पहला सौभाग्यशाली दिन है, जब मैं नाज़ी दानवों का यह किला उखाड़ फेंकने का पुण्यकार्य कर रहा हूं। और चिमगादड़ की तरह चीं-चीं करने वाली यह ज़रा-सी लड़की भी तो एक जर्मन लड़की है, जिसे मैं नाहक यहां उठा लाया हूं।

वासिली ने क्रोधभरी निगाह से उस बालिका की ओर देखना चाहा, मगर कोशिश करने पर भी वह उत्तेजित न हो सका। बालिका का सिसकना भी अब

तक बन्द हो चुका था। वासिली को अपनी ओर ताकता हुआ देखकर वह धीरे से बोली, 'पापा !' और इसके साथ ही साथ अत्यन्त निष्कलंक और मधुर भाव से वह मुस्करा दी।

वासिली ने पिछले ४४ महीनों में एक बार भी वैसी पवित्र मुस्कराहट नहीं देखी। उसे याद आया, आज से पौने चार साल पहले जब वह फौज में भर्ती हुआ था, मार्या की ठीक यही उम्र थी और ठीक इसी अन्दाज़ से वह मुस्कराया करती थी। मगर मार्या की याद के साथ ही साथ उसे अपनी बड़ी बेटी लिज़ा की याद भी हो आई। एक जर्मन नाज़ी पिशाच ने किस क्रूरता के साथ उस पवित्रतम लड़की की जान ले ली थी। और यह बालिका भी तो किसी जर्मन की ही लड़की है।

वासिली तिलमिला उठा। उसने चाहा कि अपने अन्तर की सम्पूर्ण प्रतिहिंसा और दानवीयता को जगाकर वह अपने को एक क्रूर और हिंसक पशु के रूप में परिवर्तित कर ले—एक ऐसा क्रूर पशु, जो इस नन्हीं-सी बालिका के यदि टुकड़े-टुकड़े न कर सके, तो कम से कम उन शैतान जर्मनों की तरह इसे जर्मन मकानों की धधकती ज्वाला में तो फेंक सके।

बालिका एक बार बहुत ही मधुर स्वर में फिर से बोली, 'पापा !' क्षण-भर रुककर तोतली ज़बान में उसने कहा, 'मुझे भूख लगी है, पापा !' वासिली अब तक थोड़ी-बहुत जर्मन समझने लगा था।

वासिली ने पाया कि वह कमज़ोरी का शिकार हो रहा है। अपना संपूर्ण पौरुष एकत्र कर उसने चाहा कि यदि वह और कुछ न भी कर सके, तो कम से कम उस बालिका को उसी जगह छोड़ तो दे ! ज़बरदस्ती अपनी मुद्रा को बहुत गम्भीर बनाकर वासिली ने बालिका को अपनी छाती से दूर करने की कोशिश की। परन्तु शायद बालिका गलती से वासिली को सचमुच अपना 'पापा' समझ बैठी थी। सम्भवत: उसका पिता भी कहीं जर्मन फौज में होगा और बहुत दिनों से उसने उसे नहीं देखा होगा। शायद उसके पिता की आयु और डीलडौल भी वासिली-से रहे होंगे। सहसा यह नन्हीं-सी बालिका वासिली की छाती से चिपक गई और बड़े प्यार भरे स्वर में बोली, 'पापा ! पापा !!'

वासिली ने फिर भी परवाह नहीं की। उस नन्हीं-सी बालिका को एक झटके के साथ उसने अपनी छाती से पृथक् कर दिया और उसे उस निर्जन,

सुनसान और दोनों ओर दहकती हुई सड़क पर अकेला छोड़कर वह तेज़ी से भाग खड़ा हुआ।

बालिका क्षण भर के लिए तो सहम गई, परन्तु उसके बाद उसकी रही-सही निरीह चेतना ने उसे सम्हाल लिया। 'पापा! पापा!' चिल्लाती हुई वह भी जहां तक बन पड़ा, तेज़ी से वासिली के पीछे दौड़ी।

थोड़ी ही दूर पर एक मोड़ था। वासिली वहां पहुंचकर एक टूटी दीवार के पीछे छिप गया। वहां दीवार की ओट से उसने पीछे की ओर देखा। बालिका थोड़ी दूर तक तो दौड़ी और उसके बाद एकदम हताश होकर जलती सड़क के बीचोंबीच बैठ गई। इसी तरह अकर्मण्य-सी बैठी रहकर उस भयावनी रात के सन्नाटे में वह ज़रा-सी बच्ची अत्यन्त करुण स्वर में लगातार चिल्लाने लगी, 'पापा! पापा!! पापा!!!'

वासिली आखिर परास्त हो गया। एक छोटी-सी निरीह बालिका ने गलती से उसे अपना पिता समझ लिया है। उसके न मां है, न बाप। न जाने कब से उसने न खाना खाया है, न पानी ही पिया है। दोनों ओर के मकान जल रहे हैं मगर यह सब कुछ भूलकर वह सिर्फ अपने इस कल्पित पापा को ही पुकारे जा रही है!

ओट से निकलकर वासिली तेज़ी के साथ वापस लौटा और उस छोटी-सी बालिका को उसने इतने आग्रह के साथ अपनी छाती से लगा लिया, जैसे वह सचमुच उसकी अपनी बेटी हो!

और युद्ध के बाद जब वासिली अपने घर वापस लौटा, तो चौदह साल की लिज़ा की जगह तीन साल की एक और लड़की को अपने साथ लेता आया। लोगों से वह अब भी यही कहता है कि मेरी लिज़ा रूप बदलकर वापस आ गई है!

बाढ़ तुम्हारे देवता को नमी तक नहीं पहुंचा पाई !

'तुम अभागे हो न ?

'निरन्तर याद की इस कठिन साधना की आंच में तुमने अपने शरीर को सुखा डाला है; परन्तु तुम्हारे अन्तःकरण की यह तीव्र ज्वाला तुम्हारे देवता के हृदय की साधारण सहानुभूति तक को भी नहीं पिघला पाई !

'तुम तिरस्कृत हो न ?

'तुम्हारे प्रेम के इस भूचाल को तुम्हारा देवता पागलपन समझता है, वेदना ने तुम्हारे मुंह पर गम्भीर निराशा की जो छाया अंकित कर दी है, उसके कारण तुम्हारा हृदय-देव तुम्हें खब्ती समझने लगा है ।

'तुम उपेक्षित हो न ?

'तो फिर ओ चिर अभागे ! ओ चिर तिरस्कृत ! ओ चिर उपेक्षित ! विश्वभर में सर्वत्र व्याप्त इस गहरे विषाद के साथ एकाकार हो, तुम अपने को सभी जगह प्रकाशित की जा सकने वाली सच्ची सहानुभूति के रूप में परिवर्तित कर, अजेय क्यों नहीं बना लेते ?'

गीत शुरू हुआ और विश्वकवि विनायक ने उस नन्ही-सी बालिका के चेहरे की ओर ज़रा ध्यान से देखा । गीत का भाव, बालिका का अछूता स्वर और उसका सुन्दरतम निष्कलंक चेहरा—इन सभी चीज़ों में कोई विशेषता थी। बहुत ही असाधारण । गीत शुरू हुआ और कवि भूतकाल कु केछ धुंधले चित्रों को बड़ी स्पष्टता के साथ, मानो अपनी आंखों के सम्मुख देखने लगे ।

विनायक २८ वर्ष का एक युवक है । एक सन्तानहीन विधुर कवि । बिल्कुल अकेला और बिल्कुल मामूली । प्रत्येक दृष्टि से मामूली । अपनी समझ में वह प्रतिभाशाली है, कलाकार है; परन्तु दुनिया की निगाहों में वह कुछ भी नहीं है । दुनिया तो उसे जानती ही नहीं । वह कवि है, और प्रायः अपने ही में मस्त रहता है । लोग उसके सम्बन्ध में क्या कहते हैं, इसकी उसे परवाह नहीं ।

यही शिवपुर । आज से ४२ वर्ष पहले का शिवपुर । विधाता ने विनायक को विधुर बना दिया है । दो वर्ष हुए, वह अपना 'हनीमून' भी ठीक तौर से नहीं मना पाया था कि महाकाल ने उसे फिर से अकेला कर दिया । परिस्थितियां

बदल डालने के खयाल से वह शिवपुर आकर रहने लगा था। इन दिनों विनायक के जो थोड़े-से दोस्त हैं, वे उसे सलाह देते हैं कि वह फिर से विवाह कर ले, परन्तु विनायक कवि है, भावुक है, उसे इन बातों के सोचने से भी चोट पहुंचती है। विनायक फिर कभी विवाह नहीं करेगा, ऐसा भी उसने कभी नहीं सोचा। परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ सोच सकने की जैसे उसमें शक्ति ही नहीं रही। जो कुछ है, ठीक है। जिस तरह है, उसी तरह चलने दो। ज़िन्दगी है, कट ही जाएगी। रुकेगी नहीं।

गान के पहले ही चरण पर जनता करतल-ध्वनि कर उठी। बूढ़े कवि के जागृत स्वप्न में जैसे क्षणभर की बाधा पड़ गई। एक बार पुनः उसने उस छोटी-सी बालिका की ओर देखा, जो लगभग बिना समझे-बूझे कवि के हृदय से निकले उन भावों को बहुत ही मधुर स्वर में केवल गाए जा रही थी। सहसा बालिका की आंखों की ओर देखकर कवि का सम्पूर्ण शरीर सिहर उठा। ओह, यह तो सुलोचना की-सी आंखें हैं! ठीक वैसी ही उज्ज्वल और बिल्कुल उसी ढंग की।

आज से बयालीस बरस पहले विनायक ने जिस सुलोचना को देखा था, उसकी आंखें इस बालिका की अपेक्षा अवश्य ही अधिक परिपक्व थीं; परन्तु यह कितनी असामान्य समानता है! कवि के सम्पूर्ण जीवन का सबसे अधिक गहरा, सबसे अधिक सिहरन उत्पन्न करने वाला और सबसे अधिक विषादपूर्ण अध्याय हाल ही में देखे गए स्वप्न के समान उनके मानस-पटल पर छा गया।

सुलोचना विनायक के एक घनिष्ठ मित्र की बहन थी। संकोची स्वभाव विनायक ने सुलोचना से स्वयं परिचय प्राप्त नहीं किया था। किसी मासिक पत्र में विनायक की कोई कविता पढ़कर सुलोचना ने स्वयं ही अपने भाई के इस मित्र से जान-पहचान बढ़ाई थी। वह उसकी कविताओं को पसन्द करती थी। अपने कालेज की सहेलियों से भी वह अक्सर एकाकी रहनेवाले इस विधुर कवि विनायक का ज़िक्र किया करती थी। उसके हृदय में विनायक के प्रति जैसे दया का-सा भाव उत्पन्न हो गया था। प्रतिभाशालिनी, ज़िद्दी स्वभाव और साफ़-साफ़ सुना देने वाली सुलोचना की असाधारण सुन्दरता का मुख्य कारण उसकी आंखें ही थीं। हू-ब-हू इसी बालिका की आंखों का विकसित रूप।

वृद्ध कवि के हृदय में सुलोचना की याद बचपन में सुने किसी मधुर संगीत की सुखद स्मृति के समान झनझना उठी और अगले ही क्षण मानो चोट खाकर उन झनझनाहट का वाद्य यन्त्र ही टूट गया। सुलोचना विनायक का सम्मान करती है, उसे आदर की दृष्टि से देखती है और उसके हृदय में उसके प्रति दया का भाव भी है, परन्तु यह सब होते हुए भी वह उसे प्यार नहीं करती।

असमय ही में अपनी जीवन-संगिनी को खोकर, संसार को निराशा की दृष्टि से देखने वाले कवि-हृदय विनायक ने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि उसके जीवन में फिर से कोई ऐसा अवसर आएगा, जब कोई उसे प्यार करेगा। मगर अचानक उसके भावुक हृदय ने यह अनुभव किया कि सुलोचना उसे आदर की दृष्टि से देखती है, उसका सम्मान करती है और उसकी छोटी-छोटी हरकतों में भी दिलचस्पी लेती है। अठाइस बरस के होते हुए भी नासमझ और भोले विनायक ने अपना परिपक्व और गम्भीर हृदय कालेज के द्वितीय वर्ष में पढ़ने वाली सुलोचना के अर्पण कर दिया। सुलोचना के आदर में उसने प्यार की झलक नही देखी थी, फिर भी सुलोचना जैसी किशोरी की ओर से मिली जरा-सी आदरपूर्ण सहानुभूति के बदले में जैसे उसने अपना सम्पूर्ण हृदय, अपना सभी कुछ स्वेच्छापूर्वक उसके अर्पण कर दिया।

बहुत दिनों तक तो सुलोचना इस बात को समझ ही नहीं पाई और जब कवि-हृदय विनायक ने किसी अत्यन्त कविताशून्य ढंग से अपने हृदय के भाव सुलोचना पर प्रकट कर दिए, तब उसने देखा कि सुलोचना उसके हृदय की उस अभिलाषा को पूरे तौर से अनधिकार चेष्टा समझती है।

छः-सात बरस की वह नन्ही-सी बालिका इस समय जैसे सम्पूर्ण सभा के लोगों की अन्तर्हित मनोव्यथा का पता पा गई थी और अपनी कोमलतम स्वर-लहरी से, सैकड़ों-हजारों हृदयों में छिपे हुए गम्भीर विषाद को उघाड़-उघाड़कर कह रही थी, 'तुम अभागे हो न ?'

वृद्ध कवि ने पूरी गहराई के साथ अनुभव किया--ओह, वह तो सचमुच अभागा है !

अभी गीत का दूसरा चरण ही शुरू हुआ था।

◇ ◇ ◇

उसके बाद करीब अठारह महीनों तक विनायक शिवपुर में ही बना रहा। आज के महाकवि और विश्व भर में पूजा पाने वाले विनायक के ७० बरस के जीवन में उन अठारह महीनों से बढ़कर निराशापूर्ण और साथ ही साथ आशापूर्ण समय और कोई नहीं बीता।

विनायक को जब यह ज्ञात हुआ कि सुलोचना का उसके प्रति भाव ही बदल गया है और वह उसे रोषपूर्ण भय के साथ देखने लगी है, तब उसके चित्त को गहरी चोट लोगी। कई सप्ताहों तक वह सुलोचना के घर नहीं गया। बहुत तरह से उसने प्रयत्न किया कि वह अपने जी को समझा ले कि सुलोचना के प्रति प्रेमभाव उत्पन्न करना उसकी अनधिकार चेष्टा है। वह तो एक अभागा विधुर है। वह किसीसे यह आशा क्यों करे कि कोई उसे निकटतम आदर की, अपनेपन की, प्यार की दृष्टि से देखे? अपने हार्दिक प्रेम के बदले में किसीसे उसी तरह के भावों के प्रतिदान की चाह रखने का भी उसे क्या अधिकार है? दुनिया भर के प्राणी एक दूसरे के साथ—कोई किसीके साथ और कोई किसी सम्बन्ध से—बंधे हुए हैं, संयुक्त हैं। दुनिया भर प्रेम का प्रतिदान चाहती है तो चाहा करे; मगर विनायक तो अकेला है। विधाता ने उसे अकेला बना दिया। भला यह क्यों अपने इस अकेलेपन से नजात पाने की अनधिकार इच्छा करे?

मगर जी नहीं माना। पूरे मनोयोग के साथ उसने एक कविता लिखी। शिवपुर में कोई बड़ा कवि-सम्मेलन था। विनायक भी निमन्त्रित था। उसने अपनी कविता वहां सुनाई। एक करुण गीत था। ऐसा गीत, जो पत्थर को भी रुला दे। विनायक को अपनी कविता सुनाने में पन्द्रह मिनट से अधिक न लगे होंगे। जब वह अपनी कविता समाप्त कर चुका, तो जैसे सारी सभा ने देख लिया कि विनायक न केवल शिवपुर का, अपितु अपने प्रान्त का सर्वश्रेष्ठ कवि है। उसकी कविता ने सारी सभा को विचलित कर दिया था।

कवि-सम्मेलन जब समाप्त हुआ, तब आसमान में तारे निकल आए थे। अपने प्रशंसकों से जिस किसी तरह छुटकारा पाकर विनायक सुलोचना के घर की ओर चल पड़ा; उड़ती हुई-सी चाल में। उस समय उसका दिमाग आशा की उत्साहदायिनी महक से भरा हुआ था। उसे ज्ञात था कि कवि-सम्मेलन में

सुलोचना भी उपस्थित थी। यह कवि-सम्मेलन विनायक के लिए किसी विजय-यात्रा से कम सिद्ध न हुआ था। इससे वह भली भांति यह कल्पना कर सकता था कि सुलोचना पर उसकी इस असाधारण सफलता का कैसा प्रभाव पड़ा होगा।

उमंगों में भरा हुआ विनायक जब सुलोचना की कोठी के फाटक तक पहुंचा, तो उसे दिखाई दिया कि सामने के बरामदे में, बिजली की बत्ती के नीचे सुलोचना धीरे-धीरे अकेली टहल रही है। विनायक स्वभाव से बहुत आशापूर्ण तो न था; परन्तु आज की सफलता ने उसकी आशाओं का माप एकाएक बहुत ऊंचा कर दिया था। क्षण भर के लिए विनायक को ऐसा जान पड़ा, मानो सुलोचना उसीकी कविता के बारे में सोच रही है। मगर नहीं, इस दिशा में विनायक ने अपनी कल्पना को बहुत आगे नहीं बढ़ने दिया।

धीरे-धीरे वह सुलोचना के निकट पहुंच गया। वह अन्धकार में था, इससे सुलोचना की निगाह उसपर नहीं पड़ी। साहसपूर्वक सीढ़ियों पर चढ़कर विनायक बरामदे में जा खड़ा हुआ और तब सहसा सुलोचना की निगाह उस-पर पड़ी। सुलोचना इस समय किसी व्यक्तिगत चिन्ता में मग्न है, यह देखे बिना ही भोले-भाले विनायक ने मुस्कराकर उसे नमस्कार किया। जवाब में सुलोचना ने अपने दोनों हाथ तो जोड़ दिए, परन्तु उसके चेहरे पर कोमलता की एक रेखा तक भी दिखाई नहीं दी। विनायक का मुंह किसी मरीज़ के समान तेज-हीन और पीला पड़ गया। इसी समय सुलोचना ने अविचलित भाव से पूछा—'कहिए, क्या काम है?'

बेचारे विनायक को एक ही काम सूझा, 'भाई साहब कहां हैं?'

'वह बाहर गए हैं, और शायद जल्दी नहीं लौटेंगे।' कहकर सुलोचना पीछे की ओर घूम गई।

चोट खाकर जैसे युवक कवि का अनुभूतिपूर्ण हृदय पुकार कर उठा। उसने धीरे से कहा, 'आप मेरे प्रति इस तरह अनावश्यक रूप से कठोर क्यों हो गई हैं?'

'मैं किसीके प्रति कठोर-वठोर कुछ नहीं!' कहकर सुलोचना तेज़ी से अंदर चली गई।

कहां गया वह कवि-सम्मेलन? कहां गई आज की वह विजय-यात्रा? और कहां गया उसका तेज़ नशा? जैसे किसी ने विवाह के दिन थप्पड़ मार दिया

हो ! विनायक का रोम-रोम अपने [illegible] अनुभव करने लगा । चुपके से वह बरामदे से नीचे उतरा और अंधकार में पहुंचते ही सिसककर रो उठा । संपूर्ण शिवपुर को अनायास ही विमोहित कर लेने के सिर्फ आध घंटा बाद ही वह अभागा युवक कवि इस तरह अपमानित होकर अंधकार में चुपचाप आंसू बहाता हुआ अपने घर की ओर लौट रहा था ।

बूढ़े महाकवि की अर्द्ध चेतना को जान पड़ा, जैसे कोई बहुत दूर पर अत्यन्त कोमल और संगीतमय स्वर में याद दिला रहा है—'तुम तिरस्कृत हो न ?'

हां, उस दिन के अभागे विनायक से बढ़कर तिरस्कृत और कौन होगा ?

परन्तु सुलोचना भी पत्थर की नहीं बनी है । वह एक अनुभूतिशील नारी है । उसके भी हृदय है । क्या अच्छा है और क्या बुरा है, इसे वह पहचानती है । वह इस प्रतिभाशाली कवि के प्रति अविनीत हुई थी, इसका उसे खेद है । सुलोचना का भाई विनायक को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखता है, और जब कभी संभव होता है, उसे अपने घर तक चलने के लिए बाधित करता है । अपने कमरे के भीतर से सुलोचना ने अनेक बार देखा है कि निराशा की मूर्तिमान अवतार-सा एक युवक बड़ी झिझक के साथ उसकी कोठी के द्वार तक पहुंचता है और उसके बाद कोई न कोई बहाना कर सदा बाहर ही से वापस लौट जाता है ।

इसी बीच एक ऐसी घटना हुई, जिससे सुलोचना को विनायक की श्रेष्ठता जी से स्वीकार करनी पड़ी । सुलोचना एफ० ए० पास कर चुकी थी । इसके बाद भी वह पढ़ाई जारी रखे, यह उसकी मां को स्वीकार न था । उसकी एक ही तो कन्या है । मां और भाई साहब ही सुलोचना के अभिभावक थे । उसके पिता अब इस दुनिया में नहीं थे । उसके अन्य रिश्तेदारों का भी यही ख्याल था कि सुलोचना का विवाह हो जाना चाहिए । भाई साहब मां का आग्रह न टाल सके । सुलोचना के एक निकट सम्बन्धी ने एक बहुत ही अच्छा समझा जाने वाला प्रस्ताव भी उसकी मां के सम्मुख पेश कर दिया । अकेली सुलोचना को छोड़कर घर भर में और कोई व्यक्ति ऐसा न था, जो उसके कौमार्य और पढ़ाई को अभी और जारी रखने के पक्ष में हो ।

इस अवसर पर विनायक ही सुलोचना के काम आया। सुलोचना ने कभी उससे अपने जी की बात नहीं कही, परन्तु जैसे विनायक का अन्तःकरण स्वयं इस बात को जानता था कि इस सम्बन्ध में सुलोचना की क्या राय हो सकती है। उसने सुलोचना के भाई को समझाया और उसे अपने साथ सहमत कर उसकी वृद्धा माता को भी यह भली प्रकार समझा दिया कि आजकल के ज़माने में लड़कियों का जी दुखाने का परिणाम बहुत भयंकर भी हो सकता है और यह भी कि अच्छी लड़कियों के लिए अच्छे लड़कों की कमी कभी नहीं रहती।

सुलोचना को जब यह बात मालूम हुई, तो उसका अन्तःकरण विनायक के प्रति कृतज्ञता से भर उठा। वह अब विनायक को सम्मान की दृष्टि से देखती है; जब कभी संभव होता है, उसे अपने घर पर निमन्त्रित भी करती है। और कभी-कभी उसका यह अपनापन इतना बढ़ जाता है कि वह उसपर शासन भी करने लगती है।

विनायक अब सुखी है और क्या उसका अन्तःकरण अब यह अनुभव नहीं करता कि उस अभागे के लिए इतना ही काफी है? परन्तु विधाता ने मनुष्य को हृदय नाम की जो चीज दी है, वह मानो सन्तोष करना जानती ही नहीं। उसकी चाह कभी पूरी नहीं होती। विनायक समझदार है और वह अपने भावों पर संयम रखता है। परन्तु उसके अन्तःकरण में—'और! और!! अभी और!!!' की जो पुकार प्रतिक्षण मची रहती है, उसका दमन वह किस तरह करे?

महीनों तक विनायक आशा और निराशा के इन हिंडोलों पर झूलता रहा। वह समझदार था। उसके जी को इस बात का भ्रम तो एक बार भी नहीं हुआ कि सुलोचना उसे प्यार करने लगी है। परन्तु यह अनुभूति उसे अनेक बार होती कि यदि वह अपने हृदय की गहरी व्यथा ठीक ढंग से सुलोचना के संमुख व्यक्त कर सके, यदि वह किसी तरह अपना जी खोलकर सुलोचना को यह दिखा सके कि उसका भावुक हृदय किस गहराई और कितनी तल्लीनता के साथ सुलोचना का उपासक बना हुआ है, तो वह अवश्य ही उसपर अनुकम्पा करेगी; और नहीं तो विनायक जैसे प्रतिभाशाली युवक के सर्वस्व-समर्पण का यह आवेदन सुलोचना से यों ही ठुकराया न जाएगा।

इन दो व्यक्तियों के इति-ह-आस (ऐसा हुआ था) ने अपने को दोहराया।

सुलोचना को जब यह ज्ञात हुआ कि विनायक अभी तक उसे पहले के समान चाहता है; उसकी स्पष्ट अस्वीकृति के रहते भी वह अपनी चाह का रूप तक भी नहीं बदल सका, तो उसके हृदय में विनायक के प्रति गहरे रोष की भावना फिर से उत्पन्न हो गई। सुलोचना पुनः विनायक से बच-बचकर रहने लगी।

सुलोचना के भाई ने विनायक को रात्रि-भोजन के लिए बुलाया था। बड़ी उमंगों के साथ विनायक सुलोचना के निवासस्थान पर गया था। बिजली के उज्ज्वल प्रकाश में दूर ही से विनायक ने देखा कि ड्राइंग रूम में सुलोचना हंस-हंसकर अपने भाई से बातें कर रही है। दरवाज़ा खुला हुआ था अतः भीतर पहुंचते ही विनायक ने मुस्कराकर सुलोचना को नमस्कार किया। सुलोचना एकाएक गम्भीर हो गई। न केवल उसने विनायक के किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, अपितु अपने भाई से भी वह नाराज़ हो गई। घर भर का वातावरण गम्भीर हो गया। यहां तक कि भाई साहब के अनुरोध और आग्रह की भी नितान्त उपेक्षा कर सुलोचना रात्रि-भोजन में सम्मिलित नहीं हुई। कुछ ही देर बाद वह ड्राइंग रूम से उठी और अपने शयनागार में चली गई। विनायक के अनुभूतिशील हृदय ने यह सब देखा और समझा।

आज से ४० बरस और ६ महीना पहले की एक रात बूढ़े महाकवि की कल्पनामयी आंखों के सामने मानो प्रत्यक्ष होकर आ खड़ी हुई।

ठण्डी अंधेरी रात है। आसमान में बादल नहीं हैं, मगर फिर भी तारे दिखाई नहीं देते। पृथ्वी घने कोहरे से ढंकी है। सब तरफ सन्नाटा है। कहीं किसी तरह का शब्द नहीं है। रात का एक बजा होगा। बेहोशी की-सी दशा में विनायक अपने बिस्तरे पर लेटा हुआ है। सहसा वह उठ बैठा। रज़ाई के अंदर सिकुड़ा हुआ वह अन्धकार ही में उकड़ूं होकर बैठ गया। उसे यह भी मालूम नहीं कि रात्रि-भोजन के बाद सुलोचना के घर से यहां तक वह पहुंचा किस तरह। उसके अनुभूतिशील हृदय में कोई गहरी वेदना, कोई गहरी जलन, कोई गहरी टीस उठ खड़ी हुई है, जिसने उसकी सभी वृत्तियों को लगभग बेहोश-सा बना डाला है। इस दशा में संसार की कोई सहानुभूति उसे किसी तरह की कुछ भी सान्त्वना नहीं पहुंचा सकती। अगर वह ज़रा-सी शराब पी सकता! मगर नहीं उसने शराब कभी नहीं पी। उसे शराब का ख्याल भी नहीं आया।

यह जो का दर्द है। यह एक भावुक अन्तःकरण की जलन है। यह एक कवि-हृदय की टीस है। इसका इलाज विश्व भर में किसीके पास नहीं है।

न जाने कितनी देर तक विनायक उसी तरह बैठा रहा। ठीक उसी तरह एक ही आसन से। संज्ञाहीन-सा। पत्थर के बुत-सा।

आखिरकार रज़ाई के उस ढेर में गति दिखाई दी। विनायक ने हाथ बढ़ाकर स्विच दबा दिया। कमरा आलोकित हो उठा। सिरहाने की ओर एक बड़ी टेबिल पर कुछ कागज़ रखे थे, एक फाउण्टेनपेन भी था। विनायक ने उन्हें उठा लिया और वह कुछ लिखने लगा। लिखना समाप्त करते न करते जैसे उसकी घनीभूत मनोव्यथा पिघल पड़ी। वह चुपचाप आंसू टपकाने लगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल साहस करके विनायक सुलोचना के घर गया। उसका चेहरा बरसों के मरीज़ के समान निस्तेज़ हो रहा था। सारी रात जागे रहने के कारण उसकी आंखें लाल-लाल होकर मानो दहक-सी रही थीं। विनायक ने देखा, आंगन में सब ओर सन्नाटा है। वह सीधा सुलोचना के कमरे की ओर गया। कमरे का दरवाज़ा भीतर से बन्द था। विनायक ने दरवाज़ा खटखटाया। भीतर से सुलोचना की रोबीली-सी आवाज़ आई—'कौन है ?'

'मैं हूं विनायक।'

'भाई साहब यहां नहीं हैं !'

विनायक ने साहस करके कहा, 'मुझे आप ही से काम है।'

'ठहरिए, दरवाज़ा खोलती हूं।'

पूरे दो मिनट तक दरवाज़ा नहीं खुला। इस गहरे अपमान को भी युवक विनायक शान्त भाव से खड़े रहकर सहता गया, जैसे मान-अपमान के बन्धनों से वह बहुत ऊपर उठ गया हो। अन्त में दरवाज़ा खुला और विनायक को अन्दर आने के लिए कहे बिना ही दरवाज़े पर खड़ी रहकर सुलोचना ने पूछा, 'कहिए ?'

विनायक ने कांपते हुए हाथों से एक नीला लिफाफा बाहर निकाला।

सुलोचना ने पूछा, 'यह किसकी चिट्ठी है ?'

'आपकी।'

सुलोचना को ऐसा अनुभव हुआ, मानो वह सभी कुछ समझ गई। उसने

दृढ़ता के साथ कहा, 'मुझे इस तरह की चिट्ठियां पढ़ना पसन्द नहीं है !'

और इसके साथ ही साथ अत्यधिक निर्दय भाव से उसने उसी क्षण दरवाज़ा बन्द कर लिया। मगर सुलोचना खाक भी न समझी थी। यदि वह उस लिफाफे को स्वीकार कर लेती तो वह देखती कि उसमें एक मटियाले कागज़ पर केवल वही गीत अंकित था, जिसे इस समय यह नन्ही-सी बालिका अत्यधिक मधुर स्वर से इस महासभा में गाकर सुना रही है !

इसी समय सम्पूर्ण सभा-भवन तालियों की तड़तड़ाहट से गूंज उठा। बालिका का गीत समाप्त हो चुका था और वह फूलों की एक बहुमूल्य सुन्दर माला लिए इस जगद्वन्द्य बूढ़े महाकवि की ओर बढ़ी आ रही थी। महाकवि की बूढ़ी, परन्तु स्वच्छ आंखों में जो दो बूंद आंसू भर आए थे, वे लुढ़ककर उनकी अत्यधिक भव्य और चांदी-सी श्वेत दाढ़ी में जा अटके। बालिका निकट आ गई थी। महाकवि ने अपना सिर उसके सम्मुख झुका दिया। बालिका ने अपने दोनों हाथ उठाकर वह माला उनके गले में पहना दी। सम्पूर्ण सभा-भवन एक बार पुनः ऊंची करतल-ध्वनि से गूंज उठा।

बूढ़े कवि ने अपना आशीर्वाद भरा शुभ्र हाथ बालिका के सिर पर रखकर उससे पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है बेटी ?'

बालिका ने उत्तर दिया, 'विजयकुमारी।'

महाकवि ने पूछा, 'तुम किसकी कन्या हो ?'

बालिका ने मानो बड़े उत्साह के साथ जवाब दिया, 'श्रीमती सुलोचना देवी की।'

सभा के मन्त्री महोदय ने बताया, 'यह कन्या शिवपुर की सम्मानित नागरिका श्रीमती सुलोचना देवी की पौत्री है।'

वास्तव में बालिका की दादी उसे इतना अधिक प्यार करती थी कि वह अपनी दादी को छोड़कर दुनिया भर में और किसीको जानती ही न थी।

महाकवि ने सहसा बालिका को खींचकर अपनी छाती से लगा लिया और पूरे चालीस साल के बाद उनकी बूढ़ी आंखें विजय की एक उज्ज्वलतम ज्योति से चमक उठीं !

इसी समय बालिका मंच से नीचे उतरी और एक बूढ़ी सम्भ्रान्त महिला के पास जा पहुंची। यह देखकर बालिका के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि उसकी बूढ़ी दादी की आंखों में भी आंसू भरे हुए हैं और वह अपनी पोती को अपने प्रगाढ़ आलिंगन से पृथक् ही नहीं करना चाहती।

बालिका को माध्यम बनाकर क्षणभर के अन्तर से एक वृद्ध और एक वृद्धा के दो पवित्रतम आलिंगन !

राधा

जीवन में कभी-कभी ऐसा समय भी आता है, जब मनुष्य का अन्तःकरण अपने प्रियतम से प्रियतम व्यक्ति के लिए भी घृणा, खीझ और रोष से भर उठता है। भद्रगोप की आज ऐसी ही दशा थी। राधा उसकी पत्नी है। अपने विवाहित जीवन के आठ बरस उसने इतने सुखपूर्वक बिताए हैं कि वृन्दावन भर में उसका गृहस्थ जीवन चर्चा और ईर्ष्या का विषय बना रहा है। राधा का बाह्य रूप जितना सुन्दर है, उसका अन्तरंग उससे भी बढ़कर स्वच्छ, मनोमोहक और आकर्षक है। राधा जैसी पत्नी को पाकर भद्रगोप के लिए इस जीवन में और कुछ भी पाना शेष नहीं रहा; कम से कम अभी कुछ समय पहले तक उसकी यही धारणा थी।

परन्तु पिछले कुछ दिनों से परिस्थिति एकाएक विकट हो उठी है। पिछले अनेक सप्ताहों से भद्रगोप अपने प्रति राधा के वर्ताव में अधिकाधिक और भारी अन्तर पा रहा है। वसन्त ऋतु के आगमन के साथ-साथ राधा का जी घर से और भी अधिक उचाट रहने लगा है। वह अब सारा-सारा दिन घर से गुम रहती है और जमुना पार के झाड़-झंखाड़ों में घूमा करती है। क्षीण-कलेवरा जमुना की स्वच्छ-सी जलधार के निकट कुछ दूरी तक रेत फैली हुई है। उसके बाद मामूली ऊंचाई के कगारे पर ढाक और कदम के पेड़ों का हरा-भरा जंगल छाया हुआ है। वसन्त के आगमन के साथ-साथ ढाक के पेड़ बहुतायत से फूल आए हैं, जैसे जमुना पार का सम्पूर्ण जंगल आग की लाल-लाल लपटों से घिरा हुआ हो। इस जंगल में मोरों की बहुतायत तो सदा ही रहती है, इन दिनों उसकी फूली हुई डालियों पर कोयल कुहकने लगी है। इसी जंगल में इस वर्ष एक नया चमत्कार-सा दिखाई देने लगा है। एक बेफिक्रा-सा नौजवान न जाने कहां से आकर इसी जंगल में डेरा डाले पड़ा है। हर समय मुस्कराते

रहना और मुग्धकारी स्वर में बांसुरी बजाते जाना उसका काम है। वंशी की वह तान कभी जंगल के एक भाग से सुनाई देती है और कुछ ही क्षणों के बाद मानो उसकी गूंज और भी अधिक मधुर होकर चुपचाप लेटी हुई मथुरा नगरी के स्वच्छ वातावरण में मानो सुगन्ध की लपटों के समान छा जाती है, और इतने दिनों से भद्रगोप देख रहा है कि जब जमुना पार से वंशी की वह मधुर ध्वनि सुनाई देती है, तब राधा अपने पर संयम नहीं रख सकती। उसका दिल बेकाबू हो जाता है, और वह घर का काम-काज छोड़कर, जैसे बरबस-सी घर से चल देती है। जमुना-पार के जंगलों में जाकर न जाने वह क्या करती रहती है। भद्रगोप तो केवल इतना ही जानता है कि तब सारा दिन उसे राधा के दर्शन नहीं होते।

इतने दिनों तक तो भद्रगोप सहन करता रहा; परन्तु आखिर सहनशीलता की भी कोई हद होती है। आज उसने निश्चय कर लिया है कि वह आज राधा से जवाब-तलब करेगा। वह आज उससे स्पष्ट शब्दों में पूछेगा कि आठ बरसों तक सद्गृहस्थ का जीवन बिता लेने के बाद, जीवन के मध्याह्न के निकट पहुंचकर, राधा अपनी सम्पूर्ण शरम-हया भूल किस तरह गई? सुबह से लेकर रात तक एक परपुरुष के पीछे-पीछे घूमते रहने का आखिर मतलब क्या है? हां, वह परपुरुष ही तो है, और क्या? आने तो दो राधा को। आज सारा मामला, सारा हिसाब-किताब, साफ कर लिया जाएगा।

सूरज डूब गया। शुक्लपक्ष की नवमी का तिरछा चांद आकाश में प्रकाशित हो गया और उसके सभी ओर तारे टिमटिमाने लगे; परन्तु राधा अभी तक नहीं लौटी। भद्रगोप अपने मकान के खुले सहन में खड़ा होकर राधा की प्रतीक्षा कर रहा था। दिन भर की तेज़ गरमी के बाद, इस समय सहसा यमुना नदी की सतह पर से ठण्डक लेकर हवा का एक झोंका चला और सम्पूर्ण वृन्दावन को शीतलता की झलक-सी देते हुए आगे बढ़ गया। ठण्डी हवा के इस झोंके के साथ-साथ मधुरतम वंशी-ध्वनि की एक क्षीण तान भद्रगोप के कानों में पड़ी। भद्रगोप का चित्त सहसा उद्विग्न हो उठा। वह समझ गया कि निठल्लों और निर्लज्जों की वह टोली यमुना-तट से धीरे-धीरे वृन्दावन की ओर बढ़ी आ रही है।

भद्रगोप तैयार होकर खड़ा हो गया।

काफी देर के बाद राधा वहां पहुंची। राधा को सम्मुख पाकर भद्रगोप का सम्पूर्ण आवेश जैसे शान्त हो गया। मगर इस तरह भी तो काम नहीं चलेगा। अपना सम्पूर्ण साहस बटोरकर जलती हुई-सी आवाज़ में भद्रगोप ने पूछा, 'इतनी देर तक कहां रहीं तुम ?'

अपने उज्ज्वल मुंह पर भोली-भाली मुस्कराहट लाकर राधा ने कहा, 'यह क्या तुम जानते नहीं हो प्यारे !'

भद्रगोप ने अपने को शिथिल नहीं पड़ने दिया। वह बोला, 'मैं जो कुछ जानता हूं, वह बात तुम्हारी प्रतिष्ठा बढ़ाने वाली नहीं है।'

राधा चुप रही।

भद्रगोप को जैसे सचमुच क्रोध आ गया। उसने कहा, 'न जाने किस आवारागर्द के पीछे दिन-रात मारे-मारे फिरने में तुम्हें लाज नहीं आती ?'

राधा आश्चर्य से अपने पति की ओर देखने लगी।

गुस्सा बढ़ गया। भद्रगोप ने कहा, 'देखो राधा, आज तुम्हें इस बात का जवाब देना ही होगा। मैं और अधिक सहन नहीं कर सकता।'

परन्तु राधा ने कोई जवाब नहीं दिया। दो-एक क्षणों की प्रतीक्षा के बाद भद्रगोप ने कहा, 'अब जवाब क्यों नहीं देतीं ?'

राधा बिलकुल शान्त और अनुद्विग्न भाव से बोली, 'नहीं, अभी तुम्हारे ही कहने की बारी है। हृदय की सारी कुढ़न इसी समय निकाल लो नाथ !'

भद्रगोप अब कुछ ढीला पड़ा। आज जो बड़ी-बड़ी बातें कहने का उसने निश्चय किया था वे सब इस समय उसे भूल गईं। फिर भी अपने को पराजय के मुंह से बचाने के लिए उसने कहा, 'आखिर वह है कौन ?'

राधा का मुख सहसा उज्ज्वल हो उठा। उसने मुस्कराकर कहा, 'वह दिन दूर नहीं है, जब सारा विश्व उन्हें पहचान लेगा।'

और तब उसने अपने कपड़ों के भीतर से बांस की एक छोटी-सी बांसुरी निकाली और धीरे-धीरे अत्यन्त मधुर स्वर में वह उसे बजाने लगी।

भद्रगोप अब भी उसी तरह निकट ही खड़ा था। राधा का उस ओर ध्यान नहीं था। यदि वह उधर देख पाती, तो उसे पता चलता कि हृष्ट-पुष्ट और सभी दृष्टियों से पूर्ण पुरुष भद्रगोप की आंखों में एकाएक आंसू भर आए हैं।

राधा बिलकुल अनासक्त भाव से अब भी अपनी बांसुरी बजाए जा रही थी ।

मगर रात जब आधी से भी ऊपर बीत गई, तब राधा की वह अनासक्ति कायम नहीं रह सकी । वह अपने कमरे में अकेली लेटी हुई है । पिछले पन्द्रह-बीस दिनों से राधा और भद्रगोप पृथक्-पृथक् कमरों में सोते हैं; और इतने दिनों तक कभी राधा ने इस बात की चिन्ता नहीं की थी, जैसे इस ओर उसका ध्यान ही न गया हो ।

परन्तु आज ? आज राधा का जी हठात् उद्विग्न हो उठा । सांझ के समय भद्रगोप की जिस मुद्रा को उसने समसत्वस्थ के साथ देखा था, इस समय उसके पति का वही अत्यन्त विषण्ण, उदास और कुपित चेहरा, मानो शतगुना अधिक स्पष्ट होकर, उसके मानसिक नेत्रों के सम्मुख आ उपस्थित हुआ ।

सुनसान काली अंधेरी रात है । साथ के कमरे में भद्रगोप सोया हुआ है । कौन जाने वह सिर्फ लेटा हुआ है, ऊंघ रहा है या सोया हुआ है । भद्रगोप की चाहे जो भी दशा हो, राधा की आंखों में नींद नहीं है । उसके हृदय की बेचैनी क्रमशः बढ़ती चली जा रही है । धीरे-धीरे राधा को ऐसा जान पड़ा, जैसे भद्रगोप के चेहरे का सम्पूर्ण कोप तो नष्ट हो गया, परन्तु उसका दैन्य और विषाद और भी अधिक घनीभूत हो उठा ।

मानसिक व्यथा से छटपटाकर राधा ने करवट बदली और तभी एक गम्भीर भावावेश मानो बलात् उसके अन्तस्तल से उठा और एक गहरी ठण्डी सांस के सहारे मुंह की राह बाहर निकल गया । ओह ! उसका पति उसे कितना प्यार करता है ! और वह अपने पति के कोमल हृदय को लगातार आघात पहुंचाए जा रही है !

राधा की भावुकता और भी अधिक बढ़ गई और उसकी आंखों में आंसू भर आए । असीम मानसिक व्यथा से छटपटाकर राधा ने अंगड़ाई ली और तव अचानक उसके हाथ सिरहाने से कुछ ही दूर पड़ी बांस की उस छोटी-सी बांसुरी से जा टकराए ।

राधा के डूबते हुए हृदय को मानो एक सहारा मिल गया । वह उठकर बैठ गई और उसके होंठ मानो बांसुरी बजाने को व्याकुल हो उठे । परन्तु साथ

ही उसे खयाल आया कि साथ के कमरे में उसके पतिदेव सो रहे हैं, और उनकी नींद में बाधा डालना उचित नहीं है।

तब राधा द्वार खोलकर सहन में चली आई। धीरे-धीरे सहन पारकर उसने बाहर का दरवाज़ा भी खोल दिया। बाहर एक छोटी-सी पुष्प-वाटिका थी। राधा क्रमशः इसी पुष्प-वाटिका के अन्धकार में डूब गई और क्षण भर बाद वह सम्पूर्ण वाटिका बांसुरी की मधुरतम तान से भर-सी गई।

मालूम नहीं, कब तक राधा बांसुरी बजाती चली गई। यह भी नहीं मालूम कि वह और कितनी देर तक बांसुरी बजाती चली जाती, यदि आंगन के द्वार पर से कोई पुकार उसके कानों में न पड़ती। भद्रगोप दीन परन्तु कठोर-से स्वर में पुकार रहा था, 'राधा! राधा!'

बांसुरी की एक लम्बी गूंज आसमान में भरते हुए राधा ने पूछा, 'क्या है प्राणनाथ ?'

'रात समाप्त हो जाने की प्रतीक्षा भी तुमसे नहीं हो सकी राधा !'

राधा को इस प्रश्न की आशा न थी। वह चुपचाप खड़ी रही।

भद्रगोप ने ज़रा और भी कठोर स्वर में कहा, 'इस सम्पूर्ण निर्लज्जता का आखिर अभिप्रायः क्या है राधा ?' परन्तु जैसे वेदना ने भद्रगोप के हृदय को नम्र बना दिया। क्षण भर रुककर उसने कहा, 'प्रतीत होता है अब तुम मुझे प्यार नहीं करतीं।'

राधा ने स्थिर कण्ठ से कहा, 'जिस दिन राधा अपने पति से प्यार करना छोड़ देगी, उस दिन वह जीवित नहीं रह पाएगी नाथ !'

'तो फिर तुम मुझसे इस तरह विमुख क्यों हो गईं ?'

'मैं तुमसे विमुख नहीं हूं नाथ ! बात केवल इतनी ही है कि प्रेम के सम्बन्ध में मेरी धारणाओं में अन्तर आ गया है।'

'वह क्या ?'

'वह यही कि प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रेमपात्र पर जैसे एकाधिकार स्थापित कर लेना चाहता है। आज से कुछ समय पहले तक मैं भी ऐसा ही चाहती थी और यदि तुम भी वही चाहते हो तो इसमें विचित्रता कुछ भी नहीं है।'

न जाने क्या सोचकर राधा चुप हो रही।

भद्रगोप ने अत्यधिक आतुरता से कहा, 'तुम रुक क्यों गईं राधा ? कहो,

कहती चलो, तुम्हारे प्रेम का यह नया आदर्श क्या है ?'

राधा ने अविचलित भाव से कहा, 'मैं आज समझ गई हूं कि मेरी आत्मा का तोष मेरे भीतर से ही होना चाहिए। प्रेम इस आत्मतोष का उपकरण मात्र है; इससे अधिक उसका व्यक्तिगत दृष्टि से कुछ भी प्रयोजन नहीं। और मैं जो कुछ कह रही हूं, उसका अभिप्राय तो मैं स्वयं भी नहीं जानती प्यारे! कोई बड़ी शक्ति जैसे ज़बर्दस्ती मुझे अपनी ओर खींचे लिए जा रही है, और मैं परवश-सी उसके साथ-साथ खिची जा रही हूं।'

इतना कहकर राधा बहुत ही मधुर स्वर में खिलाखिलाकर हंस पड़ी। सहसा भद्रगोप का हाथ पकड़कर उसने कहा, 'चलो भीतर चलें नाथ!'

और भद्रगोप विमूढ़-सा होकर राधा के साथ चल दिया। जैसे राधा की बात का कोई अभिप्राय उसे समझ न आया हो।

और तब पूरे दो महीनों तक राधा और भद्रगोप में एक तरह का समझौता-सा बना रहा। दोनों ने एक दूसरे को पूरी आज़ादी दे दी। दोनों का यह पृथक्-पृथक् और स्वच्छन्द जीवन इस तरह स्वाभाविक रूप से चलने लगा, मानो वे शुरू ही से इसी अलगाव में पलते आए हैं।

उसी वर्ष के श्रावण की एक बदलीवाली सांझ को भद्रगोप का जी काम-काज में नहीं लगा। आसमान में सुबह ही से घने काले बादल छाए हुए थे; परन्तु वर्षा नहीं हो रही थी। भद्रगोप अकेला ही यमुना पार के जंगलों में सैर के लिए चल दिया।

इधर प्रकृति शान्त थी। जहां तक नज़र जाती थी हरियावल ही हरियावल दृष्टिगोचर हो रही थी। भूमि मखमली घास से मढ़ी थी, वृक्ष हरे-भरे पत्तों से लदे-से पड़े थे, और पिछली रात की बौछार तथा हवा ने उन्हें धो-पोंछकर मानो और भी उजला कर दिया था।

अचानक भद्रगोप को ख्याल आया कि राधा भी तो दिन भर इसी जंगल में बिताती है। उसके जी में यह इच्छा बड़ी प्रबलता के साथ उत्पन्न हुई कि वह देखे कि राधा यहां आकर क्या करती है। आज तक कभी उसने राधा का पीछा नहीं किया था। पीछा करने का विचार तक भी कभी उसके जी में नहीं आया था। परन्तु आज ? बरसात और बदली के इस दिन में, इस सुनसान

हरे-भरे जंगल में पहुंचकर जैसे उसका जी अपनी पत्नी की वर्तमान जीवनचर्या को देखने के लिए सहसा उतावला-सा बन गया। कदम और ढाक के उस सघन उपवन में उसकी दृष्टि मानो भेदती हुई-सी कुछ खोजने लगी। सहसा उसे सुनाई दिया कि पश्चिम दिशा में बहुत दूर पर कहीं बांसुरी बज रही है। भद्रगोप शीघ्रता से उसी ओर चल दिया।

ज़रा निकट पहुंचकर भद्रगोप ने सुना, कम से कम ३५-४० बांसुरियों का यह सम्मिलित स्वर था। इससे अधिक मधुर संगीत भद्रगोप ने आज तक कभी अपने जीवन में नहीं सुना था। भद्रगोप के पांव आप ही आप बड़ी शीघ्रता से उठने लगे।

वह संगीत सहसा रुक गया। जैसे घने अन्धकार में प्रबल आलोक देने वाला कोई दीपक एकाएक बुझ जाए। तो भी भद्रगोप की चाल धीमी नहीं हुई। वह बड़ी शीघ्रता से उसी ओर बढ़ने लगा, जिधर से कुछ ही क्षण पूर्व बांसुरी का वह अश्रुतपूर्व सम्मिलित संगीत उसे सुनाई दिया था।

सहसा भद्रगोप को वह दृश्य दिखाई दिया, जिसकी वह कभी कल्पना भी न कर सकता था। सारा संसार भी मिलकर यदि एक स्वर से भद्रगोप को वह बात सुनाता, तो वह उसपर हरगिज़-हरगिज़ विश्वास न करता। कदम के घने झुरमुटों की ओट में एक छोटा-सा खुला मैदान है। उसके निकट स्वच्छ जल का एक सरोवर है। मैदान के चारों ओर हज़ारों-लाखों मनोहर फूल खिले हुए हैं। भद्रगोप ने देखा, इस मैदान में उसकी पत्नी राधा टांगें फैलाकर बैठी हुई है, और एक सांवला युवक उसकी जांघ पर सिर रखकर लेटा हुआ है। भद्रगोप ने आंखें मलकर अपने लिए अचिन्त्य और अकल्पनीय इस दृश्य को पुनः देखा। हां, वह सचमुच राधा ही तो है। राधा! उसकी पत्नी! भद्रगोप आगे बढ़ा। उसे सुनाई दिया, कोई धीमे पर स्पष्ट स्वर में कह रहा था—'राधा, मेरे सिर में दर्द हो रहा है। ज़रा दबा तो दो!'

और राधा सचमुच उस युवक का सिर दबाने लगी। भद्रगोप चुपचाप खड़ा रहकर यह सब देखता रहा। उस युवक के सिर पर हाथ फेरते-फेरते राधा धीमे परन्तु अविकम्पित स्वर में एक मधुर गीत गुनगुनाने लगी। जैसे माता अपने बच्चे को लोरी देकर सुलाना चाहती हो।

भद्रगोप से अब रहा नहीं गया। वह आगे बढ़ा और कदम की ओट छोड़-

कर शीघ्रता से राधा के सामने जा खड़ा हुआ। परन्तु आश्चर्य यह कि भद्रगोप को इस तरह अचानक अपने सम्मुख पाकर भी राधा न तो चौंकी और न घबराई ही। श्यामल युवक अभी तक उसी तरह आंखें बन्द किए पड़ा था। शायद उसे नींद आ गई थी। राधा ने सिर्फ सिर हिलाकर भद्रगोप के प्रति इशारा किया कि वह बोले नहीं। इस भय से कि कहीं उस युवक की नींद न उचट जाए।

इन परिस्थितियों में भद्रगोप क्या करे? वह राधा से अपनी प्रतिहिंसावृत्ति चरितार्थ करे, उस युवक को ललकारे अथवा अपना ही सिर धुन ले!—भद्रगोप को कुछ भी सूझ नहीं पड़ा। जिस तरह जबर्दस्त चोट खाकर सिर भन्ना जाता है, दर्द तक भी अनुभव नहीं करता, उसी तरह भद्रगोप का अन्तरंग-बहिरंग सभी कुछ मानो पूर्ण रूप से मूर्च्छित-सा हो गया। राधा से कुछ भी कहे-सुने बिना वह निश्शब्द धीरे-धीरे वापस लौट चला। राधा ने उसे ठहरने का इशारा भी किया; परन्तु इसकी उसने कोई परवाह नहीं की।

और उस सांझ को जब राधा अपने घर पहुंची, तो उसे भद्रगोप के दर्शन नहीं हुए। राधा का परित्याग कर वह कहीं अज्ञातवास के लिए चला गया था।

और एक दिन वह युवक भी बृन्दावन से चुपचाप खिसक गया। शायद उसे कहीं से अपने कर्तव्य की पुकार सुन पड़ी थी। उसके जाते ही सम्पूर्ण बृन्दावन ने देखा कि जमुना-पार के जंगल में एक युग के बाद फिर से वही सन्नाटा व्याप्त हो गया है।

बृन्दावन-निवासियों को सबसे अधिक आश्चर्य इस बात से हुआ कि उस युवक के चले जाने पर भी राधा के चेहरे पर उदासी की रेखा तक भी दिखाई नहीं दी। देखने में राधा पूर्णतया प्रसन्न और सन्तुष्ट प्रतीत होती थी। परन्तु उसका जीवन सम्पूर्णतः बदल गया था। खुले आम बांसुरी बजाना और घर में बैठे अथवा राह-बाट पर आते-जाते उस युवक के सम्बन्ध में गीत गाना ही उसका एकमात्र विनोद था। लोग समझते थे कि वह आपे में नहीं है।

फिर भी राधा बृन्दावन भर में बदनाम हो गई थी। पति ने उसका परित्याग कर दिया था। लोगों का ख्याल था कि अपने पति की उपेक्षा कर उसने

अपने प्रेमी का आश्रय लिया है, परन्तु जब उसका वह कल्पित-प्रेमी भी उसे छोड़कर चला गया, तो वृन्दावन-निवासियों को इस बात से आश्चर्य तो अवश्य हुआ; परन्तु राधा के सम्बन्ध में उन्होंने अपनी धारणा नहीं बदली। वह सम्पूर्ण नगर में असती समझी जाती है। भले घरों की बहू-बेटियों ने उससे मिलना छोड़ दिया है। राह चलते लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं, परन्तु राधा अपने चारों ओर की इन परिस्थितियों को नितांत उपेक्षा के साथ देखती है। मानो सम्पूर्ण नगर में उसके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं रहता। लोग उसे अच्छा समझें या बुरा, राधा को इस बात की रत्ती भर भी परवाह नहीं है।

और समय बीतता चला जाता है।

सात बरस बाद।

वृन्दावन में बहुत दिनों से कतिपय अमंगलपूर्ण अफ़वाहें फैल रही थीं। सुना जाता था कि इन्द्रप्रस्थ के अधीश्वर महाराज युधिष्ठिर तथा उनके भाई सम्पूर्ण आर्यावर्त्त में अपना एकछत्र साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं, और बहुत शीघ्र गोपों का वृन्दावन भी उनके आक्रमण से बचा नहीं रहेगा। यह भी प्रसिद्ध था कि वृन्दावन-निवासियों से सुपरिचित वही सांवला-सलोना युवक आज महाराजा युधिष्ठिर का मन्त्रदाता गुरु बना हुआ है। उस दिन का वही निठल्ला युवक आज सम्पूर्ण पाण्डव-साम्राज्य में अपने युग का सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ माना जाता है, यह सुनकर वृन्दावन-निवासियों के आश्चर्य का पारावार नहीं था।

और ये सब अफ़वाहें आखिर सच साबित हो गईं। महाराज युधिष्ठिर का एक दूत वृन्दावन के गोपराज के पास अधीनता स्वीकार करने अथवा युद्ध देने का सन्देश लेकर आ पहुंचा। वृन्दावन के क्षत्रिय और गोप पाण्डवों की शक्ति से भली प्रकार परिचित थे; परन्तु फिर भी उन्होंने कायरता नहीं दिखाई। आत्म-समर्पण की बजाय आत्माहुति का मार्ग उन्होंने अधिक पसन्द किया। सम्पूर्ण वृन्दावन में युद्ध की तैयारियां होने लगीं। इस अवसर पर भद्रगोप भी अपने अज्ञातवास से लौट आया, और वह वृन्दावन की सेना का सेनापति नियुक्त हो गया।

राधा से भी यह सब छिपा नहीं रहा। उसका पति इतनी मुद्दत के बाद

बृन्दावन में वापस आकर भी उससे मिलने नहीं आया। उसका कथित प्रेमी आज बृन्दावन का सबसे बड़ा शत्रु है। पाण्डव-सेनापति अर्जुन के साथ वह भी इस नगर पर आक्रमण करने आया है। बृन्दावन भर में वह महामारी और अकाल के समान अप्रिय सामझा जाता है। यह सब जानते हुए भी मानो राधा इन सब बातों से बेखबर है। वह आज भी उसी प्रकार अपने उसी कथित प्रेमी के सम्बन्ध में बृन्दावन के गली-कूचों में गीत गाती फिरती है और आज भी उसकी बांसुरी की लय सुनकर पशु-पक्षियों तक के शरीर में सिहरन उत्पन्न हो जाती है। नगर की स्त्रियां राधा को गालियां देती हैं, नागरिक उसे पागल समझते हैं और बृन्दावन के नटखट बालक उसके पीछे हू-हा करते हुए दौड़ते हैं; परन्तु राधा इन सबसे—अपने चारों ओर की स्थूल परिस्थितियों से पूरे तौर से अनासक्त है। वह किसी बात की रत्ती भर भी परवाह नहीं करती।

युद्ध के इन भयानक दिनों में भी एक दिन राधा ने अभिसार करने का निश्चय किया।

काली अंधेरी रात थी। राधा ने रात ही के समान काले कपड़े पहने, आंखों में उसने काजल लगाया, मांग में गहरे लाल रंग का सिन्दूर भरा, माथे पर बिन्दी दी और हाथों तथा पैरों पर आलक्तक रस लगाया। रेशम के एक बहुत महीन काले वस्त्र से उसने अपना मुंह ढंका। आबनूस की एक बहुत ही सुन्दर बांसुरी अपने हाथ में लेकर राधा चुपचाप नगर से बाहर निकल गई।

रात का दूसरा पहर समाप्त होते न होते सम्पूर्ण पाण्डव-सेना बहुत दूर पर बांसुरी की एक मधुरतम तान सुनकर सहसा विमुग्ध-सी हो गई। बांसुरी की उस लय में मानो कोई व्यक्ति अपने प्राणों की कोमलतम अनुभूति को घोलता चला आ रहा था। वह व्यक्ति भी कोई पुरुष नहीं, एक कोमलांगी नारी। पाण्डव-शिविर के वातावरण में यह तान नशे की खुमारी के समान छा-सी गई।

कुछ देर के बाद सैनिकों ने देखा कि बांसुरी की स्वर-लहरी के साथ-साथ एक कृष्णवसना छायामूर्त्ति-सी संगीत की मूर्त्त प्रतिकृति के समान अन्धकार से धीरे-धीरे पृथक् होकर पाण्डव-शिविर की ओर बढ़ती चली आ रही है।

बांसुरी का स्वर रुक गया और उसकी बजाय बहुत ही मधुर और स्पष्ट स्वर में सुनाई देने लगा—

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप।

एक पहरेवाले ने आगे वढ़कर पूछा, 'कौन है ? दोस्त या दुश्मन ?'

छायामूर्त्ति ने कोई जवाब नहीं दिया।

पहरेदार ने कड़कती आवाज़ में कहा, 'खड़े रहो।'

छायामूर्त्ति खड़ी भी नहीं हुई।

अनेक पहरेदारों ने कमानों पर तीर चढ़ा लिए। परन्तु इसी समय किसी ने जैसे पहचानकर कहा, 'ओह, यह तो कोई नारी है !'

कोई और बोला, 'मालूम होता है, अभिसार के लिए निकली है।'

वह स्थान सैकड़ों सैनिकों की हंसी से गूंज-सा उठा; परन्तु छायामूर्ति अब भी विचलित नहीं हुई। उसने निकट आकर पूछा, 'मुरारी कहां है ?'

एक सेनाध्यक्ष ने कहा, 'पहले तुम बतलाओ कि हो कौन ?'

छायामूर्त्ति ने जवाब दिया, 'मैं हूं राधा।'

सेनाध्यक्ष जैसे कुछ निर्धारित न कर सका कि उसे इस समय क्या करना चाहिए। इसी समय राधा ने कहा, 'तुम मुरारी से जाकर इतना कह देना कि उनकी राधा आई है।'

सम्राट् युधिष्ठिर के मन्त्रदाता श्रीकृष्ण की अभिसारिका ! सम्पूर्ण सैनिक आश्चर्यचकित-से रह गए।

इसके कुछ ही क्षणों बाद राधा और श्रीकृष्ण आमने-सामने खड़े थे। श्रीकृष्ण ने कहा, 'तुम मुझे भूल तो नहीं गईं राधा ?'

राधा ने कहा, 'मैं क्या कभी तुम्हें भूल सकती हूं प्यारे !'

कृष्ण ज़रा विशेष भाव से मुस्कराए और इसी समय अलसाकर उन्होंने अंगड़ाई लेनी शुरू की। शिविर के द्वार पर परदा पड़ा हुआ था और भीतर राधा और कृष्ण को छोड़कर और कोई भी नहीं था। सहसा राधा ने अपने कपड़ों के भीतर से एक तेज छुरी निकाली और बिजली की तेज़ी से श्रीकृष्ण

पर वार किया। परन्तु वह सफल न हो सकी। ज़रा भी शब्द किए बिना श्रीकृष्ण वह वार साफ बचा गए। जैसे वह राधा के अभिसार के उद्देश्य को पहले ही से जानते हों; ठीक उसी तरह, जिस तरह बरसों पहले जंगल में भद्रगोप की उपस्थिति का आभास पाकर उन्होंने राधा की जांघ पर सिर रखकर लेटने का अभिनय किया था। एकाएक राधा ने पाया कि उसका छुरी वाला हाथ श्रीकृष्ण की मज़बूत जकड़ में है।

राधा चुप थी; परन्तु उसके चेहरे पर उद्वेग, भय या क्रोध का चिह्न तक भी नहीं था। धीरे-धीरे वह छुरी राधा के हाथों से लेकर श्रीकृष्ण ने उसे खुला छोड़ दिया और बहुत शान्त भाव से पूछा, 'तुमने यह क्या किया राधा ?'

'तुम मेरे वृन्दावन के परम शत्रु हो। तुम हमें पराधीन बनाने आए हो!'

'फिर भी राधा, क्या तुम भूल गईं कि मैं तुम्हारा मुरारी हूं? मैं वही मुरारी हूं, जिससे कोई अपराध, कोई भूल या कोई अनाचार हो ही नहीं सकता।'

'मैं यह सब जानती हूं मेरे देव! जो कुछ तुम करने आए हो, वह कभी बुरा नहीं होगा'। वही तुम्हारा एकमात्र उचित कर्तव्य होगा। परन्तु वृन्दावन की पुत्री होने के नाते मेरा भी तो एक कर्तव्य है। तुम अपना कर्तव्य पूरा करने आए हो, और देव, मैं भी तो अपना कर्तव्य पूरा करने ही यहां आई थी।'

श्रीकृष्ण के चेहरे पर आह्लादभरी मुस्कराहट की रेखा स्पष्ट दीख पड़ी। कुछ समय तक चुपचाप खड़े रहने के बाद उन्होंने बड़े स्नेह के साथ राधा का हाथ पकड़ लिया और कहा, 'राधा, आर्यत्व की रक्षा और अभिवृद्धि के लिए मैं भारतवर्ष भर में एकछत्र साम्राज्य की स्थापना करना चाहता हूं, और इस कार्य के लिए पाण्डवराज युधिष्ठिर से बढ़कर उपयुक्त व्यक्ति और कोई नहीं जान पड़ा। सम्राट् युधिष्ठिर की अध्यक्षता में जब इस विशाल देश में एक कोने से दूसरे कोने तक एकता की भावना व्याप्त हो जाएगी, तब तुम वृन्दावनवासी भी अपने को पराधीन नहीं समझोगे। परन्तु फिर भी राधा, मैं तुम्हारी खातिर अब वृन्दावन पर अर्जुन को आक्रमण नहीं करने दूंगा। पांडव-सेना कल ही यहां से वापस लौट जाएगी और वृन्दावन को देवभूमि घोषित कर दिया जाएगा।'

और इसके बाद भावुकता से विकम्पित स्वर में श्रीकृष्ण ने कहा, 'राधा, तुम्हारे ही कारण यह धर्मभूमि सदा के लिए महान् तीर्थ गिनी जाएगी। चिरकाल तक तुम्हारा यह बृन्दावन व्याकुल, विक्षुब्ध और सन्तप्त आत्माओं में न केवल शांति का संचार करता रहेगा, अपितु उन्हें कर्तव्य पालन की राह भी दिखाता रहेगा। तुम धन्य हो राधा!'

राधा की आंखों में आंसू भर आए।

कुछ देर बाद युद्धभूमि की यह विचित्र अभिसारिका बांसुरी बजाती हुई पाण्डव-सेना के शिविरों के निकट से निकलकर पुनः अंधकारमग्न हो गई।

दूसरे दिन जब अकस्मात् ही पाण्डव-सेना बृन्दावन के चारों ओर से अपना घेरा उठाकर प्रयाण करने लगी, तब नागरिकों के आश्चर्य और आह्लाद का कोई ठिकाना नहीं रहा। परन्तु उन्हें कुछ भी समझ नहीं आया कि इस अनहोनी घटना का कारण क्या है।

बृन्दावन के सेनापति भद्रगोप को विश्वस्त रूप से समाचार मिला कि पिछली रात को राधा अभिसार के वेश में नगर से बाहर गई थी। इस कल्पना ने भी भद्रगोप के शरीर भर में कंपकंपी उत्पन्न कर दी कि बृन्दावन की स्वाधीनता कहीं उसकी पत्नी के सतीत्व के मूल्य पर तो नहीं खरीदी गई! परन्तु भद्रगोप ने इस सम्बन्ध में किसीसे कुछ नहीं कहा। राधा को इस बात का अवसर ही न मिला कि वह अपने पति के हृदय में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करने का प्रयत्न कर सके और भद्रगोप पुनः अज्ञातवास के लिए कहीं निकल गया।

सम्पूर्ण बृन्दावन में आज भी राधा असती गिनी जाती है। स्वाधीन बृन्दावन के नागरिकों में कहीं भी उसकी प्रतिष्ठा नहीं है। परन्तु राधा अब और भी आत्मतुष्ट हो गई है। उसकी वंशी-ध्वनि अब और भी अधिक मधुर और द्रावक बन गई है। मुरारी-प्रेम के गीत अब वह और भी अधिक तन्मयता के साथ गाती है। बृन्दावन-निवासियों के लिए यह बात दिनोंदिन महान् आश्चर्य का विषय बनती जा रही है कि सम्पूर्ण आर्यावर्त के विभिन्न राज्यों से सम्भ्रान्त आर्य कुलों के सैकड़ों-हजारों भद्र नागरिक बड़े-बड़े कष्ट झेलकर

वृन्दावन पहुंचने लगे हैं, और ये सब उसी 'असती' राधा के दर्शन कर अपने को धन्य मानते हैं। न जाने किस तरह और किसकी उकसाहट से इन दर्शनार्थियों की संख्या क्रमशः अधिकाधिक बढ़ती चली जा रही है और वृन्दावन के नागरिक देख रहे हैं कि उनका नगर केवल इसी 'असती' राधा के कारण सम्पूर्ण भारत की देवभूमि-तीर्थनगरी बनता चला जा रहा है।

और जीवन के इन उतार-चढ़ावों से राधा आज भी एकदम अनासक्त है।

बचपन

आज बहुत दिनों के बाद फारस की चिराग़ नामक घाटी के सूखे नाले में मटियाला पानी बहता हुआ दिखाई दिया था। हाशिम नींद से जागकर खेतों में काम करने के लिए जा रहा था। बहता पानी देखकर उसका दिल खुश हो गया। उसके जी में आया, चलो आज काम में थोड़ी देर ही सही। जमादार पूछेगा तो कोई छोटा-मोटा बहाना घड़ लूंगा। ज़रा फुर्ती करके दिनभर का काम पूरा अवश्य कर लूंगा, ताकि मालिक को नुक्स पकड़ने का मौका न मिले। नाले के दोनों किनारों पर शीशम के वृक्ष दो कतारों में छाए हुए थे। ये पेड़ नाले पर घनी छाया किए हुए थे। इसी छाया में हाशिम नाले के अन्दर पैर लटकाकर बैठ गया। ठण्डी हवा चल रही थी। शीशम के पेड़ों पर बने घोंसलों में चिड़ियां चहचहा रही थीं। फारस की नंगी धूप में दिन-रात शारीरिक परिश्रम करने वाला हाशिम इस ठण्डे स्थान पर बैठकर मग्न हो गया। थोड़ी देर के लिए मानो वह यह भूल-सा गया कि वह एक गुलाम है।

हाशिम आफ़ताबखान नाम के एक बहुत बड़े और कुलीन भूमिपति का ग़ुलाम था। उसके शरीर और प्राण पर आफताबखान को कानूनी हक प्राप्त था। आफ़ताबखान सम्पूर्ण चिराग़ घाटी का मालिक था। उन दिनों वह फारस के सबसे अधिक शक्तिशाली पुरुषों में समझा जाता था। उसके पास सैकड़ों ग़ुलाम थे। इन गुलामों का सर्वस्व उसीका था। वह चाहता तो इन गुलामों को भूखा रख सकता था, कोड़े लगा सकता था और कभी दिमाग बिगड़ जाने पर इनका खून भी कर सकता था। हाशिम उसका एक मामूली गुलाम था। आफ़ताबखान ने उसे खेती-बाड़ी के काम पर नियुक्त कर रखा था। हाशिम ग़ुलाम होते हुए भी नेक था। वह स्वभाव से भोला, खुशमिजाज़, मेहनती और भीरु था। अपने मालिक को यथाशक्ति खुश रखना वह अपना धार्मिक

कर्तव्य समझता था।

हाशिम नाले के किनारे चुपचाप नहीं बैठा था, वह धीरे-धीरे मग्न होकर कुछ गुनगुना रहा था और इसके साथ ही आसपास से सूखे पत्ते बटोर-बटोरकर उन्हें एक-एक कर नाले के बहते हुए पानी में डाल रहा था। पानी के तीव्र प्रवाह में पड़कर जो पत्ता अपने पहले साथियों से आगे निकल जाता था, उसे देखकर हाशिम खुश हो उठता, और जो पत्ता उस साधारण से नाले की छोटी-मोटी भंवरगेरियों में पड़कर पानी में ऊब-डूब करने लगता, उसकी ओर वह बड़ी करुणा और सहानुभूति के साथ देखता था।

हाशिम अपनी इसी धुन में मस्त था कि अचानक अपने पीछे से उसे एक अत्यधिक कोमल और मधुर हंसी सुनाई दी। वह घबराकर उठ खड़ा हुआ। उसकी घबराहट को देखकर वह हंसी और भी मधुर हो उठी। हाशिम ने देखा, उससे कुछ ऊंचाई पर खड़ा होकर उजले कपड़े पहने हुए, एक तेजस्वी और सुन्दर बालक ज़ोर-ज़ोर से हंस रहा है। उसकी उम्र ५-६ बरस से अधिक नहीं होगी। हाशिम पहचान गया कि वह मालिक का इकलौता पुत्र गुलशन है। मालूम होता था कि वह अभी-अभी कहीं दूर से भागता हुआ यहां आया है। परिश्रम के कारण गुलशन के शुभ्र गालों से ललाई मानो टपकने लगी थी। माथे पर पसीने के छोटे-छोटे बिन्दु दिखाई दे रहे थे। हवा के कारण उसके सुनहले बाल लटों में विभक्त होकर इधर-उधर उड़ रहे थे। उस छोटे बालक का यह स्वरूप अत्यधिक हृदयग्राही था। हाशिम इस देवोपम रूप को देखकर मुग्ध हो गया। बड़े आनन्द से, कुछ क्षणों तक उस हंस रहे बालक को देखने के उपरान्त उसने अपनी आंखें नीची कर लीं।

गुलशन के हाथ में एक बड़ा-सा कागज था। इस कागज़ पर स्याही से कुछ रेखाएं पड़ी हुई थीं। जिन दिनों की बात हम कर रहे हैं, उन दिनों एक बड़े आकार का कागज़ कोई मामूली चीज़ नहीं था। प्रतीत होता है कि इस कागज को गुलशन ज़बर्दस्ती अपने पिता से छीन लाया था। इस कागज़ पर किसी नई इमारत का नक्शा बनाया जा रहा था। पिता से हाथ छुड़ाकर, यह कागज़ लिए हुए वह इतनी दूर भाग आने में सफल हुआ था, सम्भवतः उसकी इस बेहद खुशी का यही कारण था। हाशिम को घबराया हुआ देखकर बालक

गुलशन और भी अधिक उच्च स्वर से हंस पड़ा। उसने पूछा, तुम्हारा नाम क्या है ?'

बूढ़े गुलाम ने बड़ी संजीदगी से कहा, 'हाशिम।'

गुलशन ने कहा, 'अच्छा, काका हाशिम ! मुझे इस कागज़ की एक नाव बना दो।'

'काका' का सम्बोधन सुनकर हाशिम गद्गद हो गया। उसने गुलशन के हाथ से वह कागज़ ले लिया। हाशिम के हाथों में हुनर था। उसने शीशम की सूखी लकड़ियां जमाकर उन्हें अपने बसूले से छील-छालकर बराबर कर लिया। अपने कुरते का एक भाग फाड़कर उसने कई रस्सियां तैयार कीं। हाशिम को अपने कपड़े फाड़ते हुए देखकर अबोध बालक ने बड़ी सहानुभूति से कहा, 'हुश, यह क्या करते हो ! फिर पहनोगे क्या ?'

असीम प्रसन्नता से हाशिम को रोमांच हो आया। उसने कोई जवाब नहीं दिया। वह केवल और भी अधिक मनोयोग से बालक की नाव बनाने लगा। २०-२५ मिनटों में नाव का खोल तैयार कर, उसे कागज़ से मढ़कर बाकायदा एक छोटा-सा जहाज़ उसने तैयार कर दिया। उसमें मस्तूल और पाल भी लगा दिए। यह सुन्दर-सा छोटा जहाज़ तैयारकर उसने बालक से कहा, 'यह लो !'

बालक बड़ा प्रसन्न हो गया। उसने बड़े प्रेम से कहा, 'काका हाशिम ! यह तो बहुत अच्छी नाव है। आओ, इसे मिलकर तैराएं।'

हाशिम की आंखों में आनन्द के आंसू छलक आए। उसने मन ही मन इस छोटे बालक के सुखी-जीवन के लिए अपने खुदा से दुआ मांगी।

हाशिम जब अपने खेत के निकट पहुंचा, तब उसके होश गुम हो गए। उसने देखा कि उसके खेत के सम्मुख एक हब्शी जमादार एक बड़ा-सा बेंत हाथ में लिए घूम रहा है। सब गुलाम चुपचाप अपनी-अपनी क्यारियों में अंगूर जमा कर रहे हैं। रोज़ की तरह न कोई गा रहा है और न आपस में बातचीत ही कर रहा है। हाशिम समझ गया कि बैरॉमीटर के पारे का इस प्रकार सहसा नीचे गिर जाना निकट भविष्य के किस तूफान का द्योतक है। एक गुलाम होकर पूरे दोपहर तक अपनी जगह से गायब रहना कोई हंसी-ठट्ठा नहीं है, यह बात

हाशिम भली प्रकार जानता था। वह आज अपने काम पर पूरे चार घण्टे लेट पहुंचा था।

हाशिम डरते-डरते अभी अपनी क्यारियों के निकट पहुंचा ही था कि हब्शी जमादार ने गरजकर पूछा, 'इतनी देर तक कहां था ?'

हाशिम ने कांपते हुए स्वर में बहाना किया, 'पेट में दर्द हो गया था। चलते-चलते राह में गिर पड़ा था।'

जमादार ने यह जांच करने की आवश्यकता नहीं समझी कि हाशिम सच कह रहा है या झूठ। उन दिनों का यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त था कि गुलाम कभी सच नहीं बोलते। जमादार ने तड़ातड़ ५-७ बेंत हाशिम की पीठ पर जड़ दिए। यदि वह कोशिश करता तो शायद अपने मालिक के पुत्र का नाम लेकर इस यन्त्रणा से छुटकारा पा लेता, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। बेंतों की मार से हाशिम ज़मीन पर गिर गया था, धीरे-धीरे अपनी सूजी हुई पीठ को झाड़-पोंछकर वह उठ खड़ा हुआ। हब्शी जमादार उसकी ओर बड़ी क्रोधपूर्ण नज़र से देखता हुआ किसी दूसरी तरफ चला गया।

हाशिम जानता था कि इस घटना का यहीं अन्त नहीं हो गया। उसे मालूम था कि यदि आज वह अपना दिनभर के लिए निर्दिष्ट काम समाप्त नहीं कर पाएगा तो शाम के समय उसकी पीठ का चमड़ा बेंतों की मार से उधेड़ दिया जाएगा। इसलिए वह अपने काम में जुट गया। आज वह शैतान की तेज़ी से अपना काम कर रहा था। उसके साथी हैरान थे कि इस बूढ़े में इतनी ताकत कहां से आ गई।

सायंकाल को जमींदार आफ़तावखान के सहन में सब गुलाम अपनी दिन भर की मेहनत का परिणाम लेकर जमा हुए। हाशिम का उस दिन का काम सन्तोषजनक पाया गया। बूढ़े हाशिम को अब तक चिन्ता की गर्मी क्रियाशील बनाए हुए थी, पर अब उस चिंता से मुक्त होकर वह भारी थकान अनुभव करने लगा। हाशिम अपनी टोकरी लेकर तराजू के पास ही बैठ गया। प्रातः-काल का फाड़ा हुआ कुरता अब भी उसके गले में लटक रहा था। उसकी पीठ बेंतों की मार से सूजी हुई थी। मुंह और दाढ़ी के सफेद बालों पर मिट्टी जमी हुई थी। थकावट के मारे हाशिम का बुरा हाल था।

इसी समय अपनी प्रातःकाल वाली नौका हाथ में लिए हुए बालक गुलज़

इस जगह आ पहुंचा। हाशिम को दूर से देखते ही वह उसकी ओर भागा। हाशिम की सम्पूर्ण उदासी और थकावट दूर हो गई, वह इस सुन्दर बालक की तरफ देखकर मुस्कराने लगा।

गुलशन इस समय तक निकट आ गया था। वह मुहारनी रटने लगा, 'हाशिम, हाशिम, बूढ़ा हाशिम, काका हाशिम।'

अचानक बालक की नज़र हाशिम की पीठ पर पड़ी। उसकी सूजी हुई पीठ को देखकर बालक ने गम्भीर होकर पूछा, 'यह क्या हुआ काका हाशिम?'

जन्म का अभागा गुलाम, बूढ़ा हाशिम इस बार सचमुच झूठ बोला। उसने कहा, 'पेड़ से गिर गया था। मामूली-सी चोट आ गई है।'

बच्चों के दिमाग में कोई बात अधिक देर तक नहीं रहती, और यही शायद बचपन की सबसे बड़ी सिफ्त है, जो बच्चों के दिल को कभी स्थायी रूप से मैला नहीं होने देती। अबोध होते हुए भी वे किसी मनुष्य को देखकर यह भांप लेते हैं कि वह उनसे स्नेह करता है या घृणा। साथ ही उस मनुष्य के आंखों से ओझल होते ही वे यह भी भूल जाते हैं कि वह उनसे प्यार करता था या नफरत। गुलशन भी हाशिम की याद को बहुत शीघ्र भूल गया। उस दिन के बाद वह बहुत दिनों तक हाशिम को दिखाई भी न दिया। फिर भी लोगों में यह बात बड़े ज़ोर से फैल गई कि हाशिम अपने स्वामिपुत्र का मुंहलगा है। लोगों को विश्वास हो गया कि अब शीघ्र ही हाशिम की तूती बोलने लगेगी। इस कारण जहां बहुत-से लोग उससे दबने लगे, वहां उससे खार खाने वाले लोगों की संख्या भी बढ़ गई। यहां तक कि हाशिम को स्वयं भी इस बात का कुछ-कुछ भ्रम हो गया कि जैसे गुलशन पर उसका कुछ विशेष प्रभाव है।

दिन भर का काम-काज समाप्त कर हाशिम अपनी कोठरी के सामने यों ही धीरे-धीरे टहल रहा था कि उसकी दृष्टि दूर पर खड़े होकर पतंग उड़ाते हुए गुलशन पर पड़ी। आज उसे बहुत दिनों के बाद वह तेजस्वी बालक दिखाई दिया था। हाशिम बड़ी शीघ्रता से चलकर उसके निकट पहुंचा। गुलशन अब भी तन्मय होकर अपनी पतंग उड़ा रहा था। हाशिम के भागकर अपनी तरफ आने के कारण उसका ध्यान पल भर के लिए उसकी तरफ गया तो सही, परंतु

बिना किसी विशेष भाव का प्रदर्शन किए वह फिर से अपनी पतंग उड़ाने में लग गया।

हाशिम का खयाल था कि गुलशन अब भी मुझे पहचानता है। अतः वह उसकी तरफ देखकर मुस्कराया। परन्तु वह उसका भ्रम था। छोटे बालक को उस दिन की नाव बनाने वाली घटना विस्मृत हो चुकी थी। वह हाशिम को नहीं पहचान पाया।

बालक का यह उपेक्षा का व्यवहार देखकर हाशिम को कुछ दुख तो हुआ परन्तु वह वहां से टला नहीं। स्थिर रूप से खड़े होकर वह उस सुन्दर बालक की चंचलता का निष्पाप आनन्द लूटने लगा।

बालक बड़े प्रयत्न से पतंग उड़ा रहा था। उसकी नज़र में उसकी पतंग आसमान की छत से टकरा रही थी। परन्तु हाशिम देख रहा था कि बेचारा बालक अभी तक पतंग उड़ाना भली प्रकार नहीं जानता। उसका दिल इस कार्य में गुलशन की सहायता करने के लिए उत्सुक था, परन्तु गुलशन का आज का व्यवहार देखकर उसकी यह हिम्मत न हुई कि वह बालक के हाथ से पतंग लेकर उसे और अधिक ऊंचा उड़ा सके।

अचानक बालक गुलशन प्रसन्नता में भरकर हाशिम की ओर देखते हुए चिल्ला उठा, 'अहा! मेरी पतंग!' शायद उसकी पतंग इस बार दो-तीन फुट और ऊंचाई पर पहुंच गई थी।

हाशिम ने साहस करके बालक के बिना कहे ही उसके हाथ से पतंग ले ली। मालूम होता है कि बालक को हाशिम का यह व्यवहार अच्छा नहीं मालूम हुआ। फिर भी उसने इस बात का विरोध नहीं किया, क्षण भर के लिए वह जैसे भौंचक्का-सा होकर खेल में दखल देने वाले इस बूढ़े की ओर देखता रहा।

हाशिम के हाथ कांप रहे थे। उसने अपनी पूरी ताकत से झटके दे-देकर पतंग को ऊंचा चढ़ाना शुरू किया। दो-तीन झटकों में ही पतंग दुगुनी ऊंचाई पर चली गई। बालक गुलशन का गम्भीर चेहरा अब प्रसन्नता से खिल उठा। वह अब [illegible] बजाने लगा।

परन्तु हाशिम की किस्मत खराब थी। अगले ही झटके में वह अभागा पतंग का तागा तोड़ बैठा। तूफान में बेपतवार नाव के समान पतंग उच्छृंखल होकर आकाश के एक मार्ग में स्वच्छन्दतापूर्वक चल दी। बालक गुलशन एक क्षण तक

निष्प्रभ-सा खड़ा रहा। अगले ही क्षण वह चिल्लाता हुआ पतंग की ओर भागा। बालक की नज़र ऊपर की ओर थी। थोड़ी ही दूर पर एक पत्थर से ठोकर खाकर सम्पूर्ण चिराग़ घाटी के मालिक का लाड़ला पुत्र जमीन पर गिर पड़ा। पतंग छिन जाने के मानसिक कष्ट के बाद यह शारीरिक व्यथा। बालक चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। उसकी टांग पर चोट आ गई थी। कपड़े मिट्टी से भर गए थे।

हाशिम को काटो, तो खून नहीं। वह अचानक यह कैसा कल्पनातीत उत्पात कर बैठा! कुछ क्षणों तक उससे हिला-डुला तक भी न गया। किंकर्तव्यविमूढ़-सी दशा में बैठे हाशिम को दो-एक गुलामों ने पकड़ लिया।

इसी समय उसकी पीठ पर दो-चार गालियों के साथ चमड़े का एक कोड़ा पड़ा। बूढ़ा गुलाम जमीन पर गिर पड़ा। खुद मालिक ही गुस्से में भरकर उस पर कोड़ों की बौछार कर रहा था। हाशिम सिसक-सिसककर रोने लगा। सच पूछो तो उसे कोड़ों की मार नहीं रुला रही थी, वह रो रहा था अपनी फूटी किस्मत के उल्टे दांव पर। जमींदार आफताबखान के अनेक गुलाम हाशिम के हाथ-पैर बांधकर उसे जेलखाने में ले गए।

यह घटना जिस रूप में आफ़ताबखान के सम्मुख रखी गई, उसे सुनकर जमींदार के जी में आया कि हाशिम को जीते जी जमीन में गाड़ दूं। उस ज़माने का कोई भी कानून या कोई भी मजहब उसकी इस इच्छा के मार्ग में बाधक बनकर खड़ा होने को तैयार नहीं था, फिर भी न जाने क्या सोचकर उसने यह मामला कुछ समय के लिए टाल दिया। हाशिम के साथ रहनेवाले कुछ गुलामों ने जमींदार को सुनाया था, 'हज़ूर! आक़ा गुलशन मैदान में अपनी पतंग उड़ा रहे थे। उन्हें अकेला पाकर यह हरामखोर उनके पास गया और सन्नाटा देखकर इसने उनकी पतंग तोड़ डाली और उन्हें धक्का देकर जमीन पर गिरा दिया। यह वहां से भागना ही चाहता था कि हम लोगों ने इसे पकड़ लिया।'

दूसरे दिन आफ़ताबखान ने अपने बच्चों को बुलाकर प्यार से पूछा—क्यों गुल! कल उस गुलाम ने तुझे धक्का दिया था?'

गुलशन ने सिर हिलाते-हिलाते कहा, 'मुझे थोड़ा ही दिया था? तुम्हें दिया था।'

पिता ने पुत्र के कोमल बालों में उंगलियां चलाते हुए पूछा, 'तुम्हारी पतंग उसने तोड़ी थी ?'

गुल के हाथ में उस समय भी एक पतंग थी। उसने उसे दिखाकर कहा, 'नहीं अब्बा ! मेरी पतंग तो यह है।'

कल की चोट से गुलशन की टांग का एक भाग नीला पड़ गया था; आफ़ताबखान ने उसे दिखलाते हुए कहा, 'तो फिर तुम्हें यह क्या हो गया है ?'

आफ़ताबखान की कलाई पर फारसी के नीले अक्षरों में उसका नाम खुदा हुआ था। गुलशन ने पिता की कलाई पकड़कर पूछा, 'तो फिर तुम्हें यह क्या हो गया है ?'

इस बार मुस्कराकर पिता ने अपने लाड़ले और चंचल पुत्र को छाती से लगा लिया। उसे विश्वास हो गया कि इस अहमक लड़के से कोई बात निकलवाना आसान काम नहीं है। इससे कल की सच्ची घटना किसी भी प्रकार ज्ञात न हो सकेगी। बालक गुलशन को यह क्या मालूम था कि जिन प्रश्नों को वह इस प्रकार हंसी में टाल रहा है, उन्हींके उत्तर पर अभागे हाशिम का जीवन आश्रित है। असल में बालक के अन्तस्तल पर कल की घटना का कोई चिह्न तक भी अवशिष्ट न रहा था।

भूमिपति आफ़ताबखान ने एक मटियाला कागज़ उठाकर उसपर बेपरवाही से लिख दिया, 'आगामी जुमारात को मेरी मौजूदगी में हाशिम की नंगी पीठ पर एक सौ कोड़े लगाए जाएं।

निर्धारित मृत्यु से केवल कुछ ही घण्टे पूर्व हाशिम को इस बार फिर उस बाल-मूर्ति के दर्शन हुए। आज शायद उसके जीवन का अन्तिम दिन था। नंगी पीठ पर १०० कोड़ों की मार कोई मामूली सज़ा नहीं है। इससे पूर्व कई बार हाशिम अपनी आंखों से देख चुका था कि जमींदार के हब्शी जमादार किस बेरहमी से दण्डित गुलामों पर कोड़े फटकारते हैं। पांच-सात कोड़ों की मार से ही आदमी की पीठ का मांस चीथड़े-चीथड़े होकर उड़ने लगता है। और उसके बाद ? हाशिम उसके बाद कुछ सोच न सका। केवल दो-एक घंटे की समाप्ति पर ही वह स्वयं प्रत्यक्ष कर लेगा कि उसके बाद क्या होता है।

हाशिम सिर झुकाकर यही सब बातें सोच रहा था कि चंचल गुलशन उसके

द्वार के सींकचों के पास आकर खड़ा हो गया। हाशिम के चिन्तित और उदास चेहरे को देखकर बालक का ध्यान अनायास उसकी तरफ आकृष्ट हो गया। आहट सुनकर हाशिम ने जो सिर उठाया तो उसकी नज़र गुलशन पर पड़ी। आज गुलशन को देखकर सबसे पहले उसके दिल में यही भाव आया—'वही है यह चपल बालक, जिसकी एक चीख के कारण आज थोड़ी ही देर में बड़ी निर्दयता से मेरे प्राण ले लिए जाएंगे।'

हाशिम, अभागा और बूढ़ा हाशिम बच्चों की तरह से फफककर रो उठा।

हाशिम को रोता हुआ देखकर शायद बालक का दिल भी मसोस उठा। उसने बड़ी सहानुभूति के स्वर में पूछा, 'क्यों, रोते क्यों हो ?'

बिना जवाब दिए हाशिम उसी तरह अत्यन्त करुण स्वर में रोता रहा।

बालक ने पुनः पूछा, 'क्या तुम्हें भूख लगी है ?'

हाशिम ने कोई जवाब नहीं दिया, केवल उसके रोने का वेग और भी अधिक बढ़ गया। गुलशन की जेब में पिस्ते भरे हुए थे। एक मुट्ठी पिस्ते हाशिम के सामने डालकर बिजली के समान चंचल वह बालक वहां से भाग गया।

इसके थोड़ी ही देर बाद यम के दूत के समान भयंकर एक हब्शी ने हाशिम की कोठरी का दरवाज़ा खोलकर कहा, 'चलो, वक्त हो गया।'

गुलशन के फेंके हुए पिस्ते कोठरी के सींकचों के पास अब भी उसी तरह बिखरे हुए पड़े थे।

उन दिनों गुलामों को इस तरह की बड़ी-बड़ी सजाएं देने का काम बड़े समारोह के साथ किया जाता था। जैसे यह भी कोई त्योहार हो। समझा जाता था कि इससे अन्य गुलामों के हृदयों पर बहुत वांछनीय मनोवैज्ञानिक संस्कार पड़ते हैं। आज भी आफ़ताबखान के सम्पूर्ण गुलाम कोड़े लगाने की टिकटी को घेरकर कतारों में खड़े किए गए थे। टिकटी से कुछ दूरी पर, गुलामों की कतारों के बीच में, एक ऊंचा चबूतरा था। इस चबूतरे पर कालीन विछाकर एक शाही ढंग की कुर्सी रखी गई थी। इसपर भूमिपति आफ़ताबखान बड़े रौब के साथ बैठा हुआ था।

हाशिम को नंगाकर टिकटी से बांध दिया गया था। पास ही मिट्टी के

एक लम्बे बर्तन में, तेल में भीगे हुए बेंत रखे थे। एक हट्टा-कट्टा हब्शी इन बेंतों की जांच-पड़ताल कर रहा था। सहसा जमींदार का हुक्म हुआ···'होशियार!'

हब्शी जमादार ने कोड़ा सम्भाल लिया; और बूढ़ा हाशिम आंखों में आंसू भरकर खुदा की इबादत करने लगा।

जमींदार अगली आज्ञा देने ही वाला था कि बालक गुलशन कहीं से भागा हुआ वहां आ पहुंचा। वह सीधा अपने पिता के पास चला आया। बालक की ओर ध्यान बंट जाने के कारण आफ़ताबखान को अगला फरमान देने में कुछ विलम्ब हो गया। कोड़ों वाला जमादार अभी तक अपना कोड़ा आसमान में ऊंचा किए खड़ा था।

खुदा से इबादत करते हुए भी हाशिम की दृष्टि इस चंचल बालक पर पड़ ही गई। उस बेचारे की आंखों से दो बूंद आसू, उसके सूखे हुए कपोलों को भिगोते हुए नीचे की ओर खिसक गए। हाशिम के हाथ पीछे की ओर बंधे हुए थे, अतः वह उन्हें पोंछ नहीं सका। ठीक इसी समय बालक गुलशन की नजर इस बूढ़े गुलाम पर पड़ी। बालक सहसा मचल पड़ा, 'इस आदमी को क्यों बांधा है? इसे छोड़ दो। ऊं! ऊं! ऊं!'

परन्तु यह समय लाड़-प्यार का नहीं था। यह समय था सैकड़ों गुलामों के मालिक आफ़ताबखान के रोब प्रदर्शन का। जमींदार ने बालक की परवाह नहीं की। बाएं हाथ से गुलशन को पकड़कर, दायां हाथ ऊंचा उठाकर वह कोड़ों की मार शुरू करने का आदेश देने ही वाला था कि बालक और भी अधिक ऊंचे स्वर में मचल उठा—'ऊं! ऊं! छोड़ दो! मैं नहीं मानता! छोड़ दो! ऊं! ऊं! ऊं!'

पिता ने अब भी अपने लाड़ले पुत्र की तरफ ध्यान नहीं दिया। उसने अपना दायां हाथ उठा ही दिया। अभागे हाशिम की पीठ पर पहला कोड़ा पड़ने ही वाला था कि बालक गुलशन ज़मीन पर लोट-लोटकर ऊंचे स्वर में रोने लगा—'ऊं! ऊं! ऊं!'

जमींदार का उठा हुआ हाथ एकाएक नीचे झुक गया। उसने कहा—'बड़ा ज़िद्दी लड़का है।' अगले ही क्षण [illegible] ने गुलशन को अपनी गोद में उठा लिया। इसके बाद हाशिम की ओर मुखातिब होकर कहा—'तुम्हारे छोटे आक़ा के हुक्म से तुम्हें इस बार माफ किया जाता है।'

दोनों हब्शी जमादारों ने शीघ्रता से हाशिम को टिकटी से खोल दिया।

बालक गुलशन अपने पिता की गोद से उतरकर भागा हुआ हाशिम के पास पहुंचा। अबोध बालक ने अत्यधिक सरल मुस्कराहट के साथ पूछा—'बुड्ढे ! तूने पिस्ते खा लिए थे या नहीं ?'

निम्बो

शामपुर में मशहूर था कि निम्बो के समान तेज़ स्वभाव की लड़की गांव भर में दूसरी नहीं है। उसकी ज़बान कैंची की तरह चलती थी। आवाज़ उसकी तीखी थी—सीधा दिल में जाकर चुभनेवाली। वह किसीकी डांट-फटकार बरदाश्त न कर सकती थी। कोई कुछ कहता, तो दो की चार सुनाती। यह भी नहीं कि वह पहल न करती हो। शरारत उसकी रग-रग में भरी हुई थी। वह पन्द्रह साल की हो गई थी, मगर पनघट या तालाव पर जाकर, नहाती हुई स्त्रियों को तंग करने में उसे अभी तक अपार आनन्द का अनुभव होता था। किसीके कपड़े छिपा देती, किसीकी धोती गीली कर देती, और किसीका भरा हुआ घड़ा उलट देती। इसपर भी कोई कुछ कहता, तो झट लड़ने को तैयार! यही कारण था कि वह गांव भर में शैतान के समान मशहूर थी।

निम्बो पन्द्रह साल की हो गई थी, और अभी तक उसका ब्याह नहीं हुआ था। गांव के लोगों में यह बात आलोचना का विषय थी। देखने-सुनने में निम्बो खासी आकर्षक थी। बड़ी-बड़ी और हर समय गतिमान् रहनेवाली सुन्दर आंखें, चंचल और सुकुमार होंठ। चेहरे की बनावट भी सौन्दर्यपूर्ण थी। रंग साफ और गालों पर स्वास्थ्य की बाल-सुलभ लालिमा थी। यह सब होते हुए भी अभी तक उसका विवाह नहीं हो सका था। वह अपने सम्पन्न मां-बाप की इकलौती और लाड़ली सन्तान थी। इससे एक तो यों भी उसके मां-बाप को उसके ब्याह की जल्दी नहीं थी, उसपर निम्बो के अभी तक अत्यधिक चंचल स्वभाव को देखकर उन्हें कहीं उसके विवाह की बातचीत करने का साहस भी न होता था। दो-एक जगह बातचीत चली भी थी, परन्तु दोनों बार लड़के वालों को गांव के अन्य लोगों ने बहका दिया था, कि इतनी चंचल और लड़ाकी घर में लाओगे, तो किसी दिन घर ही बरबाद हो जाएगा। नतीजा यह हुआ

था कि निम्बो अभी तक कुमारी ही थी।

आखिर निम्बो का भी विवाह हो ही गया। पास ही के एक और गांव अजीतपुर के जमींदार का लड़का तेजनारायण अलाहाबाद के एक कालेज के द्वितीय वर्ष में पढ़ता था। तेजनारायण के पिता पुराने विचारों के व्यक्ति थे और उनका विश्वास था कि उन्नीस साल की उम्र तक जिन लडकों का विवाह नहीं हो जाता, वे ज़रूर ही बिगड़ जाते हैं। इसलिए दसहरे की छुट्टियों में जब तेजनारायण अपने घर आया, तो उसके पिता ने एक सप्ताह के भीतर ही सुन्दरी निम्बो से उसका विवाह कर दिया। तेजनारायण पहले तो विवाह के लिए तैयार ही न होता था, मगर जब गांव के तालाब पर ऊधम मचाती हुई निम्बो का सौन्दर्य उसे चुपके से दिखा दिया गया तो विवाह कर लेने में उसे कोई आपत्ति न हुई।

निम्बो का विवाह तो हो गया, मगर दिल से वह अभी तक कुंआरी ही थी। विवाह के नाम से उसे चिढ़ थी। 'मर्द' की कल्पना से भी वह भय खाती थी। उसके मानसिक राज्य में पुरुषों के लिए कोई स्थान नहीं था। विवाह वाले दिन पहले तो वह खूब गरम हुई। अपने मां-बाप को भी उसने खूब खरी-खोटी सुनाई। इसपर भी जब उसकी किसीने न सुनी, तो उसने अपने सब कपड़े फाड़ डाले। मगर उसके मां-बाप फिर भी न पसीजे। आखिरकार सब तरफ से निराश होकर वह रोने लगी—खूब सिसक-सिसककर। जैसे उसका दिल टूट गया हो। सब ओर से निराश होकर आखिर उसने आत्मसमर्पण कर दिया, और तब उसका विवाह हो ही गया।

तेजनारायण का विवाह तो हो गया, पर सुहाग रात का अनुभव उसके लिए दुनिया भर से निराला था। दिन भर की प्रतीक्षा के बाद आखिर रात हुई और तेजनारायण अपने शयन-कक्ष में बैठकर नव वधू के आने की प्रतीक्षा करने लगा। उसे प्रतीक्षा की यह बेकली तो बहुत देर तक नहीं सहनी पड़ी, परन्तु उसके बाद जो कुछ हुआ, वह तेजनारायण के लिए बहुत उत्साहवर्धक नहीं था।

निम्बो जब से इस घर में आई थी, तब से पूर्ण निष्क्रिय असहयोग की

पिया था। न वह नहाई-धोई, और न उसने कपड़े ही बदले। वह किसीसे बोली तक भी नहीं। उसकी एक रिश्ते की बहन ससुराल में भी साथ आई थी। निम्बो दिन भर उसीका आंचल पकड़े बैठी रही; जैसे चिड़िया का बच्चा बाज़ के डर से अपनी मां को छोड़ना ही न चाहता हो।

रात हुई तो निम्बो की बहन उससे यह कहकर कि 'चलो, अब सोने के लिए चलें, निम्बो को तेजनारायण के कमरे में ले गई, और कमरे में निम्बो के प्रवेश करते ही, शीघ्रता से उसने दरवाज़े के बाहर सांकल लगा दी। निम्बो जैसे पिंजरे में फंस गई। उसका दिल तड़प उठा, और वह ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़े को खींचने लगी। जैसे इस कमरे के वातावरण में उसका दम घुट रहा हो।

दो-एक मिनट तक वह दरवाज़े को ज़ोर-ज़ोर से [illegible]। मगर बाहर से उसकी इस बेचैनी भरी पुकार का किसीने जवाब नहीं दिया।

निम्बो का दिल टूट गया। दरवाज़ा खटखटाना छोड़कर उसी जगह जमीन पर बैठ गई, और बड़े करुण स्वर में पुकारने लगी—'बहनजी! हाय बहनजी!'

इसी समय उसे अपने कन्धों पर किन्हीं हाथों का स्पर्श अनुभव हुआ। इस स्पर्श में एक विशेष तरह की कोमलता थी, जिसे अनुभव करके भी निम्बो ने उसकी परवाह नहीं की। चिल्लाना छोड़कर उसने पीछे की ओर देखा, उसका पति उसे आश्वासन देने आया था।

निम्बो का दिल पूर्ण रूप से विद्रोही हो उठा।—यह नालायक किस हक से मुझे इस तरह एकान्त में अपनाने आया है! उसने तीव्रता के साथ तेजनारायण के हाथ को दूर झटक दिया।

तेजनारायण हिम्मत नहीं हारा। अब की उसने पास ही खड़े रहकर बड़े प्रेम के साथ पुकारा—'निम्बो!'

निम्बो ने तेजनारायण की ओर देखा तक भी नहीं।

तेजनारायण ने पुचकारकर कहा, 'मेरी निम्बो!'

निम्बो को जैसे आग लग गई। उसने कोई जवाब ही नहीं दिया, मगर दरवाज़े के पास से उठकर वह पलंग के पिछवाड़े में चली गई। जैसे वह तेजनारायण से अधिक से अधिक दूर रहना चाहती हो।

तेजनारायण अब भी निराश नहीं हुआ। अब की उसने पलंग को खींचकर इस तरह डाल दिया, जिससे निम्बो को कहीं और भागने का अवसर न मिले।

निम्बो ने देखा कि वह किलेबन्दी से छूट नहीं सकेगी। इसलिए अब उसने भागने का प्रयत्न ही नहीं किया। इसी समय तेजनारायण ने धीरे से जाकर उसे पकड़ लिया। निम्बो ने अब की पुनः उसके हाथों को झटककर परे कर दिया।

तेजनारायण एक क्षण के लिए तो बिलकुल हताश हो गया। परन्तु उसके बाद वह सम्भल गया। निम्बो से कुछ दूर ही खड़े रहकर उसने बड़े स्नेह के साथ कहा, 'निम्बो, मुझसे इतना डरती क्यों हो ?'

निम्बो ने कोई जवाब नहीं दिया।

तेजनारायण ने फिर से कहा, 'मैं कोई बाघ तो नहीं, जो तुम्हें खा जाऊंगा।'

चुप्पी।

'निम्बो !'

कोई जवाब नहीं।

'निम्बो, कम से कम बैठ तो जाओ। इस तरह खड़े रहने से क्या लाभ ?'

निम्बो उसी तरह खड़ी रही, जैसे वह पत्थर की प्रतिमा हो—कुछ ही न रही हो।

'मेरी प्यारी !'

चुप्पी।

'मालूम होता है, यह घर तुम्हें पसन्द नहीं आया।'

चुप्पी ही।

'इस तरह कब तक खड़ी रहोगी ?'

कोई जवाब नहीं।

तेजनारायण ज़रा आगे बढ़ा, और डरते-डरते उसने निम्बो को इस नीयत से छूआ कि वह उसे पकड़कर पलंग पर बैठा दे। निम्बो ने तेजनारायण के इस कार्य में विरोध नहीं किया। वह धीरे-धीरे पलंग के एक किनारे पर बैठ गई, और अपना मुंह उसने कपड़े से ढांक लिया।

पत्नी के आचरण में यह परिवर्तन देखकर तेजनारायण की हिम्मत बढ़ी और धीरे-धीरे वह भी सामने के पलंग पर जाकर बैठ गया।

तेजनारायण ने अब के पूछा—'निम्बो, कुछ पढ़ी भी हो ?'

चुप्पी।

'इतनी शर्म किससे कर रही हो ?'

फिर चुप्पी।

'नींद आ रही है क्या ?'

कोई जवाब नहीं।

निम्बो अपना मुंह दोनों हाथों में पकड़कर बैठी थी। तेजनारायण धीरे-धीरे उसकी तरफ बढ़ा। निम्बो को उसकी गति का ज्ञान तक न हुआ। वह उसी तरह बैठी रही। तेजनारायण समझा कि बस अब वह गड़बड़ न करेगी। हिम्मत करके वह निम्बो के बिलकुल निकट जा बैठा और शीघ्रता से अपनी बांह उसने निम्बो के गले में डाल दी।

निम्बो बिजली की तरह तड़पकर उठ खड़ी हुई। एक ही छलांग में तेज-नारायण से दो-तीन गज़ दूर हटकर उसने अपने मुंह पर से आवरण हटा दिया और गुस्से से कांपती हुई आवाज़ में सिर्फ इतना ही कहा, 'मै कहती हूं, दूर हट जाओ ?'

तेजनारायण कांप गया। उसे प्रतीत हुआ, मानो निम्बो की आंखों से आग की लपट निकलना चाहती है।

दो-एक मिनट तक कमरे में पूरी तरह से सन्नाटा रहा। इसके बाद तेज-नारायण ने आवाज़ दी, 'काकी ! ओ काकी !'

बाहर से आवाज़ आई, 'जी !'

'ज़रा दरवाज़ा खोल देना।'

काकी ने बाहर से दरवाज़ा खोल दिया। दरवाज़ा खुलते ही निम्बो वहां से इस तरह भागी, जैसे पिंजरे में फंसी हुई जंगली चिड़िया मौका पाते ही आस-मान में उड़ जाए।

अगले दिन के प्रातःकाल, अवसर देखकर, निम्बो ने ससुराल से शामपुर की ओर भागने का प्रयत्न भी किया। मगर थोड़ी दूर पर वह पकड़ ली गई। यह दिन भी उसी तरह बीता। तीसरे दिन, हार मानकर निम्बो के ससुराल वालों ने उसे शामपुर भेज ही दिया।

परन्तु आखिर अदम्य और उच्छृंखल स्वभाव की निम्बो को भी यह स्वीकार कर ही लेना पड़ा कि वह विवाहिता है। घर लौटकर, वहां अपने ही लोगों से वह जो पराया-सा व्यवहार पाने लगी, उसने उसे उद्विग्न तो किया, परन्तु उसने पराजय स्वीकार नहीं की। तथापि काल महान् की करनी से धीरे-धीरे स्वयमेव वह स्थिति आ गई, जब उसका अपना हृदय भी बार-बार चिल्लाकर कहने लगा कि वह तो 'विवाहिता' है।

निम्बो के विवाह को अब दो वर्ष बीत चुके थे। इस बीच में उसकी ससुराल वालों ने अनेक बार सन्देसा भेजकर उसे बुलाने का प्रयत्न किया था, परन्तु अपने मां-बाप का घर छोड़कर कहीं और जाने को वह तैयार ही न हुई थी। आखिर हार मानकर उसकी ससुरालवाले चुप हो रहे थे।

परन्तु अब स्वयं निम्बो का अन्तरात्मा ही उसे दूसरी तरह की गवाही देने लगा। वह अब १७ वर्ष की आयु पार कर चुकी थी। गांव की खुली हवा, उत्तम भोजन और पढ़ाई-लिखाई-रहित निश्चिन्त जीवन ने शीघ्र ही निम्बो के अन्तस्तल में बिलकुल नए प्रकार की कोमल अनुभूतियों को जन्म देना शुरू किया। इन सबसे बढ़कर, निम्बो के इस ज्ञान ने कि 'वह विवाहिता है', धीरे-धीरे उसे सचमुच ही 'विवाहिता' बना दिया।

निम्बो के शरीर में लावण्य फूट पड़ा। उसका वक्षस्थल भर आया, मुंह पर तारुण्य का उजेला छा गया और आंखों पर लज्जा के सुनहले पर्दे-से पड़ गए। उसका हृदय स्वयं ही यह अनुभव करने लगा कि वह अकेली है, और अकेलापन अच्छा नहीं होता।

और इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हुई, जिसने निम्बो के जीवन का प्रवाह ही बदल दिया।

गर्मियों के एक दिन की बात है। निम्बो का जी कुछ अच्छा न था। कुछ तो गर्मी की वजह से और कुछ अपनी तबीयत खराब होने से निम्बो को रात भर नींद नहीं आई। सुबह हुई तो उसने अपने में बड़ी थकान और अशान्ति का अनुभव किया।

रात भर हवा बन्द रही थी। इस समय भी आसमान में धूल छाई हुई थी और ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे आज अंधड़-तूफान का दिन रहेगा। दिन की

गर्मी बढ़ने पर निम्बो को बड़ी प्यास-सी अनुभव हुई। बाग का माली उसके परिवार के लिए अनेक तरबूज़ छोड़ गया था। निम्बो ने एक तरबूज़ ले लिया और उसे काटकर वह खा-पी गई।

दस बजने तक उसका जी मचलाने लगा। वह अपने बिस्तरे पर जाकर लेट रही। परन्तु शीघ्र ही उसे कै आ गई। निम्बो की मां ने उसकी परिचर्या शुरू की, परन्तु आध घण्टे में ही उसे करीब १०-१२ बार उल्टी हुई। निम्बो को ऐसा अनुभव होता था, जैसे उसके पेट की सभी नस-नाड़ियां मुंह के मार्ग से बाहर निकल आएंगी।

निम्बो के मां-बाप घबरा गए। उन्हें शक हुआ कि निम्बो को हैज़ा हो गया है। इधर तो गांव के वैद्य को बुलाकर उन्होंने निम्बो की चिकित्सा शुरू कर दी और उधर उसकी ससुराल को यह खबर पहुंचाने के लिए आदमी भी अजीतपुर भेज दिया गया।

तेजनारायण के घर निम्बो की बीमारी का समाचार सांझ को पहुंचा। वहां रोना-धोना शुरू हो गया। तेजनारायण के मुंह पर मानो किसीने हल्दी फेर दी। परन्तु वह चिल्ला-चिल्लाकर रोया नहीं। वह उसी वक्त शामपुर जाने के लिए तैयार हो गया।

आज दिन भर अन्धड़ चलता रहा था और इस समय तो आंधी का वेग और भी अधिक बढ़ गया था। सूरज डूबने में अब अधिक देर नहीं थी, फिर भी सब लोग आज अपने घरों में बन्द होकर बैठे थे। सब ओर सन्नाटा था, केवल तेज़ अंधड़ की सांय-सांय आवाज़ ऊपर-नीचे, दाएं-बाएं, इधर-उधर जैसे सभी ओर से आ रही थी। तेजनारायण ने जूते पहने और किसीसे कुछ भी कहे बिना वह ससुराल के लिए चल पड़ा।

रोना छोड़कर मां ने पुकारा, 'बेटा !'

मुंह उठाकर बाप ने आवाज़ दी, 'तेज !'

सिसकती हुई करुण-सी आवाज़ में बहन ने भी पुकारा, 'भैया !'

मगर तेजनारायण जैसे बहरा था; उसने किसीकी नहीं सुनी। आखिर लाचार होकर घर के अन्य दो-चार आदमी भी उसके पीछे-पीछे हो लिए।

गांव से दो मील की दूरी पर एक छोटी-सी नदी पड़ती थी। शामपुर जाने के लिए इसे पार करना आवश्यक था। इस भयंकर आंधी के समय नाव को

घाट पर बांधकर मांझी समीप के गांव में चले गए थे। तेजनारायण ने घाट पर पहुंचकर आवाज़ दी—'मांझी ओ मांझी।'

कहीं से कोई जवाब नहीं मिला। तेजनारायण के साथी निराश भाव से उसके मुंह की ओर देखने लगे। जैसे वे कहना चाहते हों, कि अब और किया ही क्या जा सकता है?

नदी का पाट बहुत चौड़ा नहीं था, परन्तु इस समय उसमें बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं, मालूम होता है दूर पहाड़ पर जमकर वर्षा हुई थी। आसमान का अंधेरा प्रतिक्षण बढ़ता चला जा रहा था और आंधी का वेग भी अभी तक कम नहीं हुआ था। ऐसे बेवक्त ये लोग लौट जाने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते थे? साथ आनेवालों में तेजनारायण के छोटे मामा भी थे। तेजनारायण ने कांपती हुई आवाज़ में उनसे कहा, 'मामा जी, आप लौट जाइए। मैं अच्छा तैराक हूं। मैं तैरकर अकेला ही शामपुर जा पहुंचूंगा।'

मामा ने फटकारा, 'पागल हुआ है क्या? ठहर ज़रा, आंधी थम जाने दे, तब किसी आदमी को भेजकर मांझियों को बुला लेंगे, और रात ही रात शामपुर जा पहुंचेंगे। ऐसी घबराहट किस काम की!'

मगर तेजनारायण जानता था कि यह तूफ़ान शीघ्र थमने वाला नहीं है। आंधी के बाद पानी बरसने लगेगा, और तब नाव को दूसरी पार ले जाना बिलकुल ही असम्भव हो जाएगा।

पगड़ी और जूते उतारकर तेजनारायण अपने मामा की बात का जवाब तक दिए बिना नदी में प्रविष्ट हो गया। उसके साथी चिल्लाए। मामा ने व्याकुल स्वर में पुकारा, 'लौट आओ, पागल कहीं के! जान देने चले हो!'

मगर तेजनारायण जैसे सचमुच पागल हो गया था। देखते ही देखते वह नदी पर व्याप्त गहन अन्धकार में पहुंचकर अपने रिश्तेदारों की दृष्टि से ओझल हो गया। वे लोग हतबुद्धि-से होकर किनारे पर ही खड़े हुए नदी के अशान्त और भयंकर वक्षस्थल के गूढ़ अन्धकार में भेदनी आंखों से देखने लगे। उन सभी का दिल धड़क रहा था। न जाने तेज का क्या होगा!

अधिक देर नहीं हुई थी कि नदी के दूसरे पार से आंधी की सांय-सांय और लहरों की सप-सप आवाज़ में छिपी हुई ऊंची आवाज़ की प्रतिध्वनि सुनाई

दी। कोई चिल्लाकर कह रहा था—'मामा जी, मैं पहुंच गया हूं। आप लौट जाइए।'

तेजनारायण के रिश्तेदारों की जान में जान आई, और वे वापस लौट गए।

इसके दो घण्टा बाद, जिस समय तेजनारायण शामपुर पहुंचा, उस समय तक मूसलाधार वर्षा शुरू हो गई थी, और रात का घना अंधकार सब ओर व्याप्त हो चुका था। तेजनारायण हांफती हुई-सी दशा में अपनी ससुराल के द्वार तक पहुंचा।

निम्बो और उसके घर के लोग जिस कमरे में थे, उस कमरे का दरवाज़ा अन्दर से बन्द था। वर्षा पड़ने की गम्भीर और यकसां आवाज़ के साथ-साथ सहसा उन्हें अपने घर के आंगन में किसीके हांफने की आवाज़ सुनाई दी। इसके अगले ही क्षण किसीने बाहर से दरवाज़ा खटखटाया। निम्बो की माता ने बड़ी घबराहट के साथ किवाड़ खोल दिए और उसी क्षण वर्षा की बूंदों के एक तेज़ झोंके के साथ-साथ मानो बरसात के देवता की तरह भीगे-भिगाए तेजनारायण ने कमरे में प्रवेश किया।

हरिकेन के मध्यम और कम्पित-हीन प्रकाश में तेजनारायण ने देखा कि घबराने की कोई बात नहीं है। निम्बो अपने बिस्तरे पर सिरहाने के सहारे बैठी है।

इसके साथ ही साथ निम्बो की निगाह भी अपने पति के चेहरे पर पड़ी। उसके भीगे बाल मिट्टी से भरे पड़े थे। नंगे पैर कीचड़ से सने हुए थे। तन के सम्पूर्ण कपड़ों का बुरा हाल हो गया था। उनसे खूब पानी चू रहा था। तेजनारायण की ओर देखकर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कि भग्न जहाज का टूटा-फूटा मस्तूल जीवित होकर चलने-फिरने लगा हो। निम्बो को युवक तेजनारायण का यह चिन्ताकुल और अस्त-व्यस्त रूप किसी देवता के समान मनोहारी जान पड़ा। उसके पीले चेहरे पर लालिमा की एक रेखा-सी दौड़ गई।

निम्बो की मां ने बताया कि चिन्ता की कोई बात नहीं है। असल में निम्बो को हैज़ा हुआ ही नहीं था।

दूसरे दिन जब तेजनारायण अपने गांव की ओर लौटने लगा, तो निम्बो ने

उसे इशारे से अलग बुलाकर कहा, 'मुझे भी अपने साथ लेते चलो !'

तेजनारायण के विस्मय और हर्ष का पारावार न रहा। निम्बो के सौंदर्य की ओर दो-एक क्षणों तक बेवकूफों की तरह ताकते रहने के बाद उसने कहा —'तुम अभी तो कमजोर हो। न हो, कुछ दिन ठहरकर चली आना।'

निम्बो ने अधिकारपूर्वक कहा, 'नहीं, कुछ दिन तो क्या, एक पहर भी नहीं। देखो तो, तुम्हारा चेहरा सूख गया है, आंखें भीतर धंस गई हैं। मैं जानती हूं कि यह सब मेरे ही कारण हुआ है। मैं इसी समय तुम्हारे साथ चलूंगी।'

नतीजा यह हुआ, कि उसी सांझ जब तेजनारायण अपने घर पहुंचा, तो बहू भी उसके साथ ही थी। इतनी शर्मीली—जैसे आज ही उसका ब्याह हुआ हो।

निम्बो अब एक पक्की गृहस्थिन बन गई, परन्तु उसके स्वभाव की तेज़ी अब भी उसी तरह कायम थी। वह अपने पति पर शासन करती थी। निम्बो की एक-एक क्रिया में तेजनारायण के प्रति अगाध स्नेह का भाव भरा रहता था, उसकी ज़बान से कभी कोई क्रोधभरी बात भी नहीं निकलती थी। मगर फिर भी उसके बोलने के ढंग में कुछ ऐसी तेज़ी-सी थी, जो तेजनारायण जैसे नवयुवक को उसके अधीन रखने के लिए काफी थी। जिस निम्बो को पहले 'मर्द' की कल्पना से भी चिढ़ थी, उसी निम्बो के लिए तेजनारायण नाम के आज्ञापालक और विनीत मर्द के बिना एक क्षण काटना भी असम्भव बन गया था। तेजनारायण उसीका है; केवल उसीका—और किसीका भी नहीं।

सुबह से लेकर रात तक तेजनारायण को निम्बो की हुकूमत में रहना पड़ता था। यदि वह कुछ कम खाता तो उसे निम्बो की फटकार सुननी पड़ती थी। यदि कभी जल्दी में वह अधूरे कपड़े पहनकर बाहर जाने लगता तो उस पर डांट पड़ती, और निम्बो उसे साफ-सुथरे कपड़े पहनाकर ही बाहर जाने देती। यदि वह रात को देर तक काम करना चाहता, तो इसपर भी उसे निम्बो की फटकार सुननी पड़ती। जैसे तेजनारायण एक नासमझ बालक हो, और निम्बो उसकी परिचारिका। आध्यात्मिक शब्दों में कहें तो निम्बो आत्मा थी, और तेजनारायण उसका शरीर। आत्मा अपने शरीर को पूर्णरूप से अपने ही

अनुशासन में रखना चाहती थी। जैसे निम्बो एक छोटी-सी बालिका हो, और तेजनारायण उसकी प्यारी गुड़िया।

एक दिन की बात है, किसी घरेलू काम से तेजनारायण को अलाहाबाद भेजने का निश्चय हुआ। परन्तु निम्बो को जब यह समाचार मिला, तो मानो उसे आग लग गई। न जाने क्यों, अलाहाबाद से उसे खास तरह की चिढ़-सी थी। उसने तेजनारायण को शासन के तौर पर कहा, 'देखो, तुम अलाहाबाद किसी भी दशा में नहीं जाने पाओगे।'

तेजनारायण खिलखिलाकर हंस पड़ा। उसने पूछा, 'वह क्यों ?'

निम्बो को जैसे सचमुच गुस्सा आ गया। उसने कहा, 'तुम यह पूछने वाले होते ही कौन हो ? बस, मैंने कह जो दिया। तुम हर्गिज़ अलाहाबाद नहीं जाने पाओगे !'

'आखिर कोई बात भी हो ?'

'मेरी मर्ज़ी।'

'मगर दादा का हुक्म जो है !'

तेजनारायण को मालूम था कि निम्बो अपने ससुर की बड़ी इज्ज़त करती है। इसलिए उसे उम्मीद थी कि दादा का नाम सुनकर वह चुप हो जाएगी। मगर निम्बो अब भी अपनी ज़िद पर अड़ी रही। उसने कहा, 'मैं उनसे कह दूंगी। तुम्हें अलाहाबाद में किसी भी दशा में न जाने दूंगी।'

तेजनारायण ने हंसकर कहा, 'दादा से कहकर तो देखो !'

उसे ज्ञात था कि बहू उनके सामने कभी नहीं बोलती। निम्बो जैसे चिढ़-सी गई। उसने कहा, 'दादा को गरज़ हो तो खुद चले जाएं। मैं तुम्हें वहां नहीं भेज सकती।'

तेजनारायण ने कहा, 'आखिर कोई बात भी हो !'

'बस, मेरी मर्ज़ी।'

मगर काम ज़रूरी था, इसलिए अगले दिन तेजनारायण अलाहाबाद जाने को तैयार हो ही गया।

निम्बो ने देखा कि और किसी तरह से बात बनती नहीं, तो हिम्मत करके वह अपने ससुर के सम्मुख पहुंची, और धीरे से बोली, 'उनसे कह दीजिए कि वह अलाहाबाद न जाएं।'

ससुर ने पूछा, 'क्यों बेटी, वह क्यों अलाहाबाद न जाएं ?'

न चाहते हुए भी निम्बो के मुंह से निकल ही गया, 'इतने बड़े शहर में उन्हें कहीं चोट-वोट लग जाए तो ?'

बूढ़ा बाप बड़े ही स्नेह के साथ खिलखिलाकर हंस पड़ा। उसने कहा, 'अलाहाबाद में और भी तो हजारों आदमी रोज आते-जाते हैं बेटी !'

निम्बो से इस बात का कोई जवाब नहीं बन पड़ा तो वह रुआंसी-सी होकर वहां से भाग खड़ी हुई। चलते वक्त वह तेजनारायण से मिली भी नहीं।

तेजनारायण अलाहाबाद चला तो गया, मगर उसके पीछे घर में एक भयंकर समस्या उठ खड़ी हुई। बहू ने न कुछ खाया, और न पीया। सास ने हज़ारों तरह से कोशिशें कीं। ननद ने सैकड़ों तरह से मनाया। मगर निम्बो तो आखिर निम्बो ही थी। बचपन की हठीली। वह नहीं मानी। दो दिन बीत गए, और निम्बो ने अपना सत्याग्रह नहीं तोड़ा। आखिर पास के कस्बे के तार-घर से तार द्वारा तेजनारायण को शीघ्र लौट आने का सन्देश भेजना ही पड़ा।

तेजनारायण जब घर लौट आया, तब बहू ने अपना अनशन व्रत तो तोड़ दिया, परन्तु उसकी ज़िद अब भी नहीं टूटी। तेजनारायण की ऐसी हिम्मत कि वह निम्बो की बात न माने ! बात न मानने वाला वह होता ही कौन है ! निम्बो पूरे एक सप्ताह तक तेजनारायण से एक शब्द भी नहीं बोली, और उसके बाद, आठवें दिन की सुबह आप ही आप अपने प्रियतम के पास जाकर निम्बो ने कहा, 'अच्छा, मल्का अब के तुम्हें माफ कर देती हैं !'

इसी तरह निम्बो और तेजनारायण के सुखी जीवन के पांच बरस पांच मिनटों के एक मधुर स्वप्न के समान बीत गए, और इस बीच में निम्बो एक पुत्र की माता भी बन गई।

उस दिन के बाद तेजनारायण फिर कभी अलाहाबाद नहीं गया। वह लखनऊ हो आया, कानपुर हो आया और बनारस का भी चक्कर लगा आया, परन्तु निम्बो ने उसे अलाहाबाद नहीं जाने दिया। न जाने क्यों अलाहाबाद से वह बहुत अधिक डरती थी।

निम्बो की तो शायद यह ज़िद ही थी। बिलकुल बच्चों जैसी ही। मगर अन्त में, साबित हुआ, यह विधाता का एक अत्यन्त विचित्र विधान ही।

हाईकोर्ट में एक आवश्यक अपील के लिए तेजनारायण को अलाहाबाद भेजना ज़रूरी था। अतः उसके बाप ने बहू से यह बहाना कर, कि तेज को लखनऊ भेजा जा रहा है, उसे अलाहाबाद भेज दिया।

मगर शीघ्र ही निम्बो को असली भेद मालूम हो गया। अलाहाबाद से तेजनारायण ने अपने पिता के नाम पर जो पत्र भेजा था, उससे निम्बो को मालूम हो गया कि हज़रत अलाहाबाद तशरीफ़ ले गए हैं। निम्बो के क्रोध और अभिमान का पारावार न रहा। ओह, मुझसे ये चालें! आएं तो सही, मैं उन्हें किस तरह आड़े हाथों लेती हूं। अब के एक महीने तक उनसे बात भी की, तो जो चाहे कह लेना।

निम्बो से रहा नहीं गया। टूटी-फूटी भाषा में उसने तेजनारायण के नाम एक गरम चिट्ठी लिखी। मगर जब वह उसे पोस्ट करने लगी, तो उसे खयाल आया कि उसके पास तो टिकट ही नहीं है। तब यह चिट्ठी उसने अपने बक्स में बन्द करके रख दी। उसने सोचा, कल सुबह दादा से लिफाफा लेकर इसे डाकखाने में भिजवा दूंगी।

निम्बो का असहयोग फिर से जारी हो गया। अब की उसने खाना-पीना तो नहीं छोड़ा, परन्तु सबसे बातचीत करना छोड़ दिया। वह सबको बता देना चाहती थी कि उससे इस तरह की चालें नहीं चल सकतीं।

रात हुई तो निम्बो की उदासी बढ़ने लगी। न जाने क्यों, उसका दिल बैठा-सा जाता था। रात भर वह उनींदी-सी रही। बीच-बीच में सैकड़ों तरह के भयंकर सपने देखकर वह चौंक पड़ती थी।

अगले दिन की सुबह निम्बो अपनी कल की चिट्ठी पोस्ट करने का प्रबंध कर ही रही थी, कि दूर ही से उसे अपने दादा के रोने-पीटने की आवाज़ सुनाई दी।

इसके कुछ ही क्षणों के बाद सारा गांव तेजनारायण के मकान पर जमा हो गया। गांव भर में रोना-धोना मच गया। अभी-अभी अलाहाबाद से ज़रूरी तार आया था कि पिछली सांझ को अचानक एक मोटर के नीचे आकर तेज-नारायण का देहान्त हो गया है और उसकी लाश का पोस्टमार्टम किया जाने वाला है।

ओह, मनुष्य के जीवन की यह सबसे बड़ी घटना कभी-कभी कितना अचानक हो जाती है !

निम्बो ! निम्बो !! अभागिनी निम्बो !!!

उपर्युक्त घटना को आज १७ बरस बीत चुके हैं। अजीतपुर का नक्शा ही बदल गया है। निम्बो को छोड़कर उसके घर में कोई भी बाकी नहीं रहा। निम्बो का लड़का भी अपने फूफा के घर लखनऊ में रहता है। अकेली निम्बो ही वहां रहती है। अजीतपुर के उस बड़े-से मकान में विधवा के रूप में अकेले रहते हुए भी निम्बो आज तक अपने को 'विधवा' नहीं मानती।

गांव के पढ़े-लिखे लोग कहते हैं कि वह पगली है। मगर व्यवहार में उसे पगली कोई नहीं मानता। अजीतपुर ही क्या, आसपास के बीसों गांवों में वह 'सती' के नाम से प्रसिद्ध है। सधवा स्त्रियां और बच्चों वाली माताएं पगली निम्बो से अपने तथा बच्चों की दीर्घायु के लिए आशीर्वाद मांगा करती हैं और वह मुक्त हस्त होकर अपना यह वरद आशीर्वाद बांटती है।

अपनी खुशकिस्मती से एक बार मैं भी अचानक अजीतपुर जा पहुंचा था। इस 'ज़िन्दा सती' के दर्शन कर, मेरा जन्म सफल हो गया। ओह, कितना दुष्कर है इस तरह ज़िन्दा रहते हुए सती हो जाना ! सचमुच कोई निम्बो-सा पागल ही ऐसा कर सकता है।

निम्बो के घर पहुंचकर मैंने देखा, अब वह एक कमज़ोर-सी बुढ़िया के समान दिखाई देती है। मुंह पर झुरियां, आंखें गढ़ों में धंसी हुई और सिर के अधिकांश बाल सफेद। तो भी उसकी आंखों में एक विशेष प्रकार की उजली चमक है, और उसके चेहरे पर पवित्रता की स्वर्गीय आभा।

मैंने देखा—निम्बो रसोईघर में चूल्हे के पास बैठी है। उसके निकट ही एक चौकी पड़ी है जिसपर आसन बिछा है। और चौकी के सामने एक अधिक ऊंची चौकी पर परोसा हुआ थाल रखा है। मेरी मानवीय स्थूल आंखों की दृष्टि में वह चौकी खाली थी। मगर सती निम्बो को तो उस आसन पर अपना देवता बैठा हुआ दिखाई देता है। नहीं, देवता नहीं; हठी निम्बो का वही आज्ञाकारी तेजनारायण। तभी तो आज भी निम्बो अपने उस देवता को फटकार

कभी अकेला अनुभव नहीं किया। वह हर समय उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते अपने प्रियतम को अपने समीप ही देखती है। वह अब भी मान करती है, ज़िद करती है, डांटती है और प्यार भी करती है। सत्रह लम्बे-लम्बे साल उसने इसी तरह निकाल दिए हैं। परमात्मा ने उसे अकेला बना दिया था, परन्तु परमात्मा के अटल विधान के सम्मुख भी उसने सिर नहीं झुकाया। प्रकृति के सम्मुख भी उसने पराजय स्वीकार नहीं की।

क, ख, ग

क. हत्या

सांझ का झुटपुटा समय था। पंजाब के पश्चिमोत्तर भाग के उजाड़ इलाके में एक मालगाड़ी धुआं उड़ाती हुई चली जा रही थी। दिन भर पूरी प्रचण्डता से तपकर सूर्य अस्त होने लगा था। हवा बिल्कुल बन्द थी, मानो आसमान का दम घुट रहा हो। वायुमण्डल में धूल इस तरह छाई हुई थी, जैसे किसी हिन्दू जोगी ने अपने गोरे शरीर पर भस्म रमा रखी हो। ड्राइवर और गार्ड दोनों अपनी-अपनी जगह बैठे ऊंघ रहे थे। यह लाइन बहुत चलती हुई नहीं है। दिन भर में भूली-भटकी सिर्फ दो-चार गाड़ियां खट-खट करती हुई इधर से उधर निकल जाती हैं। इस कारण न गार्ड को चिन्ता थी और न ड्राइवर को परेशानी। केवल इंजिन के पेट में कोयला झोंकने वाला नौजवान कुली इस समय भी इंजिन के बाहर की पटरी पर, रेलिंग के सहारे खड़ा होकर, बेढंगी कसरत कर रहा था। शायद वहां उसे कुछ हवा मालूम हो रही हो।

रेलिंग के सहारे इधर-उधर झूलता हुआ कुली अचानक चिल्ला उठा, 'डिराइवर, डिराइवर! गाड़ी रोको। लाइन पर कोई लेटा हुआ है।'

ड्राइवर साहब चौंककर खड़े हो गए। उन्होंने इंजिन की शीशे वाली बड़ी-बड़ी आंखों से सामने की ओर देखा—सचमुच कोई शख्स एक मैली चादर ओढ़े हुए बिल्कुल बेफिक्र होकर ठीक पटरी पर लेटा हुआ है। वह सीटियां देता हुआ बड़बड़ाया, 'इस कम्बख्त को सोने के लिए यही जगह मिली थी।'

परन्तु पटरी पर लेटा हुआ आदमी हिला तक नहीं। ड्राइवर झुंझलाकर बोला, 'कुचल जाने दो साले को।' मगर साथ ही साथ उसके कुशल हाथों ने गाड़ी को रोकने के लिए ब्रेक भी खुद-ब-खुद कस दिया। गाड़ी की चाल एक-दम धीमी पड़ गई। कुली ज़ोर-जोर से हंसकर बोला, 'बचुआ लाइन पर ऐसे

मज़े में सो रहे हैं, जैसे ससुराल में पलंग पर पड़े हों। लोहे का वह विशाल-काय चलता-फिरता राक्षस इस समय भी तीक्ष्ण स्वर में एक पर एक ललकार दे रहा था। परन्तु आश्चर्य यह कि पटरी पर सोया हुआ आदमी अब भी उठा नहीं।

गाड़ी उस सोए हुए आदमी के अत्यन्त निकट आकर रुक गई, मगर चादर में कोई गति दिखाई नहीं दी। ड्राइवर अक्लमन्द था। वह समझ गया कि दाल में कुछ काला है। इस समय तक गार्ड भी इंजिन के निकट आ गया था। दोनों ने एक साथ उस ढेर के निकट जाकर देखा—चादर पर जगह-जगह लाल दाग़ थे। उनपर मक्खियां भिनभिना रही थीं। गार्ड को मामला समझने में देर न लगी, परन्तु कुली इतना तीव्रबुद्धि न था, वह कौतूहल के मारे पागल हो रहा था। उसने चादर खींचकर अलग कर दी। देखा, उसके नीचे दस-ग्यारह बरस के एक सुन्दर बालक की लाश पड़ी हुई है।

मामला एकदम संगीन था। गाड़ी उस लाश को लेकर आगे बढ़ी। अगला स्टेशन बहुत दूर नहीं था।

उस स्टेशन का नाम मुझे स्मरण तो है, परन्तु वह इतना बेढंगा है कि उसे छिपाए रखना ही अधिक उपयुक्त है। स्टेशन के आसपास कोई विशेष आबादी नहीं है। स्टेशन इतना नगण्य है कि उसके सिगनल के दोनों हाथ हर समय एक ही साथ नीचे की तरफ झुके रहते हैं। गार्ड ने अपने डिब्बे में से झांककर देखा कि उस उजाड़ और सुनसान स्टेशन पर पांच-सात आदमियों की एक टोली जमा है। इस छोटे-से स्टेशन पर सांझ के समय पांच-सात आदमियों का जमा होना भी एक आश्चर्यजनक घटना थी। गाड़ी प्लेटफार्म पर पहुंच गई, परन्तु वह टोली अपने ही काम में व्यस्त रही। गार्ड ने गाड़ी से उतरकर देखा कि इस स्टेशन से तीन मील की दूरी पर जो कस्बा है, उसका सरकारी डाक्टर एक बीस-बाईस बरस के नौजवान हिन्दू को पकड़े हुए खड़ा है। वह नौजवान बहुत घबराया हुआ प्रतीत हो रहा था।

सिक्ख गार्ड ने नज़दीक आकर स्टेशन मास्टर से पूछा, 'क्या मामला है ?'

स्टेशन मास्टर ने कहा, 'थोड़ी देर हुई डाक्टर साहब अपने दो-चार दोस्तों के साथ सैर के लिए जा रहे थे। राह में उन्हें यह नौजवान अकेला आता हुआ मिला। डाक्टर साहब को देखकर यह चौंका। इसके कपड़ों पर ख़ून के दाग़

थे, अतः डाक्टर को इसपर सन्देह हो गया, और वह इसे अपने साथ पकड़ लाए।'

गार्ड ने कहा, 'मेरा मामला तो और भी संगीन है। हमें लाइन पर एक लाश मिली है।'

इसी समय इंजन का कुली गाड़ी में से वह नन्ही-सी लाश उठाकर प्लेटफार्म पर ले आया। इस लाश को देखते ही वह नौजवान जिसे डाक्टर साहब ने पकड़ रखा था, भय से चीख उठा। लोगों ने पहचाना—वह नौजवान और यह मरा हुआ बालक दोनों एक ही घर में रहने वाले दूर के भाई थे। मामला संगीन होने के साथ ही साथ पेचीदा भी हो गया।

डाक्टर साहब थे तो गांव के डाक्टर, मगर समझदार काफी थे। उन्हें पहले ही से यह सन्देह था कि यह नौजवान कोई असाधारण काम करके आ रहा है। अब यह लाश देखकर उन्हें विश्वास हो गया कि इस बालक की हत्या इसी व्यक्ति ने की है, परन्तु ये दोनों तो चचेरे भाई हैं, फिर बड़ा भाई छोटे भाई की हत्या क्यों करेगा? तथापि इस समस्या पर अधिक गहरा विचार न कर डाक्टर साहब ने उस नौजवान को डांटकर कहा, 'सच बता! तूने इस बच्चे का खून किसलिए किया है?'

वह कमज़ोर दिल का नौजवान डर से कांपने लगा। उससे कोई जवाब न दिया गया।

लाइन के कांटे बदलने वाला स्टेशन का बूढा पोर्टर बड़ा रहमदिल था, उसे इस जवान पर दया आ रही थी। उसने कहा, 'हुज़ूर, यह भी तो नामुमकिन नहीं कि किसी दूसरे आदमी ने इन दोनों भाइयों को एक साथ मारने की कोशिश की हो, परन्तु जवान होने के कारण यह तो भाग आया हो, वह बच्चा भाग न सका हो।'

डाक्टर ने डांटकर कहा, 'चुप रहो। तुमसे कौन पूछता है? क्या इस आदमी की अपनी ज़बान नहीं है?'

बूढ़ा पोर्टर चुप हो रहा।

अब ड्राइवर की अक्ल काम आई। उसने कहा, 'इस बूढ़े की बात भी नामुनासिब नहीं है। इस जवान के कपड़ों पर भी खून के दाग हैं। सम्भव है कि किसीने इसे भी पीटा हो। अब देखना यह चाहिए कि इसके शरीर पर

भी कोई चोट का निशान है या नहीं।'

यह बात सब लोगों को ठीक जंची। डाक्टर साहब तो मौजूद थे ही; जवान का जिस्म बड़ी होशियारी के साथ टटोला गया, परन्तु उसके शरीर पर चोट का एक भी चिन्ह नहीं था। आश्चर्य तो यह कि उसके ऊपर वाले कपड़ों पर तो खून के दाग थे, परन्तु भीतर के कपड़ों पर किसी प्रकार का कोई निशान नहीं था। लोगों को अब यह विश्वास हो गया कि बालक की हत्या में इस बड़े भाई का भी हाथ अवश्य है।

अब सिक्ख गार्ड की ताकत काम आई। उसने आव देखा, न ताव, झट से उस कमज़ोर-से जवान का गला दोनों हाथों में पकड़ लिया और कहा, 'सच बता, तूने इस बच्चे को क्यों मारा है ! नहीं तो, याद रख, तेरा गला भी अभी घोंट देता हूं।'

वह नौजवान चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। गार्ड ने देखा, यह आदमी जवाब नहीं देता, उसने उसका गला थोड़ा-सा दबा दिया। जवान ने चीख मारकर कहा, 'गला छोड़िए। मैं अभी बताता हूं।'

गार्ड ने उसका गला ढीला तो कर दिया, मगर अपने फौलादी पंजों को वहां से उठाया नहीं। खूनी बिलकुल कच्चा और कमजोर हृदय का था, इसलिए उसने यह बहुत शीघ्र स्वीकार कर लिया कि हत्या मैंने ही की है।

इंजिन का मुसलमान कुली हैरत में आकर बोला, 'लाहौल बिला कूवत !'

गार्ड, डाक्टर और स्टेशन मास्टर इन तीनों थोड़ी-बहुत अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्तियों ने जिरह करके इस आदमी से जो बयान लिया, वह संक्षेप में इस प्रकार है—

'हम दोनों चचेरे भाई हैं। इस बालक के पिता का देहान्त हो चुका है, माता जीवित है, भाई या बहन कोई नहीं। इसके पास ७० बीघा ज़मीन है। मैं बड़ा गरीब हूं। आजीविका का कोई साधन मेरे पास नहीं। किसीने सुझाया था कि यदि यह बालक मर जाए, तो इसकी जायदाद पर तुम्हारा हक हो जाएगा। यह बात मुझे जंच गई। आज दोपहर को मैंने इससे कहा कि आओ, अपनी ज़मीन पर खरबूजे खाने के लिए चलें। यह बड़ी खुशी से तैयार हो गया। रेलवे लाइन के नजदीक वाले जंगल में पेशाब के बहाने मैं जरा पीछे रह गया, और अपना चाकू निकालकर इसके गले पर वार किया। यह

चिल्लाया, मगर मैंने दो-तीन वार और करके इसे खत्म कर दिया। लाइन नज़दीक थी। मैंने इसे लाइन पर इस गरज से रख दिया कि रात की मालगाड़ी से यह लाश कट जाएगी, तब लोग यही समझेंगे कि रेल के नीचे आकर ही इस बच्चे की मौत हुई है।'

इंजिन का कुली ऊंचे स्वर में चिल्ला उठा, 'खुदा है।'

ड्राइवर ने पूछा, 'क्यों ?'

कुली ने कहा, 'रोज़ की तरह अगर आज भी हमारी गाड़ी रात को ही आती, तो यह मामला खुलता ही नहीं। खुदा की मरजी थी कि मुझे यह लाश पहले ही से दिखाई पड़ गई।'

इसी समय सिक्ख गार्ड ने सीटी देकर कहा, 'चलो, हम किसी और लाश की तलाश में चलें। इस लाइन पर लाशें इस अधिकता से मिलती हैं, जिस तरह हिन्दोस्तान में भिखारी।'

ख. शहादत

इस बीसवीं सदी में अब तक भी दुनिया में अनेक ऐसे अन्धेरे कोने बाकी है, जहां मनुष्यों की आबादी तो है, मगर नये युग का प्रकाश नहीं पहुंच पाया है। इन स्थानों पर अभी तक तैमूरलंग के ज़माने की सदी ही विद्यमान है। यहां न रेल है, न डाक और न तार। लोग उसी तरह मिट्टी की दीवारों पर छप्पर डालकर रहते हैं। उनकी सम्पत्ति भी बिलकुल पाषाणयुग की है, अर्थात् कुछ भैंसें, गौएं, बैल और कुछ कमजोर घोड़े। पंजाब के पश्चिमोत्तर भाग के एक ऐसे ही अंधेरे कोने में रमज़ान का घर है। रमज़ान नौजवान है। दिल का साफ, जिस्म से तन्दुरुस्त और मिजाज़ का खुश। उसका घर एक ऐसी ही छोटी-सी बस्ती में होते हुए भी वह स्वयं वर्तमान सभ्यता की पहुंच से बाहर नहीं है। वह रेल पर सवार होकर लायलपुर तक का चक्कर लगा आया है। लायलपुर रहते हुए दो-एक दफा डाकखाने में जाकर उसने पोस्टकार्ड भी खरीदे हैं। पोस्टेज की इन्तजार में खिड़की के किनारे खड़े रहकर उसने यह भी देखा है कि डाकखाने के मुन्शी किस प्रकार खट-खट करके तार देते हैं। वह पूरे छः महीने तक लायलपुर में मजदूरी करता रहा है। आज वह चांदी के ७० चमकते हुए रुपए अपनी धोती के पल्ले में बांधकर घर लौट रहा है।

मुद्दत के बाद घर लौटते हुए आदमी को जो प्रसन्नता अनुभव होती है, वह शायद सबसे अधिक पवित्र, मीठी और गहरी प्रसन्नता है। नौजवान रमज़ान गांव की पगडण्डी पर चलते हुए इसी खुशी में मस्त होकर ढोला का गीत गा रहा था। उस उजाड़ इलाके में यह पगडण्डी सांप की तरह टेढ़ी-मेढ़ी होकर और मिट्टी के टीलों के कारण लहरों की तरह ऊंची-नीची होकर बिछी हुई है। दोनों ओर कीकर, सरकण्डा और करीर के झाड़-झंखाड़ हैं। रात का समय था। दूर पर सैकड़ों गीदड़ एक साथ चिल्ला रहे थे। पास की नहर का बांध तोड़कर कहीं-कहीं पानी इस पगडण्डी के नजदीक के गढ़ों में आकर भर गया था। इन गढ़ों में मेढक टर्रा रहे थे। पगडण्डी पर मच्छरों की फौजें बैण्ड बजा रही थीं। इस गीदड़ों की चिल्लाहट, मेढकों की टरटराहट और मच्छरों की भिनभिनाहट में रमज़ान की ऊंची तान एक विशेष समा बांध रही थी। रमज़ान आज खुश था; इतना कि उसकी खुशी का अन्दाज तक नहीं लगाया जा सकता। उसके हाथ में एक मजबूत डण्डा था, और पीठ पर एक चादर के पल्ले में घर के बच्चों के लिए कुछ मिठाई और खिलौने बंधे हुए थे।

रमज़ान का गांव बहुत ही छोटा है। एक बड़े-से टीले की ओट में वह आठ-दस कच्चे घरों की बस्ती बसी हुई है। इस टीले से उतरकर जब रमज़ान गांव के निकट पहुंचा, तब उसे अपने पीछे की एक झाड़ी में से सरसराहट की आवाज़ आई। रमज़ान को सन्देह हुआ कि कोई मेरा पीछा कर रहा। रमज़ान ने ज़ोर से कहा, 'होशियार !'

सब ओर पहले की तरह सन्नाटा छाया रहा। कहीं से कोई आवाज़ नहीं आई। दो-एक मिनट तक वहीं खड़ा रहकर रमज़ान आगे बढ़ा।

रमज़ान अपने घर पहुंचा। रात काफी बीत चुकी थी। सब लोग खा-पीकर सो गए थे। केवल उसका बूढ़ा बाप अब भी चारपाई पर बैठकर हुक्का गुड़-गुड़ा रहा था। बाहर से पुकार सुनकर बूढ़े ने दरवाज़ा खोला। अचानक अपने पुत्र को देखकर उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। रमज़ान के बच्चों को छोड़कर और सब लोग जाग गए—उसकी मां, उसकी दो बहनें और उसकी पत्नी। घर में नए सिरे से जीवन का संचार हो गया। सब लोग खूब दिल खोलकर रमज़ान से मिले।

और-और बातों के बाद रमज़ान ने अपनी चादर का पल्ला खोला। अन्दर

से निकले, कुछ बूंदी के लड्डू, कुछ लकड़ी के खिलौने और दो-एक रबड़ की सस्ती गेंदें। रमज़ान ने अपनी पत्नी से पूछा, 'मुन्नू कहां है ? उसके लिए यह खिलौना लाया हूं।'

मुन्नू रमज़ान के छोटे लड़के का प्यार का नाम था। रमज़ान को उससे असीम स्नेह था। मुन्नू अभी तक बेहोश-सा सोया हुआ था। पत्नी ने कहा, 'वह सोया हुआ है। कहो तो जगा दूं।'

रमज़ान ने कहा, 'नहीं, सोया है तो सोया रहने दो। सवेरे यह सामान उसे दे दूंगा।'

थोड़ी देर में सब लोग सो गए। रमज़ान ने अपने रुपये घर के अन्दर एक घड़े में रख दिए।

रात के तीसरे पहर रमज़ान का बूढ़ा बाप घर के अन्दर से कुछ आहट पाकर जाग उठा। अपना गला साफ करके उसने ज़ोर से कहा, 'कौन है ?'

इसके अगले ही क्षण घर में से पांच-छः मिट्टी के घड़े एक साथ गिरने की ऊंची आवाज़ आई। रमज़ान जाग गया। घर की औरतें भी जाग गईं। अन्दर जाकर देखा तो मिट्टी की दीवार में एक बड़ी-सी सेंध लगी हुई है। घर का सामान चुराया तो नहीं जा सका, परन्तु वह सब अस्त-व्यस्त होकर बिखरा पड़ा है। रमज़ान भी सेंध में से होकर बाहर निकल आया। उसे दिखाई दिया कि दो-एक आदमी भागे चले जा रहे हैं। रमज़ान चिल्लाया 'चोर! चोर!' इसके साथ ही वह उनके पीछे दौड़ा। आसपास के सब लोग भी जाग गए थे, उन्होंने भी रमज़ान का अनुसरण किया।

दोनों चोर आगे-आगे थे, रमज़ान उनके पीछे, और अन्य ग्रामीण उसके पीछे। काली अंधेरी रात थी। उस उजाड़ प्रान्त की कांटेदार झाड़ियों को रौंदते हुए ये सब लोग भागे जा रहे थे। नाले के किनारे पहुंचकर आगे दौड़ने के लिए जगह न मिलने के कारण एक चोर रुका। इसी समय रमज़ान ने उसे मजबूती से पकड़ लिया। रमज़ान चिल्लाया, 'दौड़ो, दौड़ो, चोर पकड़ा गया!'

अन्य ग्रामीण अंधकार के कारण बहुत पिछड़ गए थे। अब रमज़ान की आवाज़ सुनकर वे भी उसी तरफ भागे।

इसी समय पहला चोर लौटा, उसके पास एक लम्बा छुरा था। यह छुरा उसने पूरे जोर के साथ रमज़ान की पसली में मारा। छुरा इतने जोर से अन्दर

धंसा कि वह चोर फिर उसे बाहर निकाल भी न सका। रमज़ान के गले से एक तेज़ चीख़ निकली। इस घायल अवस्था में भी रमज़ान ने अपने दांतों से चोर की अंगुली को इतने ज़ोर से काटा कि वह उसके हाथ से कटकर अलग हो गई, परन्तु अगले ही क्षण रमज़ान निस्तेज हो गया। दोनों चोर भाग गए।

ग्राम भर के लोग उस अन्धेरी और भयानक रात में नाले के किनारे जमा हुए। रमज़ान इस समय अन्तिम श्वास ले रहा था। उसका बूढ़ा बाप भी रोते-रोते वहां पहुंचा। रमज़ान को अब भी थोड़ा होश था। उसने कहा, 'बाबा, रोओ नहीं।'

सब ग्रामीण हतबुद्धि-से होकर आंसू बहा रहे थे। दूर पर ग्राम से रो-रोकर आती हुई औरतों का करुण क्रन्दन सुनाई दे रहा था। यह करुण ध्वनि क्रम-क्रम से और समीप आती जा रही थी। इसी समय रमजान ने धीमे स्वर में कहा, 'बाबा, इस बात का ख्याल रखना। ये दोनों आदमी किसी दूसरे इलाके के हैं। हमारे आसपास के नहीं हैं। यह ख्याल रखना कि इस घटना के कारण मेरे पीछे किसी पड़ोसी पर कोई आफत न आए।'

थोड़ी देर में वीर रमज़ान का शरीर प्राणशून्य हो गया।

ग. बलिदान

देवेन्द्र एक धनी ज़मींदार का तरुण वयस्क पुत्र था। इसके पिता अपनी ज़मींदारी के एक बढ़िया बंगले में रहते थे। उनका यह बंगला रेलवे स्टेशन से बहुत दूर नहीं था। देवेन्द्र को उन्होंने शिक्षा प्राप्ति के लिए लाहौर भेज रखा था, परन्तु अपनी अधिकांश छुट्टियां वह अपनी ज़मींदारी में ही काटा करता था।

देवेन्द्र आजकल लाहौर के गवर्नमेंट कालेज के तीसरे वर्ष में पढ़ता है। कुछ दिन हुए वह बड़े दिनों के अवकाश में अपने घर गया था। वहां उसके साथ एक घटना घटी थी। देवेन्द्र के कोमल हृदय पर इस घटना का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है।

देवेन्द्र जिस समय अपने एक नौकर के साथ घर के दरवाज़े पर पहुंचा, उसी समय घर में से एक बहुत सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट कुत्ता भौंकता हुआ बाहर निकला। देवेन्द्र इस आवाज़ से कुछ घबराया ही था कि नौकर ने कुत्ते को

पुचकारा, 'मोती ! मोती ! पुच् ! पुच् !'

मोती इस समय तक बाहर आ गया था। देवेन्द्र को आज उसने पहली ही बार देखा था, फिर भी वह अजान पशु यह समझ गया कि देवेन्द्र को भौंककर उसने कुछ ठीक नहीं किया। वह क्षमाप्रार्थी नेत्रों से देवेन्द्र की ओर देखते रहकर अपनी पूंछ हिलाने लगा, परन्तु देवेन्द्र को अब इस ओर ध्यान देने की फ़ुरसत नहीं थी। वह अपनी बहनों और छोटे भाइयों से घिर गया था।

भोजन के समय देवेन्द्र को मोती के पुनः दर्शन हुए। देवेन्द्र जब अपने खाने के कमरे में गया, तब मोती वहां पहले ही से विराजमान था। देवेन्द्र को आता देख वह अदब के साथ उठा और देवेन्द्र के बैठ जाने पर बैठ गया। देवेन्द्र भोजन करने लगा, उसकी छोटी बहन शची परोसने का काम कर रही थी। मोती सकाम भाव से देवेन्द्र के हिलते हुए जबड़ों की ओर देखने लगा। आज भोजनालय में बहुत बढ़िया-बढ़िया माल परोसा जा रहा है, मोती भी यह बात समझ गया था। देवेन्द्र ने अपनी थाली में से आलू के परौंठे का एक बड़ा-सा टुकड़ा तोड़कर मोती के सामने फेंक दिया। मोती ने पूंछ हिलाते-हिलाते बड़े आनंद के साथ उस ग्रास को उदरस्थ कर लिया। बस, अब देवेन्द्र और मोती में गहरी दोस्ती हो गई। मोती समझ गया कि यह मेरे नये मालिक हैं।

पूरे नौ दिनों तक मोती देवेन्द्र की छाया बनकर उसके साथ रहा। देवेन्द्र से वह इस थोड़े अरसे में ही इतना अधिक हिल-मिल गया, जितना वह अब तक घर के किसी अन्य व्यक्ति से न हिल सका था। नौ दिनों के बाद देवेन्द्र की विदाई का समय आया। मोती भी स्टेशन तक साथ ही साथ गया। आज वह बेचारा बहुत उदास था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि मेरा यह नया मालिक मुझे क्यों इतनी जल्दी छोड़कर चल दिया है। स्टेशन पर घोड़े से उतरकर देवेन्द्र ने मोती को थपकियां दे-देकर खूब प्यार किया। इसके बाद गाड़ी आने पर वह अन्दर जाकर उसमें सवार हो गया। स्टेशन छोटा था, अतः गाड़ी वहां बहुत थोड़ी देर रुकती थी। देवेन्द्र के पिता और उसके छोटे भाई तो प्लेटफार्म पर चले गए थे, परन्तु उसके नौकर अन्दर नहीं जा सके थे, इस कारण वे लोग प्लेटफार्म की समाप्ति पर, स्टेशन के लकड़ी से बने जंगले के बाहर, लाइन के बिलकुल किनारे जाकर खड़े हो गए थे। मोती भी अन्दर नहीं जा सका था, इसलिए वह भी उसी स्थान पर जा खड़ा हुआ था। गाड़ी

सीटी देकर चल दी। देवेन्द्र फर्स्ट क्लास के डिब्बे की खिड़की में से मुंह बाहर निकालकर अपने पिता और भाइयों की ओर देखने लगा।

क्रमशः गाड़ी प्लेटफार्म के बाहर आई। देवेन्द्र का सिर अब भी खिड़की से बाहर ही था। उसके नौकरों ने उसे सिर झुकाकर प्रणाम किया। देवेन्द्र भी उनके नमस्कारों का हाथ हिला-हिलाकर जवाब देने लगा। उफ, यह क्या? देवेन्द्र को देखते ही वह अबोध और स्नेही मोती रोता हुआ पूरे बल के साथ ऊपर की तरफ उछला। गाड़ी काफी तेज़ हो गई थी। बेचारा जानवर खिड़की से टकराकर नीचे गिरा, और उसी क्षण रेल के भारी पहियों ने उसके फूल से शरीर को दो टुकड़ों में विभक्त कर दिया।

एक सप्ताह

गुलमर्ग

३ अगस्त……

प्यारे कमल,

मुझे माफ करना, उस दिन शाम की चाय के समय तुम मेरा इन्तजार करते रहे होगे, और मैं इधर खिसक आया। आज तुमसे १२०० मील की दूरी पर और तुम्हारे कलकत्ता महानगर से ६००० फुट अधिक ऊंचाई पर बैठकर मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूं। तुम जानते ही हो कि मैं किस तबीयत का आदमी हूं। उफ, वहां कितना बोझ था। काम, काम, हर वक्त काम। मेरी तबीयत सहसा ऊब गई और तुम्हें भी सूचना दिए बिना मैं एकाएक इतने लम्बे सफर के लिए खिसक आया। उस दिन चाय के समय मुझे मौजूद न पाकर यद्यपि तुम मुझपर काफी खीज तो लिए ही होगे, फिर भी उस असुविधा के लिए मुझे माफ कर देना।

हिमालय की यह विशाल घाटी बड़ी सुहावनी है। घने जंगल, निर्मल झरने, विस्तृत मैदान, तीन ओर बरफ से ढकी पहाड़ों की ऊंची-ऊंची चोटियां और चौथी ओर नीचे दूर पर दिखाई देने वाली वुलर झील। इस स्थान से मैं सचमुच प्यार करता हूं। यहां एक सप्ताह बिलकुल निकम्मा रहकर काटूंगा। कुछ नहीं करूंगा। केवल तुम्हें ही पत्र लिखूंगा और तुम्हारे पत्रों को छोड़कर और कुछ भी नहीं पढ़ूंगा।

भाई कमल, मैं अकेला हूं। तुमने अनेक बार मेरे इस अकेलेपन की आलोचना की है; मगर यहां आकर मैं अनुभव करता हूं कि जैसे प्रकृति मेरी मां है। मैं अकेला कहां हूं, मैं तो अपनी मां की गोद में हूं।

चिन्ता न करना। मैं यहां एक सप्ताह से अधिक नहीं ठहरूंगा। एक सप्ताह

यहां रहूंगा और उसके बाद दो दिन मुझे कलकत्ता पहुंचने में लगेंगे। १२ अगस्त के सायंकाल तुम मुझे अपनी चाय की टेबिल पर ही पाओगे।

बाहर एक कसा हुआ घोड़ा मेरा इन्तज़ार कर रहा है, अतः बाकी कल।

तुम्हारा—
स०

२

गुलमर्ग
४ अगस्त........

भाई कमल,

सुबह ९ बजे बिस्तर से उठा हूं। अभी तक नींद की खुमारी नहीं टूटी। कल बहुत दिनों के बाद घुड़सवारी की थी, अतः टांगें कुछ थक गई हैं। आज कहीं नहीं जाऊंगा। मेरे मकान में और कोई नहीं है। मैं अपने सोफे पर अकेला पड़ा हूं। बाहर धीमी-धीमी वर्षा हो रही है। चारों तरफ सन्नाटा है। ओह, सामने की इस खिड़की से कितना अनंत सौंदर्य मुझे दिखाई दे रहा है।

आज कुछ नहीं लिखूंगा। सोचा था कि आज एक चित्र बनाऊंगा; मगर अब कुछ नहीं करूंगा। घंटों तक इसी तरह निश्चेष्ट भाव से पड़े रहकर, इस खिड़की की राह से प्रकृति का, अपनी मां का, अनूठा सौंदर्य देखूंगा।

अच्छा, कल तक के लिए विदा।

स्नेहाशीष
स०

३

गुलमर्ग
५ अगस्त........

कमल,

इस समय रात के ११ बजे हैं, और मेरी आंखों में नींद नहीं है। सब तरफ गहरा सन्नाटा है। कहीं से कोई आवाज़ नहीं आ रही। मेरे कमरे में बिजली की बत्ती जल रही है। खिड़कियां बंद हैं; सरदी इतनी अधिक है कि मैं उन्हें खोलकर नहीं रख सका। सन्नाटा इतना गहरा है कि बिजली के प्रकाश से जगमगा रहे इस कमरे में बैठकर मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है, जैसे इस संपूर्ण

विश्व में केवल मैं ही मैं बच रहा हूं, और कोई भी नहीं है। कहीं कोई भी नहीं है। सिर्फ मैं ही हूं; अकेला मैं।

मगर भाई कमल, आज सहसा, न जाने क्यों, मुझे अपना यह अकेलापन कुछ अनुभव-सा होने लगा है। ऐसा क्यों हुआ ? क्या सिर्फ इसलिए कि सब ओर सन्नाटा है और मेरी आंखों में नींद नहीं है ? नहीं कमल, यह बात नहीं है। मेरे हृदय में आज सहसा एक नई-सी अनुभूति उठ खड़ी हुई है, जो बिलकुल धुंधली और अस्पष्ट-सी है। मैं अनुभव करता हूं कि मैंने आज जो कुछ देखा है, उसमें विचित्रता ज़रा भी नहीं है। मैंने जो कुछ आज देखा है, उसे यदि मैं यहां लिखूंगा, तो या तो तुम मेरा मज़ाक उड़ाने लगोगे, अथवा मेरे सम्बन्ध में बिलकुल भ्रांत-सी धारणा बना लोगे। मगर भाई, मैं कहता हूं, मैं तुमसे अनुरोध करता हूं कि तुम इन दोनों में से एक भी बात न करना। मेरी इस चिट्ठी को पढ़ जाना, और अगर हो सके तो उसी वक्त भुला देना। बस, और कुछ भी नहीं।

हां, तो सुनो। बात है तो कुछ भी नहीं; मगर फिर भी सुनो। आज दोपहर को बादल ज़रा छंट गए थे और सूरज निकल आया था। जैसे विधाता ने इस हरी-भरी घाटी को धो-पोंछकर धूप में सुखाने के लिए बिछा दिया हो। दोपहर के भोजन के बाद मैं अपनी इस छोटी-सी कोठी के खुले सहन में धीरे-धीरे चहलकदमी करने लगा। सहन के फाटक के सामने ही स्वच्छ जल का एक छोटा-सा झरना बह रहा है। उसके ऊपर अनघड़ लकड़ी का एक इतना सुन्दर पुल है कि उसे देखते ही कलरबक्स लेकर उसका चित्र बनाने की इच्छा होती है। मैं धीरे-धीरे एक बार इस पुल तक जाता था, और उसके बाद कोठी के बरामदे तक वापस लौट आता था।

एक बार के चक्कर में जब मैं पुल के निकट पहुंचा, तो मैं चौंक पड़ा। मैंने देखा, वहां किसी भद्र कुल की एक नौजवान लड़की खड़ी थी। अकेली। उसका ध्यान मेरी ओर नहीं था। झरने के पानी की मधुर ध्वनि ने मेरे चलने की आवाज़ को अपने भीतर छिपा लिया था, इससे मेरे बहुत निकट पहुंच जाने पर भी वह यह न जान सकी कि उसके निकट कोई अन्य व्यक्ति भी मौजूद है। और मुझे तो तुम जानते ही हो, जितना भूला हुआ-सा चलता हूं। मुझे तब तक उस लड़की की उपस्थिति का ज्ञान नहीं हुआ, जब तक मैं उसके बिलकुल निकट पहुंच नहीं गया।

मैं चौंका, और उधर उसी समय उस लड़की की निगाह मुझपर पड़ी। शायद विलकुल ही अकस्मात्। वह भी चौंक गई। क्षण भर के लिए सहसा उसकी और मेरी आंखें आपस में मिल गईं। अपने अनजान में हम दोनों एक दूसरे के एकदम निकट पहुंच गए थे। हम दोनों ने एक साथ एक दूसरे को देखा और दोनों ही अकस्मात् एक साथ चौंके।

बस, भाई कमल, बात इतनी ही है, और कुछ भी नहीं। मैं उसी क्षण वापस लौट पड़ा था और जान पड़ता है, वह लड़की भी वहां से चल दी थी; मगर इस ज़रा-सी बात ने न जाने क्यों मेरे दिल पर बहुत अजीब-सा प्रभाव डाला है। इस बात को हुए अब ९ घंटे बीत चुके हैं, और इन ९ घंटों में चौंकी हुई हिरणी की-सी वे आंखें मेरे मानसिक नेत्रों के सामने बीसियों बार घूम गई हैं।

तुम सोचते होगे, इस सबमें कोई खास बात ज़रूर है। और नहीं तो कम से कम वह लड़की कोई असाधारण सुन्दरी तो अवश्य ही रही होगी। मगर वास्तविकता यह नहीं है। उस लड़की के चेहरे में असाधारणता ज़रा भी नहीं थी। मामूली कद, मामूली चेहरा, गेहुंआ रंग। और भी कोई बात उसमें ऐसी नहीं थी, जिसे असाधारण कहा जा सके। अपने नगर में हम लोग इस कन्या से अधिक रूप-सौंदर्यवाली बीसियों युवतियों को रोज़ देखते हैं। मेरी परिचित कुमारियों में भी कितनी ही सौन्दर्य की दृष्टि से उससे कहीं बढ़-चढ़कर हैं। यहां गुलमर्ग में भी उससे बहुत अधिक सुन्दरियों को मैंने काफी संख्या में देखा है। फिर भी! कुछ समझ में नहीं आता कि इस 'फिर भी' का कारण क्या है?

आज इतना ही।

तुम्हारा—
स०

४

गुलमर्ग
६ अगस्त······
प्रातः ८ बजे

कमल,

नींद से उठते ही सबसे पहले मेरी निगाह रात के पत्र पर गई। रात मैं

क्या खुराफात-सी लिख गया था। दिल में आता है, वह पत्र फाड़ डालूं।

जी कुछ भारी-सा है। कुछ लिखने की भी इच्छा नहीं होती। और इस तरह निश्चेष्ट भाव से यहां चुपचाप पड़े रहना तो आज मुझे सह्य भी नहीं हो सकता। तुम जानते हो, ऊपर की दो लाइनें लिखने में मैंने कितना समय लगाया है? पूरे २२ मिनट। इस समय दूसरा पत्र लिख सकना मेरे लिए असम्भव है। चलो, अब कहीं आवारागर्दी करने जाऊंगा।

सायंकाल ६ बजे

मेरा जी इस समय बहुत प्रसन्न है। मेरी टांगें, मेरा सम्पूर्ण शरीर बिलकुल थकी हुई हालत में हैं; परन्तु जी चाहता है कि मैं इस समय भी नाचूं, कूदूं और इधर-उधर दौड़ता फिरूं। मेरे हृदय में इस समय उत्साह का जो अन्धड़-सा चल रहा है, मुझे मालूम है कि उसकी प्रतिक्रिया भी जरूर होगी। अपने जी के इस व्यर्थ उत्साह को बहकाने का मुझे इससे बढ़कर और कोई उपाय नहीं मिला कि सुबह का पत्र पूरा करने बैठ जाऊं।

सांझ हो आई है। आज का सारा दिन मैंने सैर-सपाटे में काटा है। थोड़ी ही देर पहले घर वापस आया हूं। यह चिट्ठी बीच में छोड़कर मैं एक मजबूत घोड़े पर सैर के लिए निकल गया था। यहां के सभी मार्ग मेरे जाने-पहचाने हैं, इससे कोई मार्ग दर्शक भी मैंने अपने साथ नहीं लिया था। मेरे निवास-स्थान से करीब ८ मील की दूरी पर एक बड़ा पहाड़ी झरना है। इस झरने को यहां 'निंगली नाला' कहते हैं। मैं आज इसी निंगली नाले तक गया था।

खूब टेढ़ी-मेढ़ी राह है। कहीं पहाड़ों के चक्कर हैं, कहीं घास से मढ़े मैदान, कहीं ऊंचाई-निचाई, कहीं पेचदार मोड़ और कहीं घने जंगल। रास्ता क्या है, ऊबड़-खावड़-सी एक पगडण्डी है। इस रास्ते पर मैंने अपना घोड़ा खूब निश्चिन्तता के साथ दौड़ाया। ऊपर असंख्य पक्षियों का मधुर कलरव था। राह के दोनों ओर [illegible] थीं। हवा में सुगन्ध थी। आसमान में सूरज बादलों के साथ आंख-मिचौनी खेल रहा था। कभी सरदी बढ़ जाती थी और कभी हल्की-हल्की घाम निकल आती थी। शीघ्र ही मैं निंगली नाले पर जा पहुंचा। झरने के दोनों ओर घना जंगल है। बीच में बड़ी-बड़ी चट्टानें पड़ी हैं। एक-एक चट्टान सैकड़ों-हजारों टन की होगी। झरने का स्वच्छ जल इन भीमकाय चट्टानों से टकराकर शोर मचाता है, फिसलता है और उछल-उछलकर इन्हें गीला करता

है। झरने की शीतलता, झाग, सफेदी और शोर—ये सब निरन्तर बने रहते हैं। सदा ताज़े, सदैव उत्साहपूर्ण।

घोड़े को घास चरने के लिए खुला छोड़कर मैं दो-तीन घण्टों तक झरने की चट्टानों पर स्वच्छन्दतापूर्वक कूदता-फांदता रहा। अपने कैमरे से इस झरने के मैंने अनेक फोटो भी लिए। खाया, पिया और उसके बाद वापस लौट चला।

वापसी में मैंने अपने घोड़े को सरपट नहीं दौड़ाया। राह के दृश्यों ने मेरा सम्पूर्ण ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था, अतः घोड़े पर मैंने किसी तरह का शासन नहीं किया। वह आज़ादी के साथ, चाहे जिस चाल से, चलता रहा। सहसा सामने की ओर से मुझे एक चीज़-सी सुनाई दी। मेरी तन्मयता भंग हो गई। मैंने देखा सामने के मैदान में एक घोड़ा बेतहाशा दौड़ा चला जा रहा है, और उसपर एक नारी सवार है। घोड़े की ज़ीन को, लेटी हुई-सी दशा में, कसकर पकड़े हुए वह नारी सहायता के लिए भरसक चिल्ला रही थी। उसी निगाह में मुझे यह भी दिखाई दिया कि पगडण्डी पर तीन-चार अन्य घुड़सवार भी मौजूद हैं। सब की सब लड़कियां ही। वे सब असमर्थों का-सा भाव धारण किए अपने काश्मीरी कुलियों को वह घोड़ा पकड़ने का आदेश दे रही थीं।

एक ही क्षण में मैंने अपना घोड़ा उसी ओर दौड़ा दिया और शीघ्र ही उस स्त्री-सवार के निकट जा पहुंचा। अपने घोड़े पर से कूदकर मैंने उस घोड़े की लगाम पकड़ ली।

फिर वही आंखें!

मैं सहसा घबरा-सा गया। मुझे यह भी नहीं सूझा कि मैं क्या कहकर उस कन्या को आश्वासन दूं। मगर मेरी घबराहट की ओर उसका ध्यान नहीं गया। वह स्वयं बहुत संकटापन्न दशा में जो थी।

पहले उसीने मुझे धन्यवाद दिया। मालूम होता है, उसने मुझे पहचाना नहीं। धन्यवाद देकर उसने शीघ्रता से कहा, 'बड़ा नटखट घोड़ा है। मैं पहले ही कह रही थी कि मैं इसपर सवार न होऊंगी।'

उसकी आवाज़ में अभी तक भय की कंपकंपी थी। मैंने कहा, 'आपने बड़ी हिम्मत दिखाई है। घोड़े की चाल इतनी तेज़ हो जाने पर भी आप गिरीं नहीं।'

वह इसपर लजा-सी गई। उसने कहा, 'मैं घुड़सवारी तो क्या जानूं। सुना था, इधर के घोड़े बड़े सीधे होते हैं।'

इसी समय उसके साथ की अन्य सभी लड़कियां और घोड़े वाले कुली भी वहां आ पहुंचे। घोड़े की लगाम अभी तक मेरे हाथों में थी, और वह लड़की भी अभी तक घोड़े की पीठ पर ही थी। एक काश्मीरी ने लगाम अपने हाथों में थाम ली और दूसरे ने ज़ीन को सम्भाला। वह लड़की नीचे उतर आई। उसके साथ की सब लड़कियों ने मुझे धन्यवाद दिया, और मैंने कहा कि इसमें धन्यवाद की बात ही क्या है।

उन्होंने मुझसे पूछा, 'आप किस जगह ठहरे हुए हैं?'

मैंने अपना पता बता दिया।

मेरे निवास-स्थान का पता सुनकर जैसे उस लड़की ने मुझे पहचान लिया। उसके मुंह से हठात् निकला, 'ओहो!' परन्तु उसी क्षण अपने को पूर्णतः संयत करके उसने बड़ी शान्ति के साथ कहा, 'मैं समझ गई।'

इसके बाद दो-चार मामूली-सी और बातें भी हुईं, और तब वे लड़कियां निंगली नाले की ओर बढ़ गईं। जाते हुए वे कल प्रातः के लिए मुझे अपने यहां प्रातराश का निमन्त्रण भी देती गईं।

उस नटखट घोड़े की रास अब एक काश्मीरी के हाथ में थी। सभी घोड़े अब बहुत धीमी चाल से जा रहे थे, और वह घोड़ा सबसे पीछे कर दिया गया था। मेरी नज़र अभी तक उसी ओर थी कि कुछ ही दूर जाकर उस लड़की ने पीछे की ओर घूमकर देखा।

अचानक एक बार पुनः मेरी और उसकी नज़र मिल गई। ओह, फिर वही निष्पाप, लज्जाभरी, स्वच्छ आंखें!

भाई कमल, मुझे नहीं मालूम कि वे लड़कियां कौन हैं। सभी नवयुवतियां हैं। मेरा अनुमान है कि उनमें से अभी तक किसीका विवाह नहीं हुआ। मैं उनमें से किसीका नाम भी नहीं जानता। मकान का पता देने के लिए केवल एक पुरुष का नाम ही उन्होंने मुझे बताया है। मैं यह भी नहीं जानता कि वे आपस में बहनें हैं, एक साथ पढ़ने वाली हैं या रिश्तेदार हैं। मुझे कुछ भी नहीं मालूम। परन्तु एक बात मैंने अच्छी तरह देख ली। वह यह कि उस लड़की के गेहुएं चेहरे में असाधारणता ज़रा भी नहीं है। उसकी आंखों में, उसकी पलकों

या भौंहों में भी ऐसी बात कोई नहीं है, जिसके सम्बन्ध में कवि लोग बड़ी-बड़ी उपमाएं खोज-खोजकर दिया करते हैं। फिर भी उसकी निगाह में कुछ है। क्या है—यह मैं नहीं कह सकता। मगर कुछ है ज़रूर।

बाहर अंधेरा हो गया है। सरदी भी अब अनुभव होने लगी है, अतः प्रणाम।

अभिन्न
स०

५

गुलमर्ग
७ अगस्त·······

प्यारे कमल,

आज जाकर मुझे तुम्हारा पहला पत्र मिला है। तुम सच मानो, गुलमर्ग के छोटे-से बाज़ार के साइनबोर्डों के अतिरिक्त यही एक पहली चीज़ है, जिसे मैंने इन पांच-छः दिनों में पढ़ा है।

मेरा आज का दिन भी बड़े आनन्द से गुज़रा। सुबह-सुबह मैं उन लोगों के यहां चाय पीने गया था। उसके बाद हम लोग एक साथ खिलनमर्ग की सैर के लिए निकल गए। वहां घण्टों तक उस खुले मैदान में बैठकर ताश खेला किए, सैर की, खेले-कूदे और फिर वापस लौट आए। तब सब लोग मेरे निवास-स्थान पर आए। शाम की चाय यहां ही हुई, और अभी-अभी मैं उन्हें उनके घर तक छोड़कर आ रहा हूं।

मुझे उनका परिचय भी मिल गया है। वह लड़की अपने भाई और एक चचेरी बहन के साथ, काफी दिन हुए, यहां आई थी। उसके पिता एक सम्पन्न व्यापारी हैं, उनका कारोबार खूब चलता हुआ है। वह लड़की लाहौर के एक महिला कालेज में पढ़ती है, और बाकी तीनों लड़कियां उसीकी क्लास की हैं, उसकी मित्र हैं और उसीके निमन्त्रण पर यहां आई हैं। उनके भाई का स्वभाव भी बड़ा मधुर है। गुलमर्ग में उसके दोस्तों की इतनी अधिकता है कि उनकी ओर से छुटकारा पा सकना ही उसके लिए कठिन हो जाता है। हम लोग आपस में खूब हिलमिल गए हैं। मैंने उन लोगों के अनेक फोटो भी लिए हैं।

आज जल्दी ही सो जाने को जी चाहता है। तुम्हारा पत्र इस समय मेरी

आंखों के सामने नहीं है। कुछ याद नहीं आ रहा कि तुमने उसमें कोई बात पूछी भी थी या नहीं। चलो, जाने दो। यह तो मुझे मालूम ही है कि तुम कोई खास काम की बात तो लिख ही नहीं सकते।

यह भी असम्भव नहीं कि मैं यहां कुछ दिन और रुक जाऊं।

स्नेही
स०

६

गुलमर्ग
८ अगस्त......

कमल,

सांझ डूबने को है। दिन भर से आसमान में बादल छाए हुए थे। इस समय मूसलाधार वर्षा हो रही है। मेरे कमरे की सब खिड़कियां बन्द हैं। कमरे में बत्ती जल रही है। मेरे कानों में एक संगीत गूंज रहा है, बहुत ही कोमल, बहुत ही पवित्र और बहुत ही मधुर। इस संगीत में शब्द नहीं, केवल स्वर है। स्वर भी क्या, केवल गूंज है। छत की टीन पर वर्षा पड़ने की जो यकसां आवाज़ हो रही है, वह इस गूंजमय संगीत का साज़ है और ठण्डी, गीली हवा की धू-धू इस संगीत के सहकारी वाद्य का काम दे रही है।

मैं अकेला हूं। दिन भर अकेला नहीं था; परन्तु इस समय फिर से अकेला ही हूं। वह अपने भाई और छोटी बहन को साथ लेकर यहां आई थी। ३ बजे के लगभग उसके भाई चाय के एक निमन्त्रण पर बाहर चले गए। वह और उसकी बहन यहां ही रह गई। कल वाले फोटोग्राफ धुलकर आ गए थे। उन फोटोज़ की आलोचना-प्रत्यालोचना होती रही और भी बीसियों तरह की बातें हुईं। शाम का अंधेरा जब बढ़ने लगा, तो मैंने उससे अनुरोध किया कि वह कोई गाना सुनाए। बड़ी झिझक के बाद उसने एक गाना मुझे सुनाया। ओह, वह कितना मधुर गाती है। मैं किसी दूसरे लोक में जा पहुंचा। मुझे नहीं मालूम कि संगीत कब समाप्त हुआ। हां, उसके भाई साहब का आना मुझे ज़रूर याद है। देर हो गई थी, अतः वे लोग लौटने को हुए। मैंने उन लोगों को सहन के फाटक से ही विदा दे दी। उन्हें छोड़ने के लिए दूर तक केवल इसी कारण साथ नहीं गया, क्योंकि मुझे ज्ञात था कि उसके भाई साहब चुपचाप चलना पसन्द नहीं

करेंगे, और इस समय मैं न कुछ सुनना चाहता था, न बोलना चाहता था।

उन्हें गए थोड़ी देर हुई थी कि ज़ोर की वर्षा शुरू हो गई। मैं तब से इसी कमरे में बैठा हूं। संगीत कभी का थम गया, गाने वाली भी चली गई; मगर उसकी गूंज अभी तक बाकी है—उसी तरह जीवित रूप में बाकी है। संगीत की यह अनिर्वचनीय, अमूर्त्त गूंज वर्षा की आवाज़ का प्राकृतिक साज पाकर मानो और भी अधिक भेदिनी बन गई है।

कमल, तुम मेरे सुख-दुख के साथी हो। अपनी सभी अनुभूतियां तुमसे कहकर मैं अपने चित्त का बोझ हल्का किया करता हूं। मगर यह एक अनुभूति कुछ ऐसी है कि इसे मैं ठीक तौर से व्यक्त भी नहीं कर सकता। मेरे जी में आंधी-सी चल रही है; मगर यह आंधी बिलकुल शब्द-रहित है, जैसे नदी का वेगवान पानी अन्दर ही अन्दर से किनारे के कछारों को काट रहा हो।

अपनी एक पुरानी धुंधली-सी अनुभूति मुझे इस समय साफ तौर से समझ में आ रही है। हम मनुष्यों के बाह्य जीवन आपस में दूसरे पर इतने आश्रित हो गए हैं कि हम लोगों के लिए इस तरह का एक दिन भी काटना सम्भव नहीं रहा, जब कि एक मनुष्य का किसी भी दूसरे मनुष्य से किसी तरह का वास्ता न पड़े। इसपर भी मैं सदैव अनुभव करता रहा हूं कि हम लोग आपस में एक दूसरे से बहुत अधिक दूर हैं। हृदयों का यह पारस्परिक अपरिचितपन हमारे दैनिक व्यवहार में, हमारे सामान्य जीवन में, कोई बाधा नहीं डालता। फिर भी हमारे जी को, हमारे अन्तःकरण को और शायद हमारी अन्तरात्मा को भी यह चाह बनी रहती है कि वह किसी दूसरे जी को, किसी दूसरे अन्तःकरण को और शायद दूसरी अन्तरात्मा को भी अपना ले। यही चीज़, अन्तरात्मा की यही चाह, प्रेम है, जिसे वासना का परिधान पहनाकर हम लोग बहुत शीघ्र मैला कर डालते हैं। आज इस संगीतमय, ठण्डे, शांत और सुन्दरतम वातावरण में मैं यह अनुभव करने लगा हूं कि मेरे अन्तःकरण में भी इसी तरह की कोई बेचैनी सहसा उठ खड़ी हुई है।

आज उससे मेरी खूब बातें हुईं। अधिकांश बातें बिलकुल बेमतलब की थीं; मगर फिर भी वे बातें अत्यन्त मधुर और दिल को सहलाने वाली थीं।

एक बात ऐसी भी हुई, जिसने मेरे हृदय को वेग के साथ झनझना दिया। बातचीत में उसने जरा हैरानी के साथ मुझसे पूछा, 'आप अकेले ही रहते हैं ?'

मैंने कहा, 'हां।'

उसने पूछा, 'सदा इसी तरह रहते हैं ?'

मैंने कहा, 'प्रायः सदा ही।'

कुछ क्षण के बाद उसने मुझसे पूछा, 'सुबह आपको प्रातराश देने का काम किसके हाथों में है ?'

मुझे उसका यह भोला-सा सवाल बहुत ही मधुर जान पड़ा। मैंने कहा, 'जो लोग मेरी ज़रूरत की और सब चीज़ों का इन्तजाम करते हैं।'

उसने फिर पूछा, 'आप सुबह खाते क्या हैं ?'

मैंने कहा, 'दूध, टोस्ट, मक्खन, शहद, ओवलटीन, आम्लेट और थोड़े-से मेवे।'

योंही विलकुल निष्कलंक भाव से उसने ज़रा आग्रह के स्वर में कहा, 'अगर मैं आपके प्रातराश का इन्तजाम करनेवाली होती, तो आपको पता लगता कि सुबह के कलेवे में कितना स्वाद आता है।'

मेरा सम्पूर्ण अन्तःकरण झनझना उठा। अपने चेहरे पर हल्की-सी और फीकी मुस्कराहट ले आने के अतिरिक्त मैं उसकी इस अत्यन्त मधुर बात का कोई जवाब नहीं दे पाया।

मुझे मालूम है कि उसने जो कुछ कहा था, उसका कोई गहरा अभिप्राय कदापि नहीं था। सम्भवतः घर के लोगों को प्रातराश देने का इन्तजाम उसी के जिम्मे होगा। मगर फिर भी मेरे दिमाग ने उसकी इस बात को इतनी गहराई के साथ हृदय के पास पहुंचाया कि मेरा सम्पूर्ण अन्तःकरण बहुत ही मीठे स्वरों में ध्वनित हो उठा।

हाथ ठिठुर रहे हैं। मेरी यह चिट्ठी पढ़कर तुम कहीं ऊबने तो नहीं लगे ? यही बात है न ? या अभी कुछ और सुनने की इच्छा है ?

मगर नहीं, अब और नहीं।

तुम्हारा

स०

७

गुलमर्ग
९ अगस्त......

भाई कमल,

इस समय सुबह के ८ बजे हैं। मेरा सामान बंधकर तैयार पड़ा है। सहन में एक कसा हुआ घोड़ा और सामान के टट्टू तैयार खड़े हैं। मैं इसी वक्त नीचे के लिए रवाना होने लगा हूं। बस, तुम्हें यह पत्र लिखकर मैं घोड़े पर सवार हो जाऊंगा। यह भी पूरी तरह सम्भव है कि इस पत्र से पहले ही मैं स्वयं तुम्हारे पास पहुंच जाऊं।

कल मैंने इरादा किया था कि कम से कम पांच दिन यहां और ठहरूंगा। उन लोगों से भी मैंने यही बात कही थी। आज दोपहर को मुझसे मिलने के लिए उन्हें यहां आना भी है। मगर आज सुबह ही नींद से बहुत जल्दी जगकर मैंने यही निश्चय किया कि मुझे यहां से चल देना चाहिए। इस आशय की एक चिट्ठी उनके नाम पर भी डाल रहा हूं कि एक अप्रत्याशित कार्य के लिए मुझे इस तरह, बिलकुल अचानक कलकत्ता के लिए रवाना होना पड़ रहा है।

तुम इस चिट्ठी को पाकर, अथवा चौथ मुझे ही अपने समीप देखकर हैरान होगे कि बात क्या हुई। कहने को तो मैं तुमसे भी यही कह सकती हूं कि अधिक दिन बाहर रहने से काम-काज में हर्ज होता, इसीसे चले आना पड़ा। परन्तु दरअसल बात ऐसी नहीं है। बात वास्तव में इतनी ही है कि अपनी शिक्षा और अपने संस्कारों से बाधित होकर ही मैं आज यहां से चल रहा हूं।

कुछ समझे? नहीं, मुझे विश्वास है कि कमल का मोटा दिमाग़ मेरी इस सूक्ष्म बात को ज़रा भी नहीं समझा होगा।

देखो न, भाई कमल, बात यह है कि पश्चिम की शिक्षा ने, पश्चिम के रीति-रिवाजों ने हमें यह सिखाया है कि हमें अपने दिल को, अपने अन्तःकरण को, और अपनेपन को बहुत महंगा बना लेना चाहिए। हम सबसे मिलें-जुलें, सबसे मीठी-मीठी बातें करें, सबसे फायदा उठाएं; इच्छा हो और सम्भव हो, तो लोगों से सभी तरह के विनोद-आमोद भी प्राप्त करें; परन्तु अपना अन्तःकरण, अपना हृदय अपने ही पास रखें, क्योंकि वह एकमात्र हमारी चीज है और किसीकी भी नहीं। अपने दिल को बिलकुल निस्संग बनाने की भी

आवश्यकता नहीं है। वह तो आत्मविनोद का सर्वश्रेष्ठ साधन है। तुम सबसे मिलो-जुलो, हंसकर, खुलकर, मीठी-मीठी बातें करो; मगर किसीके बन मत जाओ; अपना सब कुछ किसीके अर्पित मत कर दो। भावुकता से बचो, ताकि दूसरों का समर्पण तो तुम्हें मिल सके, पर तुम अपने को कहीं समर्पित न करो।

मैंने यह अनुभव किया है कमल, कि मेरे हृदय में अभी भावुकता बाकी है, वह भी काफी मात्रा में। मेरा हृदय मोह में पड़ गया है। पूरब के अशिक्षित मनुष्यों के समान वह चाहता है कि वह जिसकी ओर झुका है, उसीका बनकर रहे। मगर मेरे दिमाग की शिक्षा ने मेरे जी को यह चेतावनी दी है कि प्रेम का उद्देश्य सर्वस्व-समर्पण की भावना नहीं, अपितु आत्म विनोद मात्र है। मुझे भय है कि यहां रहकर इस खास मामले में मैं अपने मस्तिष्क के आदेश का पालन शायद ही कर सकूं। इससे मैंने निश्चय किया है कि मै अपने को इस कठिन परीक्षा में न डालूं और यहां से चल दूं। देखूं, इस सबका परिणाम क्या होता है। देखूं, गुलमर्ग को भुला सकता हूं या नहीं। अब तो आ ही रहा हूं।

निश्चिन्त रहो। मैं नये युग की उपज हूं।

अभिन्न—

स०

छत्तीस घंटे

३० मई, सन् १९३५ की रात को ११ बजे के करीब जब सरोजिनी सोने के लिए अपने पलंग पर जाकर लेटी, तब उसके समान सौभाग्यशाली स्त्रियां सम्पूर्ण क्वेटा भर में बहुत कम होंगी। बहुत ही अच्छे स्वभाव का, सुन्दर, स्वस्थ और सुशिक्षित पति; गुलाब के खिले हुए फूल से बढ़कर सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट और गोल-मटोल तीन बच्चे; हजारों रुपए मासिक की आमदनी और लाखों की जायदाद; बढ़िया मकान, नौकर-चाकर, मोटरगाड़ी—सभी कुछ था। कमरे में दो पलंगों को छोड़कर और कुछ नहीं है। सबसे छोटा बच्चा विजय मां के साथ सो रहा है। बाकी दोनों बच्चे, बरामदे में, अपनी दादी के पास सोए हुए हैं।

रात ठण्डी है। तेज़ हवा चल रही है। मकान के किवाड़ों में कुछ खटखटाहट-सी पैदा हुई, और सरोजिनी के पति महोदय की नींद उचट गई। उन्होंने अनुभव किया कि सरदी बढ़ गई है। उन्हें बच्चों का खयाल आया, वह उठे और बरामदे में पहुंचे। देखा, दोनों बच्चे सुख की नींद सो रहे हैं। बच्चे बिलकुल सिकुड़े हुए पड़े थे, उन्होंने उन दोनों पर कम्बल डाल दिए। अन्दर आए, तो देखा कि सरोजिनी भी सिकुड़ी हुई पड़ी है। उन्होंने सरोजिनी का कम्बल ज़रा-सा खींचा ही था कि उसकी नींद उचट गई। कमरे के बिलकुल हल्के हरे प्रकाश में अपने पति को पहचानकर सरोजिनी ने पूछा—'क्यों, क्या बात है?'

'देखो न, किस तरह सिकुड़कर पड़ी हो। ज़रा कम्बल ओढ़ लो न।'

'कितने बजे होंगे?'

'दो बज चुके हैं।'

बच्चों को भी तो सरदी लग रही होगी?'

'उन्हें देख आया हूं। देखो न, आज एकाएक सरदी कितनी बढ़ गई है!'

'मैंने माताजी से पहले ही कहा था कि आज बच्चों को अन्दर सुलाइएगा।'

'ख़ैर, कल से सभी लोगों को अन्दर ही सोने के लिए कह दूंगा।'

और अधिक बातचीत नहीं हुई। दरवाज़ा हवा से हिलता था, अतः उसे अन्दर से बन्द कर पति-पत्नी पुनः सो गए।

सहसा एक ज़बर्दस्त धक्का खाकर सरोजिनी की नींद टूट गई। उसके हाथ स्वयं विजय पर पड़े, और उसने उसे अपनी छाती से चिपका लिया।

एक, दो और तीन! बस, सभी कुछ समाप्त।

उफ, यह कितना भारी बोझ है। मैं कहां हूं? ज़मीन पर ही हूं, या पृथ्वी ने मुझे अपने अन्दर कर लिया है। तुम सब कौन हो? हटो, मुझे छोड़ दो। देखो, वे कराह रहे हैं! ओह, कहां हो मेरे प्यारे! मेरे नाथ! मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता। मेरा मुंह दबा हुआ है, सारा शरीर दबा हुआ है। मुझे कोई कुचल रहा है। तुम कहां हो? देखो, कराहो मत। उठो और देखो, बच्चों का क्या हाल है?

यह किसके सिसकने की आवाज़ है। मालूम नहीं पड़ता यह कौन कराह रहा है! उफ, कहीं मेरा विजय तो नहीं? मेरी छाती पर यह गीला-गीला गरम-गरम गद्दा-सा किसने लाकर रख दिया? मेरा विजय कहां है? मेरे साथ ही तो वह सोया हुआ था।

मैं अपने हाथ हिलाना चाहती हूं। बायां हाथ कहां है; है भी या नहीं, कुछ पता नहीं चलता। दाया हाथ? हां, दायां हाथ ज़रूर है; मैं अभी इसी हाथ की मदद से आज़ाद होती हूं; इस बन्धन से निकलती हूं। हां, हिलो हिलो, ज़रा-ज़ोर के साथ। यह क्या, सिर्फ उंगलियां अपने आसपास के पत्थरों से टकराकर पुनः निश्चेष्ट के समान पड़ी रह जाती हैं। मेरी बांह! ओह, मेरी बांहें कहां गईं?

विजय! विजय! बेटा विजय, देखो, तुमपर बोझ पड़ रहा होगा। मेरी छाती से खिसककर एक तरफ को हो जाओ और यह जो गीला-गीला, गरम-सा, गुदगुदा गद्दा मेरी छाती पर पड़ा है, वह मैं तुमपर डाल दूंगी। बेटा, तुम

बोलते ही नहीं। अभी तक सो रहे हो क्या ?

...मेरा दम घुट रहा है, मेरे श्वास-प्रश्वास में मिट्टी और धूल अन्दर जा रही है। अन्धकार, सभी ओर अन्धकार। यह अंधकार कितना व्यापक और कितना गहरा है। हाय, माताजी! उफ, मुझे इतनी ज़ोर से मत दबा, ओ निर्दयी! ओह...

मे...हो...शी.....

पानी! पानी!...पानी! पानी!...कोई नहीं बोलता! मेरे नाथ, मेरे देवता, तुम किधर हो ? परमात्मा करे, तुम बच गए हो। ओह, मेरे परमेश्वर, यह कितना अपार कष्ट है!

विजय! विजय! तुम कहां हो; विजय! मेरी छाती के साथ-साथ यह एक क्षीण-सा, नन्हा-सा स्पन्दन भी तो अनुभव हो रहा है। यह गीला-गीला स्पर्श कैसा है ? ठहरो विजय, देखो, मैं अभी इतनी सिकुड़ जाऊंगी कि तुम्हें ज़रा भी चोट न पहुंचेगी। तुम घबराओ नहीं, मैं अभी कोशिक करती हूं!

मैं अपने को हिलाने का इतना प्रयत्न कर रही हूं, फिर भी हिला नहीं जाता। ओह, मेरे सम्पूर्ण शरीर को एक साथ बांध क्यों दिया है ? ओ निर्दयी! हाय माताजी ओ!...बे... हो...शी....

उजाला, यह हल्का-हल्का उजाला! हे प्रभु, तुम्हारी दुनिया, प्रतीत होता है कि, अभी तक मौजूद है। आज भी सवेरा हो रहा है। रोज़ के समान आज भी दिन निकलेगा क्या ? मैं कहां हूं! मैं क्या सुन रही हूं ? चारों ओर से रोने, चीखने, चिल्लाने की आवाज़ें आ रही हैं। इतने सब लोग अभी जिन्दा हैं क्या ? परन्तु मेरे देव, मेरे स्वामी, मेरे सर्वस्व! तुम कहां हो ?

देव! प्यारे! उफ, मेरा मुंह तो किसीने दबा रखा है। इतनी कोशिश कर रही हूं; मगर आवाज़ भी नहीं निकल पाती। यह ईंट-पत्थर का ढेर मुझे ज़िन्दा ही अपने अन्दर खपा जाना चाहता है। मेरे देव, तुम कहां हो ?

उफ, मेरी छाती के ऊपर ही यह घरघराहट की आवाज़ कैसी आने लगी ? समझ गई! यह मेरा विजय है। विजय! विजय! प्यारे विजय! तुम यह सब

वरदाश्त कर लो। मैं निस्सहाय हूं, कुछ कर नहीं सकती। मगर मैं तुम्हें अपनी जान देकर भी बचाऊंगी।

प्रतीत होता है, पास ही से कोई गुज़र रहा है। इसे बुलाऊं तो सही। चिल्लाकर बोलूंगी, सुनेगा तो इधर आ ही जाएगा, भाई साहब ! बचाना ! बचाना !

मैं बार-बार चिल्लाकर बोलना चाहती हूं, बोलने के लिए मेहनत करती हूं; मगर फिर भी आवाज़ निकलती ही नहीं ! ओह, मुझ दुखिया की सुध किसे आएगी ?

कोई नहीं आया ! हाय इधर कोई नहीं आया !

विजय ! विजय ! तुम कैसे हो गए ! छाती पर का वह हल्का स्पन्दन जैसे अब बिलकुल शान्त हो गया है। मेरे निकट जीवित अब कुछ भी नहीं है। सिर्फ ये निष्प्राण पत्थर हैं, और इन सबके बीच में मैं हूं। हे प्रभो ! उफ़··· कितना अपार कष्ट है !····

मेरे सिर पर यह स्पर्श किसका अनुभव हो रहा है। मैं अर्ध चेतना में हूं। मेरी आंखें आधी खुली और आधी बन्द हैं। यह मुझे कोई बचाने आया है। चाहती हूं, चिल्लाकर उसे बता दूं कि मैं ज़िन्दा हूं; मगर शरीर का कोई यन्त्र भी तो अब कोई काम नहीं दे रहा।

मैं यह क्या सुन रही हूं !

एक ने कहा, 'इसे निकालो, यह ज़िन्दा प्रतीत होती है।'

दूसरे ने कहा, 'ज़िन्दा कहां है ? देखो, इसकी आंखें तक तो झपकती नहीं। इतने बड़े ढेर के नीचे दबी रहकर यह ज़िन्दा कैसे हो सकती है ?'

और इसके बाद मुझे कुछ भी सुनाई नहीं दिया। शायद वे दोनों चले गए।···निर्दयी लोगो, मैं मरी नहीं हूं ! मैं ज़िन्दा हूं। बचाओ ! बचाओ ! मुझे न सही, मेरे विजय को बचाओ ! देखो, कैसा फूल-सा बच्चा है। मेरे स्वामी, मेरे सर्वस्व, मेरे हृदय-देव को बचाओ, वह न जाने कहां हैं ?

मैं पूरी शक्ति के साथ गुनगुना रही हूं, 'भाइयो ! कोई मेरी सुध भी लेना !'

पर कोई नहीं आया। आसपास किसीके घूमने-फिरने की आवाज़ भी

अब नहीं आ रही। मेरी चेतना अब जागृत हो गई। अब कोई आएगा, तो उसे आवाज़ भी दे लूंगी।

विजय! विजय!

नहीं, कोई भी नहीं बचा। मैं अब होश में हूं, पूरी तरह होश में हूं। सब सब कुछ समझती हूं। मेरी छाती पर यह जो ठण्डा-ठण्डा, नरम-नरम और गीला-सा स्पर्श अनुभव हो रहा है, यही मेरा प्यारा विजय है, मैं समझ गई, यह विजय की निर्जीव देह ही है। ओह, परमात्मा, तुम कितने निर्दयी हो!

मेरे शरीर में सिहरन-सी उत्पन्न हो रही है। शरीर में खून जैसे बड़ी तेज़ी से गति करने लगा है। ओह, मैं कितनी अशक्त हूं। मेरा प्यारा पुत्र विजय मेरी छाती पर पड़े-पड़े कुचल गया। मेरी छाती पर पड़े-पड़े वह घण्टों तक कराहता रहा; मगर मैं उसे बचा न सकी।

अब भी तो! उफ, अब भी तो विजय की फूल-सी ठण्डी निर्जीव देह मेरी छाती पर ही पड़ी है।

विजय! अपनी इसी छाती में छिपाकर मैं सरदी-गरमी से तुम्हारी रक्षा करती थी। इसी छाती में से मैं तुम्हें दूध देकर पालती थी। तुम रोते भी थे, तो इसी छाती से चिपककर मुस्कराने लगते थे और आज? आज घण्टों तक तुम मेरी छाती पर पड़े-पड़े सिसकते रहे और मैं पासा पलट-कर तुम्हें बचा भी न सकी। उफ!

पत्थरो, मुझे कुचल दो! परमात्मा! ओ निर्दयी परमेश्वर! तुम्हें दीन-वत्सल कौन कहता है! ओ निर्दयी, मुझ अभागिनी अबला पर यह भयंकर अत्याचार कर तुम अपने किस अटल विधान का पालन कर रहे हो?

उफ, अब नहीं सहा जाता! मेरी चेतना अब जवाब दे रही है। मुझे अब जीने की इच्छा नहीं है। मुझे कोई न निकाले। मुझे मार दो, कुचल दो।··· मेरी सब शक्ति कहीं चली गई! अब के ऐसी बेहोशी आएगी, जो कभी नहीं टूटेगी! खालीपन! शू···न्य···ता! विजय!···आई!···मैं···भी······ आई!

३१ मई के दोपहर के बाद करीब ४ बजे तीन गोरे सिपाहियों ने सरोजिनी के बेहोश शरीर को मिट्टी के उस बड़े ढेर में से बाहर निकाला। विजय की

लाश बिल्कुल कुचली हुई दशा में मिली। विजय के खून से तथा सरोजिनी के अपने घावों के खून से उसके सारे कपड़े तर थे। सरोजिनी की बनियाइन तक बुरी तरह फट गई थी। उसके बेहोश शरीर पर एक चीथड़ा ओढ़ाकर वे गोरे उसे फौजी अस्पताल तक ले गए।

अस्पताल में तिल धरने को भी जगह नहीं थी। अतः उसके पूर्वी बरामदे में एक कम्बल बिछाकर सरोजिनी की मूर्च्छित देह को उसीपर डाल दिया गया।

पहली जून की प्रातःकाल ६ बजे तक सरोजिनी की मूर्च्छा नहीं टूटी। उसके बाद उसे होश आया।

ओह, कितना खुला! निर्बन्ध! उन्मुक्त! कोई बाधा नहीं, कोई बन्धन नहीं। प्रभो, यह कैसी अनुभूति है!

हैं! मैं यहां कहां हूं? हाय, माताजी! मैं कहां हूं? मेरा विजय कहां है? मेरे प्राणनाथ कहां हैं?

एक स्वयंसेवक ने डाक्टर साहब को आवाज़ दी, 'नम्बर ३४५ होश में दिखाई दे रही है। ज़रा इधर आइए!'

'भाई साहब! ज़रा आप बता सकेंगे कि मेरे बच्चे और मि०····कहां हैं?'

'एक मिनट धैर्य रखिए। मैं अभी मालूम करके बताता हूं।'

मगर मुझे पूछने की ज़रूरत ही क्या है? यह सब तो स्पष्ट है। मैं अस्पताल में हूं। जख्मी हूं। मुझे कोई निकालकर यहां ले आया होगा और विजय! मुझे सभी कुछ याद है। उसकी देह का वह ठण्डा-ठण्डा गीला-सा स्पर्श मेरे दिल पर पत्थर की लकीर बन गया है। मुझे मालूम है, मेरा विजय अब नहीं रहा। मैं जो ये कपड़े पहने हुए हूं, ये अभी तक विजय के खून से गीले हैं और मेरे प्राणनाथ! मुझे मालूम है, वह भी नहीं बचे। वह अभी तक उसी ढेर के अन्दर सो रहे होंगे।

ओह, यह सब क्या हो गया! मुझे, निर्दयी!···यह कितनी पीड़ा है! विजय!····प्राणनाथ!···पानी! पानी!

इसके एक ही मिनट बाद वह स्वयंसेवक डाक्टर साहब को लेकर जब

सरोजिनी के पास पहुंचा, तो देखा कि वह फिर से बेहोश हो गई है ! डाक्टर साहब ने एक मिनट तक सरोजिनी के फेफड़ों और घावों की परीक्षा की और कम्पाउण्डर को दो-एक निर्देश देकर वह दूसरे मरीज़ के पास चले गए ।

दोपहर के साढ़े ग्यारह बजे बेतार के तार द्वारा पंजाब से एक सन्देश क्वेटा पहुंचा और सारे अस्पताल में एक नवयुवती हिन्दू महिला की तलाश होने लगी। आख़िर यह मालूम हो गया कि तलाश सरोजिनी के लिए ही की जा रही थी। बरामदे के कम्बल से स्ट्रैचर पर उठाकर सरोजिनी की मूर्च्छित देह को क्वेटा-मेल के एक स्पेशल सैलून में रख दिया गया ।

सायंकाल के ४ बजे हैं । क्वेटा-मेल पंजाब की ओर उड़ा जा रहा है । तीन दिनों में रेल-लाइनों की मरम्मत कर ली गई है । दो नर्सों की देख-रेख में लेटी हुई सरोजिनी अब होश में है; परन्तु अपने पति और पुत्र को खोकर वह जिस शून्य भाव से डिब्बे की छत की ओर ताक रही है, उसे देखकर पत्थर का भी दिल पिघल जाएगा ।[१]

१. क्वेटा के भूकम्प की एक सच्ची घटना के आधार पर ।—लेखक

मचाकोस का शिकारी

पूर्वी अफ्रीका के मचाकोस नगर की सबसे ऊंची पहाड़ी पर एक प्रभावोत्पादक विशालकाय शिलामूर्त्ति के नीचे ये वाक्य सीसे के अक्षरों में खुदे हुए हैं–

'नगर का पिता'

'उस अज्ञात देवता की पुण्य स्मृति में, जो न जाने संसार की किस जाति में सदैव अकेला रहने के लिए पैदा हुआ था। जो इसी स्थान पर—जब यहां सुन्दर नगर की जगह एक घना जंगल था—वन-देवता की तरह रहता था; जो एक बार अचानक प्रकट होकर सर विलियम मोरिफ़ को यहां इस नगर के बसाने का आदेश दे गया।'

यह शिलामूर्त्ति अत्यधिक भव्य है। मूर्त्ति के ऊंचे चबूतरे पर एक ओर एक बब्बर शेर ने एक अंग्रेज़ को अपनी छाती के तले दबा रखा है। उससे करीब दो गज़ दूर एक सुन्दर योद्धा की मूर्त्ति है, यह योद्धा अपनी तलवार से उस शेर को मार रहा है। यह मूर्त्ति ग्रीक देवताओं के ढंग पर बनाई गई है। मूर्त्ति बिलकुल श्वेत है, वह इतनी अधिक भव्य है कि देखने पर वह एक कल्पित देवता का चित्रमात्र ही प्रतीत होती है।

मूर्त्ति में शेर के नीचे जो अंग्रेज़ दबा हुआ पड़ा है, उसका नाम है—'विलियम मोरिफ़'। इन्हीं सर विलियम मोरिफ़ ने ही आज से करीब ४० बरस पूर्व इस सुन्दर नगर का निर्माण किया था, जो ४० ही वर्षों में इतना प्रमुख नगर बन गया।

रिचर्ड और ब्रेक दोनों एक दूसरे के अभिन्न मित्र थे। बचपन से ही दोनों एक साथ एक सैनिक अनाथालय में पले थे। उनके वास्तविक माता-पिता कौन हैं, यह बात किसीको ज्ञात नहीं थी। दोनों ही शरीर से बलवान्, स्वभाव से

क्रोधी और मस्तिष्क से कमज़ोर थे। उनकी घुड़सवार बटैलियन के अन्य सम्पूर्ण सैनिक उनसे घनिष्ठता बढ़ाते हुए घबराते थे। रिचर्ड और ब्रेक को भी इस बात की कोई विशेष आकांक्षा न थी। वे दोनों स्वयं अपने में ही पूर्ण थे। मनुष्य अपने मित्रों से जितना लाभ उठा सकता है, वे सब उन्हें आपस में ही प्राप्त हो जाते थे। आवश्यकता या इच्छा होने पर वे दोनों परस्पर सहायता, प्रेम, झगड़ा, मार-पीट, रूठना, मान-मनौवल—सभी कुछ कर लेते थे। उनके जिन साथियों ने उन्हें दो विशालकाय बैलों की तरह एक दूसरे से लड़ते हुए देखा है, उन्हें आश्चर्य होता था कि इन दोनों की मित्रता स्थिर किस तरह रहती है। सम्भवत: दोनों की मित्रता का आधारभूत कारण यह था कि दोनों में कोई भाव, चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, अधिक देर तक टिकने न पाता था।

सैनिक रहते हुए जितना अधिकतम नियमों का उल्लंघन किया जा सकता है, उतना उल्लंघन करने से ये दोनों मित्र बाज न आते थे। बटैलियन के क्लर्क से सदैव उनकी लड़ाई रहती थी, रसोइए और कहार उनसे भय खाते थे। मचाकोस छावनी के आसपास की बस्तियों में सिर्फ इन्हीं दोनों के सबब से उनकी बटैलियन बहुत अधिक बदनाम हो गई थी। साधारणतया दूकानदार फौजी ग्राहकों को देखकर खुश हुआ करते हैं, परन्तु ये दोनों शरारत की ठोस पुतलियां जिस दूकान के सामने जाकर रुकतीं, उस दूकान के मालिक का दिल धड़कने लगता था।

रिचर्ड और ब्रेक को घुड़सवारी का बड़ा शौक था। वे अन्य सैनिकों की तरह घुड़सवार सेना में केवल रोज़ी कमाने के उद्देश्य से ही नहीं सम्मिलित हुए हुए थे। उन्हें यह पेशा सचमुच दिलचस्प मालूम होता था। यही कारण था कि सैनिक नियमों का अधिकतम उल्लंघन करते हुए भी वे दोनों उजड्ड और बेपरवाह मित्र अपने अफसरों की दृष्टि में नीचे नहीं गिर सके थे। दोनों मित्र अपने घोड़ों पर सवार होकर, जब मौका मिलता, आसपास की पहाड़ी घाटियों के घने जंगलों में अबाधित घुड़दौड़ और शिकार का अभ्यास किया करते थे। दोनों ही स्वभाव से बिलकुल निर्भय थे।

ब्रेक अचानक गुर्राकर बोल उठा—'रिचर्ड! ठहरो।'

रिचर्ड ब्रेक की अपेक्षा ६०-७० गज अधिक ऊंचाई पर था; ब्रेक की मोटी आवाज़ सुनकर उसने आश्चर्य से पीछे की ओर मुड़कर देखा। अभी दस-पन्द्रह मिनट पूर्व ही दोनों दोस्तों में भीषण वाग्युद्ध हुआ था, इस कारण दोनों रूठकर चुपचाप पहाड़ की कठिन चढ़ाई पार कर रहे थे। ब्रेक रिचर्ड की अपेक्षा बहुत अधिक भारी-भरकम था, इससे वह यह चढ़ाई चढ़ते हुए हांफने लगा था। उसने अपने घोड़े पर एक मरा हुआ मोटा-ताज़ा हिरण भी लाद रखा था, इस कारण उसके घोड़े को यह चढ़ाई चढ़ना और भी अधिक कठिन हो रहा था। रिचर्ड को यह आशा कभी न थी कि लड़ाई के दस-पन्द्रह मिनट बाद ही ब्रेक इस प्रकार उसे आवाज़ देकर संधि का प्रस्ताव करेगा। उसने आश्चर्य से पूछा, 'क्यों ?'

ब्रेक ने कहा, 'मुझे प्यास लगी है। यहां कुछ सुस्ताकर तब आगे बढ़ा जाएगा।'

रिचर्ड ने ज़रा उपेक्षा का भाव दिखाते हुए उत्तर दिया, 'इस पहाड़ की चोटी पर पहुंचे बिना मैं आराम नहीं करूंगा।'

ब्रेक नाराज़ हो गया। उसने गरजकर कहा, 'तुम्हारे घोड़े पर कोई बोझ नहीं है न! इसीसे सीधे पहाड़ की चोटी तक पहुंचना चाहते हो ?'

ब्रेक के इन शब्दों में एक विशेष व्यंग था, जिससे रिचर्ड जल उठा। अपने घोड़े से कूदकर वह नीचे आ खड़ा हुआ। घोड़े की लगाम पकड़ते हुए उसने क्रोध में भरकर कहा, 'धोखेबाज़! बदमाश! मेरा शिकार धोखे से अपने घोड़े पर लादकर मुझे खाली घोड़ा होने का ताना देते हो ?'

ब्रेक भी घोड़े से नीचे उतर पड़ा। उसने अपना घोड़ा एक पेड़ के तने से बांधते हुए कहा, 'फिर वही दावा! अभी तो इस झगड़े का फैसला किया था। यदि फिर से लड़ने की सलाह हो, तो मैं भी तैयार हूं।'

रिचर्ड कुछ नहीं बोला। वह भी उसी पेड़ के नीचे आकर हरी-भरी घास पर बैठ गया।

दोनों दोस्त एक दूसरे से रूठे हुए थे। कोई कुछ बोला नहीं। दोनों एक ही देवदार के पेड़ की घनी छाया में कुछ अन्तर छोड़कर बैठ गए। आज ईस्टर का शुक्रवार था। दोनों मित्र बड़ी आशा से यह सोचकर कि आज की छुट्टी खूब मज़े में कटेगी, प्रातःकाल सूर्योदय के साथ ही साथ अपनी बैरेक से निकल खड़े

हुए थे और घोड़े दौड़ाते हुए अपनी छावनी से मीलों दूर घने जंगलों से लदी इन पहाड़ियों पर आ पहुंचे थे। परन्तु दोपहर के समय दोनों में एक होड़ के कारण वैमनस्य पैदा हो गया। एक मोटे-ताजे हिरण का दोनों ने एक साथ पीछा किया। हिरण खूब तेज़ी से जान पर खेलकर चौकड़ियां भर रहा था। उसके पीछे-पीछे दोनों मित्र दो समानान्तर रेखाओं की तरह साथ-साथ घोड़े लिए हुए सरपट भागे चले जा रहे थे। सहसा एक ऊंची चट्टान सामने आ जाने के कारण हिरण क्षणार्ध के लिए रुककर खड़ा हो गया। वह बहुत ही भयभीत होकर अभी भली प्रकार इधर-उधर देख भी न पाया था कि रिचर्ड ने उसपर अपनी पिस्तौल से फायर किया। भाग्य से गोली चूककर चट्टान पर लगी। हिरण एक साथ जान पर खेलकर कूदा—अगले ही क्षण वह चट्टान की चोटी पर जा पहुंचा। इसी समय दोनों मित्रों ने एक साथ उसपर दो फायर किए। फायर के अनन्तर दूसरी तरफ किसी चीज़ के धम्म से गिरने की आवाज़ भी आई। रिचर्ड और ब्रेक यह समझ गए कि उनका निशाना ठीक बैठा है। दोनों अपने घोड़ों को वहीं बांधकर चट्टान के ऊपर पहुंचे। दूसरी ओर झांककर देखा तो हिरण वहीं मरा पड़ा था। उसे उठाकर वे घोड़ों के नज़दीक ले आए। जांच करने पर मालूम हुआ कि हिरण को केवल एक गोली ही लगी है। दोनों मित्रों में से किसी एक का निशाना अवश्य चूका है। इसी बात को लेकर दोनों दोस्तों में खूब तकरार हुई। ब्रेक कहता था, 'अरे, तेरा निशाना तो उस समय भी चट्टान से जा लगा था, जब कि हिरण बुत की तरह निश्चल खड़ा था। बड़ा आया है निशानेबाज !' रिचर्ड क्रोध में भरकर, 'सूअर ! हाथी की लाश ! गेंडे का पेट !' आदि गालियां देने पर तुला हुआ था। वास्तव में किसकी गोली से हिरण मरा था—यह बात तो ईश्वर ही जाने, परन्तु पूरे चालीस-पचास मिनट के भयंकर वाग्युद्ध के अनन्तर ब्रेक की विजय रही। अपने घोड़े पर उसने वह मरा हुआ हिरण लाद लिया। तब दोनों दोस्त पहाड़ की चोटी पर चढ़ने लगे और उसके कुछ ही समय बाद ब्रेक ने आराम करने का प्रस्ताव पेश किया था।

ईस्टर के शुक्रवार का सारा मज़ा किरकिरा हो गया। इस सुन्दर पार्वत्य प्रदेश के मनोहारी दृश्य और फूलों के सुगन्ध से भारी होकर बहती हुई ठण्डी हवा भी दोनों मित्रों के मनोमालिन्य को न धो सकी।

कुछ देर तक इसी प्रकार पड़े रहने के उपरान्त ब्रेक ने अपनी शराब की बोतल निकाली। उसे वह एक-एक घूंट करके धीरे-धीरे पीने लगा। क्रमश: शराब के हलके नशे ने उसकी सब चिन्ताओं पर आवरण डाल दिया। वह मस्त होकर कोई असभ्य टप्पा गाने लगा। रिचर्ड इस समय भी अनमना-सा बैठा हुआ था। आज तक अपने साथियों की दृष्टि में वह ब्रेक की अपेक्षा अधिक चुस्त और फुर्तीला गिना जाता था; सम्भवत: वह इसी कारण आज की घटना से विशेष उदास हो उठा था।

सहसा रिचर्ड उछलकर खड़ा हो गया। उसके उछलने की आवाज़ सुनकर शराब की हलकी झोंक में मस्त ब्रेक ने भी उसके आंखों के लक्ष्य की ओर देखा। उसे दिखाई दिया कि उनसे करीब ३०० गज़ की ऊंचाई पर एक मोटी-ताजी हिरणी अपने बच्चे को दूध पिला रही है। हिरणी खूब हृष्ट-पुष्ट थी, डीलडौल में वह ब्रेक के हिरण से कहीं अधिक बड़ी थी। वह आनन्दपूर्वक पहाड़ी पर की हरी-हरी घास चर रही थी। इन दोनों शिकारियों पर उसकी नज़र नहीं पड़ी थी। ब्रेक नशे में मस्त हो रहा था—उसने इस हिरणी को बड़ी उपेक्षा से देखा, परन्तु रिचर्ड ने बड़ी फुर्ती से अपनी पिस्तौल भर ली। इसके बाद अपने कोट की जेब में से शराब की बोतल निकालकर वह एक साथ आधी बोतल चढ़ा गया। तीव्र शराब के ताज़े नशे में आकर वह पूरे बल से उस हिरणी की ओर लपका। उसके लिए आज की पराजय का यही प्रायश्चित्त था।

जंगल में रहने वाले हिरण हर समय इस आशंका से चौकन्ने रहते हैं कि न मालूम कब उनकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली कोई अन्य पशु उनपर आक्रमण कर दे। परन्तु आश्चर्य यह था कि रिचर्ड ने जिस हिरणी का पीछा किया, वह बिलकुल बेपरवाह होकर घास चर रही थी। रिचर्ड शीघ्र ही उस हिरणी के अत्यन्त निकट पहुंच गया। वह अपनी पिस्तौल संभालकर हिरणी पर फायर करने ही वाला था कि अचानक घास पर उसका पैर फिसल गया। बड़ी कठिनाई से वह नीचे गिरने से बचा। उसके फिसल पड़ने की आवाज़ सुनकर हिरणी चौंक उठी। आंखें उठाते ही उसकी नज़र रिचर्ड पर पड़ी—वह एक ही छलांग में रिचर्ड की आंखों से ओझल हो गई। रिचर्ड संभलकर

उठ खड़ा हुआ। शराब के तेज़ नशे ने उसपर हत्या के उत्साह का भूत सवार कर दिया था, वह भी पूरी सामर्थ्य के साथ उसी ओर भागा।

रिचर्ड को कुछ आश्चर्य हो रहा था कि आखिर एक ही छलांग में हिरणी किधर गायब हो गई। उसे यह भी सन्देह था कि शायद वहीं कहीं छिप रही होगी। उस स्थान पर पहुंचकर उसे मालूम हुआ कि सचमुच हिरणी कहीं अधिक दूर नहीं गई, वह केवल पास की एक दीवार फांदकर उसकी ओट में चली गई है। रिचर्ड ने कुछ विस्मय के साथ उस दीवार की ओर देखा। यह दीवार किसी मकान की चारदीवारी प्रतीत होती थी। क्या इस निर्जन और घने वन में भी कोई मनुष्य निवास कर रहा है?

थोड़ी दूर पर ही दीवार का फाटक था। रिचर्ड समझ गया कि हिरणी का बच्चा इसी फाटक में से होकर अपनी माता के पास चला गया है। फाटक के सामने आकर रिचर्ड ने अन्दर की ओर झांका। उसे दिखाई दिया कि शुभ्र बरफ के समान सफेद बालों वाला एक बूढ़ा व्यक्ति फव्वारा हाथ में लेकर आंगन के फूलों को सींच रहा है। वह हिरणी उसीकी ओट में छिपी हुई खड़ी है, पास ही उसका बच्चा खेल रहा है। बूढ़ा पोशाक से हिन्दुस्तानी प्रतीत होता है।

रिचर्ड पर हत्या का भूत सवार था, वह पिस्तौल हाथ में लिए हुए हिरणी की ओर लपका। शराब के नशे में उसे यह भी ध्यान न आया कि यह हिरणी उस वृद्ध की पालतू है।

यह अचानक आक्रमण देखकर वृद्ध चौंक पड़ा। उसके लम्बे एकांत जीवन में इस प्रकार का आक्रमण शायद पहली घटना थी, परन्तु वह घबराया नहीं। अपने सधे हुए हाथों से ज़मीन पर रखी पिस्तौल उठाते हुए उसने कहा, 'खबरदार! एक भी कदम और मत बढ़ाओ।'

नशे की अवस्था में भी सामने बाधा उपस्थित हुई देखकर रिचर्ड रुककर खड़ा हो गया, परन्तु अपनी सुप्त चेतना में वह उस हिरणी पर प्रहार कर ही बैठा, उसकी गोली से हिरणी के बच्चे की एक टांग जख्मी हो गई। वृद्ध के लिए यह उपद्रव असह्य था, अगले ही क्षण उसने अपने पास से एक मज़बूत डण्डा उठाकर रिचर्ड की कलाई पर प्रहार किया। रिचर्ड के हाथ से पिस्तौल दूर जा गिरी, उसका हाथ सख्त जख्मी हुआ, परन्तु वृद्ध महोदय को इतने से

से प्रश्न किए, परन्तु अभियुक्त ने इस सम्बन्ध में कुछ भी बताने से स्पष्ट इनकार कर दिया।

न्यायाधीश महोदय इसपर भी वृद्ध से नाराज नहीं हुए। वृद्ध भारतीय इतना अधिक बूढ़ा था कि उसके शरीर का एक-एक रोम श्वेत पड़ चुका था। उसे देखकर न्यायाधीश ने यही समझा कि यह व्यक्ति अत्यधिक बुढ़ापे के कारण अपने पिता का नाम, आयु आदि सभी कुछ भूल गया है। मजिस्ट्रेट ने अपने क्लर्क से कहा, 'लिख लो—आयु लगभग ७५ बरस, जाति हिन्दू, पिता का नाम स्मरण नहीं।'

वृद्ध महोदय ने इसपर कोई ऐतराज़ नहीं किया।

न्यायाधीश ने फिर पूछा, 'तुम्हारे वे तीनों नौकर यहां उपस्थित क्यों नहीं हुए ?'

बूढ़े हिन्दुस्तानी ने मुस्कराकर पूछा, 'कौन-से नौकर ?'

मजिस्ट्रेट ने गम्भीर होकर कहा, 'कौन-से क्या ? वही जिन्होंने इस व्यक्ति को घायल किया है।'

वृद्ध वीरसिंह ने हंसकर उत्तर दिया, 'इसे स्वयं मैंने ही पीटा था। मेरे पास कोई नौकर नहीं है।'

न्यायाधीश ने समझा कि बूढ़े का दिमाग बिगड़ गया है। उन्होंने जिरह करनी शुरू की, 'तुम्हारे यहां कितने प्राणी रहते हैं ?'

'तेरह।'

'उनके नाम क्या-क्या हैं ?'

'मेरा नाम वीरसिंह है। बाकियों के नाम हैं—रजनी, चपला, दामिनी....'

मजिस्ट्रेट ने रोककर पूछा, 'उंह। उनमें से कितने पुरुष, कितनी स्त्रियां और कितने बच्चे हैं ?'

वीरसिंह ने कहा, 'दो नर, छः मादा और चार बच्चे मेरे साथ रहते हैं।'

'ये दो नर कौन हैं ?'

'चंचल और जयन्त।'

'इनकी जात क्या है ?'

'हिरण।'

इस बार मजिस्ट्रेट महोदय सचमुच नाराज़ हो गए। उन्होंने गम्भीर होकर

कहा, 'अदालत से मज़ाक करते हो ?'

वीरसिंह ने नम्रता से उत्तर दिया, 'मैं तो आपके प्रश्नों का उत्तर दे रहा हूं।'

न्यायाधीश ने कहा, 'फिर इतना समय क्यों खराब कर रहे हो ?'

वृद्ध ने उत्तर दिया, 'मैंने आपसे पहले ही कहा था कि मेरे पास कोई नौकर नहीं है। मैं अकेला ही रहता हूं।'

मजिस्ट्रेट ने खीजकर पूछा, 'तो फिर रिचर्ड को घायल किसने किया ?'

'मैंने।'

'तुमने ?' मजिस्ट्रेट को कुछ सूझ न पड़ा कि वह इसके बाद क्या प्रश्न पूछे। इसी समय अभियोगी के वकील ने उन्हें सलाह दी कि वह अभियुक्त से इस अपराध के कारण के सम्बन्ध में प्रश्न करें। मजिस्ट्रेट को भी यही उचित प्रतीत हुआ। उसने पूछा, 'अच्छा, यदि मान भी लिया जाए कि तुम्हींने अकेले रिचर्ड को पीटा (इसपर हंसी हुई), तो इसका कारण क्या था ?'

वीरसिंह सहसा बहुत गम्भीर बन गया। उसने स्थिर आवाज़ में कहा, 'यदि तुम्हें मेरी बात पर विश्वास न हो, तो मैं फिर से इसे पीटकर अपनी ताकत का परिचय दे सकता हूं।'

रिचर्ड डर गया। उसने ज़रा पीछे हटकर कहा, 'बाप रे बाप! बूढ़ा क्या है, जिन है!'

अदालत ने आश्चर्य से पूछा, 'अच्छा, तो तुमने इसे मारा क्यों ?'

वीरसिंह ने कहा, 'यदि मुझमें कुछ अधिक सामर्थ्य होती, तो मैं इसे और भी अधिक पीटता। इसने मेरे 'अजय' की टांग तोड़ डाली है।'

'अजय कौन है ?'

'रजनी का बच्चा।'

'रजनी कौन है ?'

'मेरी हिरणी।'

इसपर फिर कहकहा पड़ा, परन्तु वीरसिंह बहुत गम्भीर भाव से ये सब बातें कह रहा था। इतनी सफाई देने के अनन्तर उसने अदालत के एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।

कानून के अनुसार मामले पर पूरी तरह विचार किए जाने के उपरान्त

अदालत ने वीरसिंह को अपराधी पाया। उसे ६ मास की सादी सज़ा दी गई और उसके कल्पित नौकरों के नाम पर विला जमानती वारंट जारी कर दिए गए।

परन्तु मनुष्य-निर्मित जेल की दीवारें निरपराध वीरसिंह को एक दिन के लिए भी अपने अंदर कैद न रख सकीं। जेल-यात्रा के पहले दिन ही सायंकाल के समय उस वीर का स्वर्गवास हो गया। बूढ़े की लाश के नीचे से, तलाशी लेने पर, एक चिट्ठी बरामद हुई। यह चिट्ठी हम यहां ज्यों की त्यों उद्धत कर रहे हैं—

'मचाकोस नगर के निवासियों के नाम—

पुत्रो !

इस जगह कोठरी में वन्द होकर रहना मैं कभी सहन न कर सकूंगा। लगातार ४० वरसों तक मैं इन्हीं पहाड़ों पर—आसमान की बिजली की तरह, भागते हुए झरनों की तरह और समुद्र की तरंगों की तरह विलकुल आज़ादी से घूमा-फिरा हूं; आज भी आज़ाद ही रहूंगा। तुम लोगों ने बिजली को वश में कर लिया है, झरनों को बांध दिया है और सुनता हूं, समुद्र की तरंगों को भी जीत लिया है; परन्तु तुम मुझे न बांध सकोगे। यह स्थान मेरे लिए नया नहीं है। आज से ४० बरस पूर्व मैं सैकड़ों बार इसी स्थान पर निश्चल होकर बैठा हूं। आज जहां यह कारावास बना है, उस समय वहां स्वच्छ जल का एक सुंदर झरना झरा करता था। ठीक इसी कोठरी की जगह, झरने के बीचोंबीच पत्थर की एक बड़ी शिला पड़ी हुई थी। इस शिला पर निरंतर घंटों तक बैठकर मैं झरने के असंयत पानी से स्वाधीनता, चंचलता और प्रसन्नता के स्वर्गीय पाठ पढ़ा करता था। पुत्रो, भाग्य के फेर से आज उसी चट्टान को काटकर बनाई गई इस कोठरी में तुम मुझे 'कैद' करना चाहते हो ! यह न होगा, कदापि न होगा।

मैं आज तक तुम लोगों के लिए अज्ञात था। तुम मेरी देवता के समान प्रतिष्ठा करते थे। मुझे मालूम है, मेरे ही कल्पित दैवी स्वरूप के सम्बन्ध में तुम्हारे कवियों ने अनेक सुन्दरतम काव्यों की सृष्टि की है, सैकड़ों बार इस नगर में रहने वाली कोमलांगी युवतियों ने, मेरी ही पुत्रियों ने, मेरे सम्बन्ध के गीत

तुम्हारे सामाजिक उत्सवों और भोजों में गाए हैं। मैं ही तुम्हारा वह 'नगर का पिता' हूं, जिसकी कल्पित मूर्ति के सम्मुख तुम सब लोग आदर से सिर झुकाकर खड़े होते हो।

इस सुन्दर नगर के निवासियो, आज तक मैं तुम्हारी कल्पना का एक अज्ञात देव था। तुम्हारी दृष्टि में मैं जाति, वर्ण, वंश, कुल आदि की सम्पूर्ण सीमाओं से बहुत ऊपर था। तुम मुझे 'वतन का देवता' कहकर याद करते थे, परन्तु मेरे तो वर्ण, वंश, जाति आदि सभी कुछ था। पुत्रो, यदि आज तुम्हें यह मालूम हो जाए कि तुम्हारी कल्पना का वह फरिश्ता तुम्हारे इस शानदार नगर का पिता एक 'भारतीय' था, तो बताओ, तुममेंसे कितने लोगों के हृदय में उसके लिए वही सम्मान का भाव शेष रहेगा ?

४० वर्ष पूर्व जब यह सुन्दर घाटी एक घने जंगल से ढकी हुई थी, मैं सचमुच उस वन का राजा था। मेरा यह राज्य भी ठीक ४० बरसों तक ही कायम रहा है। उन दिनों मैं जवान था; तब मेरी बाहुओं में बल था, शरीर में स्फूर्ति थी। प्रतिदिन मैं मीलों तक दौड़ता था, मनों बोझ उठाता था और अनेक आपत्तियों का सामना करता था। मैं शिकारी जानवरों का आखेट किया करता था—बीसियों बड़े-बड़े शेर मेरे हाथों से मारे जा चुके हैं। जब किसी पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर मैं पूरे बल के साथ अपनी तुरही बजाता था, तो ये सम्पूर्ण सुनसान घाटियां उसकी गम्भीर प्रतिध्वनि से गूंज उठती थीं। ओह, वे घड़ियां कितना मस्त बना देने वाली होती थीं। तुरही की गूंज से मीलों तक श्मशान के समान सन्नाटा छा जाता था; वन के सम्पूर्ण पशु अपने सम्राट् का आदेश पाकर अपनी-अपनी खोहों में छिप जाते थे। तब मैं वन के अकृत्रिम फूलों से अपना शृंगार करता था—अपने धनुष को भी फूलों से सजाता था। इसके बाद ?—इसके बाद झरने के किसी शान्त भाग में जाकर निश्चल जल में मैं स्वयं अपना प्रतिबिम्ब देखा करता था।

उफ, अब वह ज़माना याद करके क्या होगा ! मेरे स्वच्छन्द, निरंकुश राज्य के वे ४० बरस, ४० दिनों के समान बीत गए। इन ४० वरसों के बाद सर विलियम मोरिफ़ ने मेरी सहायता से शेर की दाढ़ों से मुक्ति पाकर इस घाटी में इस नगर की स्थापना की। यह भी सम्भवतः ईश्वर की प्रेरणा ही थी। भाग्यचक्र से मेरे जीवन के यौवन का मध्याह्नकाल उस शेर की हत्या के

साथ ही समाप्त हो गया ।

धीरे-धीरे यहां यह सुन्दर नगर बस गया, और मैं चंचलता छोड़कर एकान्तवास करने लगा । पिछले ४० बरस मैंने इन जंगली हिरणों के साथ ही बिताए हैं । उस समय मैंने जिन हिरणों को पाला था, आज उनकी पांचवीं पीढ़ियां मेरे आश्रम में दो-दो बच्चों की माताएं बनी हुई हैं ।

पिछले ४० वरसों में मैं अज्ञात रूप से अनेक वार अपने इस अपहृत राज्य का निरीक्षण करने के उद्देश्य से यहां आता रहा हूं । तब में और अब में बड़ा परिवर्तन आ गया है । आज जहां तुम्हारा चर्च बना हुआ है—वहां उस समय एक शेरनी की मांद थी; तुम्हारे न्यायालय के स्थान पर ही मैंने एक बहुत बड़े बब्बर शेर का शिकार किया था । तुम्हारे स्कूल के आंगन में देवदार का जो विशाल वृक्ष है, उसे मैंने अपनी किसी जन्मगांठ के उपलक्ष्य में वहां लगाया था । आज जिस स्थान पर 'पार्कर कम्पनी' की आलीशान इमारत है, वहां उस ज़माने में एक गहरा गड्ढा था, जिसमें गरमियों के मौसम में हाथी आराम किया करते थे ।

परन्तु अब तो उन मधुर स्मृतियों को भुला देने में ही कल्याण है । अच्छा पुत्रो ! मैंने सब भुला दिया । तुम लोग फलो और फूलो, मुझ सौ बरस के बूढ़े हिन्दुस्तानी राजपूत का यही हार्दिक आशीर्वाद है ।

—वीरसिंह'

बूढ़े वीरसिंह की यह चिट्ठी सिटी-मजिस्ट्रेट के पास पहुंची तो अवश्य, परन्तु मालूम नहीं कि उन्होंने इस चिट्ठी के साथ क्या सलूक किया । पहाड़ की चोटी पर वह सफेद संगमरमर की मूर्ति आज भी उसी शान से खड़ी हुई है, परन्तु बूढ़े वीरसिंह को कोई नहीं जानता ।

भूल

उस विकृत परन्तु अत्यन्त गम्भीर चेहरे वाले सरपंच ने गूंजती हुई आवाज़ में पुकारा, 'कमांडर !'

एक पतला-दुबला रूसी नवयुवक बड़ी शीघ्रता से सरपंच के सम्मुख आ उपस्थित हुआ। उसने कहा, 'हुज़ूर !'

सरपंच ने पूछा, 'जानवर कहां है ?'

रूसी युवक ने उत्तर दिया, 'बाहर खड़ा है।'

सरपंच ने कहा, 'उसे बुला लाओ।'

कमांडर एक बार झुककर बाहर चला गया। कमरे में फिर से पूरी तरह सन्नाटा छा गया। सरपंच की ऊंची कुर्सी के नीचे, उसके पैरों के पास पांच व्यक्ति तलवारें लिए खड़े थे। ये सब रूसी क्रान्तिकारी दल के मुखिया थे। अपने दल के नए रंगरूटों को वे 'जानवर' के नाम से पुकारते थे। आज जिस जानवर को दल के नेताओं के सम्मुख दीक्षा के लिए आना था, वह एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था। रूसी राजघराने से उसका सीधा सम्बन्ध था। इसी कारण दल के नेता आज बहुत सतर्क और गम्भीर थे। उसका नाम क्रोपेट था। क्षणभर में क्रोपेट उस कमरे में उपस्थित हुआ और सिर झुकाकर उसने सरपंच को नमस्कार किया। परन्तु सरपंच ने इस नमस्कार का कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया।

क्रोपेट सरपंच के खुरदरे चमड़े वाले, गम्भीर चेहरे की ओर बड़ी श्रद्धा के साथ देखने लगा। क्रोपेट समझ गया कि किसी समय सरपंच एक अत्यन्त सुन्दर मनुष्य रहा होगा, परन्तु इस क्रान्तिकारी संघ में प्रविष्ट होकर, नियमानुसार, उसने तेज़ाब डालकर अपनी मुखाकृति बिगाड़ ली है। क्रोपेट इस अद्भुत व्यक्ति को बड़े विस्मय के साथ देखने लगा। सरपंच भी बड़े गौर से उसकी

तरफ देख रहा था। सम्भवतः वह क्रोपेट के मुख के दर्पण में उसके मनोभावों का अध्ययन करने का प्रयत्न कर रहा था।

इस सन्नाटे में क्रोपेट अपने ही विचारों में मग्न हो गया था; परन्तु थोड़ी देर बाद वह सरपंच की गम्भीर आवाज़ सुनकर चौंक उठा। सरपंच उससे पूछ रहा था, 'जानवर, यह जानते हो कि तुम यहां क्यों लाए गए हो ?'

क्रोपेट ने उत्तर दिया, 'जी हां।'

सरपंच ने कहा, 'तुम्हें यह तो स्मरण है न कि तुम एक बहुत बड़े जमींदार के पुत्र हो ? क्या तुम्हें ज्ञात है कि तुम अपनी प्रखर प्रतिभा और सुप्रसिद्ध कुलीनता के आधार पर शीघ्र ही रूस की इस ज़ारशाही के भाग्य विधाताओं में सम्मिलित हो सकते हो ? ठीक उसी तरह, जिस तरह तुम्हारा बड़ा भाई एलास्की आज रूस भर की पुलीस का अध्यक्ष है।'

क्रोपेट कुछ कहना चाहता था, परन्तु उसे बोलने का अवसर न देकर सरपंच कहता ही चला गया, 'अगर चाहो तो यहां से दर्पण लेकर एक बार फिर अपनी असाधारण सुन्दरता का ध्यान कर लो। तुम्हारे इस देव-दुर्लभ रूप के कारण सेण्ट पीटर्सबर्ग की सर्वश्रेष्ठ नवयुवतियां भी तुमसे विवाह करने को लालायित हैं,—यहां आते हुए, क्षणिक आवेश में, इस बात को भूल तो नहीं गए ?'

क्रोपेट ने बड़ी शीघ्रता से केवल इतना ही कहा, 'श्रीमान् ! आप मुझे गाली दे रहे हैं।'

जिस तरह परीक्षण-नलिका में थोड़ा-थोड़ा एसिड डालकर वैज्ञानिक कुछ देर तक उसके परिणाम की प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार सरपंच भी उपर्युक्त बातें कहकर क्रोपेट के चेहरे की तरफ देखने लगा। क्रोपेट अब सरपंच के पैरों की तरफ ताक रहा था।

कुछ देर बाद सरपंच फिर बोला। इस बार उसने क्रोपेट को 'जानवर' के नाम से सम्बोधित नहीं किया। उसने कहा, 'क्रोपेट, जानते हो—हमारा काम कितना नृशंसतापूर्ण है ? हम लोग सन्देहमात्र पर हत्या कर देते हैं। सुखी गृहस्थों पर डाका डालते हैं। कहीं बालक चीख न उठे, इसी भय से उसका गला घोंट देते हैं। मौका पड़ने पर हमें निरपराध स्त्रियों तक का भी वध करना पड़ता है। दूसरी ओर हमारा जीवन भी सुरक्षित नहीं है। प्रतिक्षण हमें पकड़े

जाने का, फांसी पर लटकाए जाने का भय रहता है। इसपर हमारे देश के बहुत से यशस्वी और समझदार नेता हमें 'खूनी', 'लुटेरा' और 'देशद्रोही' समझते हैं। यहां आने से पूर्व तुमने इन सब बातों पर भी विचार किया है या नहीं ?'

क्रोपेट की आंखों में आंसू छलक आए। उसने सिर झुकाकर उत्तर दिया, 'ठीक इसी तरह के पवित्र और निष्काम देशसेवक सदा से मेरी कल्पना के देवता रहे हैं।'

इसपर सरपंच ने अपनी जेब से कागज़ का एक टुकड़ा निकालकर क्रोपेट के हाथों में दिया। चरबी की बड़ी-बड़ी बत्तियों के धुंधले प्रकाश में क्रोपेट उसे पढ़ने लगा—'मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आज से इस संघ की प्रत्येक आज्ञा का बिना विरोध पालन किया करूंगा। संघ की प्रत्येक बात गुप्त रखकर उसके सदस्यत्व की सब शर्तें पूरी करूंगा।' अपनी छाती का थोड़ा खून निकालकर क्रोपेट ने इस कागज़ पर दस्तखत भी बना दिए। रूसी क्रान्तिकारी संघ का यही नियम था।

रूसी क्रांतिकारी दल के मुखियाओं की बैठक उसी स्थान पर शुरू हो गई। इस नए जानवर के सम्बन्ध में विचार होने लगा। सभी मुखियाओं ने क्रोपेट को इसी समय 'नायक' का पद दे देने की सिफारिश की। किसी नए जानवर के लिए यह सम्मान कल्पना से भी परे की वस्तु था। कौन्सिल समाप्त हुई। सरपंच ने क्रोपेट को मखमल से मढ़ी हुई एक चौकी पर अपना दाहिना घुटना टेकने का आदेश दिया। 'नायक' बनाने की रस्म अदा की जाने लगी। इस रस्म के अन्त में जब सरपंच क्रोपेट की कमर में तलवार बांधने लगा, तब एक मुखिया ने झट से अपना बायां हाथ आसमान में उठा दिया।

सरपंच एक साथ दो कदम पीछे हट गया। उसने बड़ी शीघ्रता से पूछा, 'कहो, तुम्हें इसमें क्या आपत्ति है ?'

वह मुखिया अपनी बात कहते हुए सम्भवतः कुछ घबराहट अनुभव कर रहा था। उसे शीघ्रता से उत्तर देते हुए न पाकर सरपंच ने बड़ी अधीरता से पूछा, 'कहो, जल्दी कहो, तुम्हें इस कार्रवाई में क्या आपत्ति है। इस तरह व्यर्थ में समय खराब मत करो।'

वह मुखिया घबराई हुई-सी आवाज़ में बोला, 'सरपंच ! किसी 'जानवर' को सीधा 'नायक' बनाने के लिए एक आवश्यक बात यह भी है कि तेज़ाब, नश्तर

या इसी प्रकार की किसी अन्य चीज़ द्वारा उसकी मुखाकृति विगाड़ दी जाए ।'

सरपंच विचलित हो उठा । एक मिनट तक चुपचाप इस नई समस्या पर विचार करते रहकर वह जल्दी-जल्दी बड़बड़ाया, 'नहीं, यह असंभव है । क्रोपेट के सुन्दर मुख पर तेजाब छिड़कने की आज्ञा मैं नहीं दे सकता ।'

क्रोपेट को नायक बनाने की रस्म पूरी कर दी गई । सभी सरदार आश्चर्य से सरपंच की ओर देख रहे थे । उन्हें विस्मय था कि आज सरपंच को यह क्या हो गया है । परन्तु नियमानुसार वे अब सरपंच की आज्ञा का विरोध न करने के लिए बाधित थे । सभी सरदारों ने बारी-बारी से क्रोपेट से हाथ मिलाया । सबसे अन्त में सरपंच ने क्रोपेट को गले लगाकर उसे अपने दल में सम्मिलित कर लिया ।

'मास्को-खरकाफ़-मेल' के पहले दर्जे में क्रोपेट अकेला सफर कर रहा था । उसका चेहरा आज अत्यन्त गम्भीर था । आंखों से विनय और आत्मविश्वास का भाव टपक रहा था । अभी हाल ही में वह क्रान्तिकारी दल के लिए एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करके आ रहा था । वह मास्को से रूस की जेलों के सम्बन्ध का सम्पूर्ण पत्रव्यवहार चुराकर ला रहा था । [illegible] दल निरंतर ६ मास से जिस बात के लिए जी तोड़कर कोशिश कर रहा था, उसमें सफलता प्राप्त करके भी क्रोपेट के चेहरे पर प्रसन्नता का कोई चिह्न नहीं था । जिस प्रकार भारी तूफान गुज़र जाने के बाद समुद्र फिर से अत्यन्त गम्भीर स्वरूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार क्रोपेट के मुख की यह शान्त मुद्रा भी निकट भूत की किसी विकट हलचल की प्रतिक्रिया रूप थी ।

क्रोपेट स्वभाव से बहुत ही कोमल और दयापूर्ण प्रकृति का मनुष्य था । उसकी बड़ी-बड़ी आंखों से एक अद्भुत एकाग्रता और गहरे सन्तोष का भाव टपकता था । पिछले दो सालों के जीवन में, अवसर पड़ने पर, उसके नेतृत्व में अनेकों हत्याएं भी हुई थीं, परन्तु भारतवर्ष के निष्काम योगियों की तरह उसके निर्मल हृदय पर इन नृशंस हत्याओं की कोई छाप नहीं पड़ी थी । क्रान्तिकारी दल में अब उसका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था । दल की कोई बात भी उसकी सलाह लिए बिना न की जाती थी । इसपर भी उसका स्वभाव संघ के सदस्यों के लिए एक पहेली बना हुआ था । क्रोपेट का हृदय एक ओर फूल से भी अधिक

नरम था और दूसरी ओर वज्र से भी अधिक कठोर। आश्चर्य तो यह था कि कभी-कभी उसके चरित्र के ये दोनों सर्वथा प्रतिकूल पहलू, केवल कुछ घण्टों के व्यवधान ही से क्रियात्मक रूप धारण किया करते थे।

क्रोपेट अपने बिस्तरे से ढासना दिए हुए ही, पहाड़ी उपत्यका के हरे-भरे जंगलों को देखने लगा। आसमान में बादल छाए हुए थे। मालूम होता था कि बहुत शीघ्र खूब जमकर पानी बरसेगा। इस ऊंचे-नीचे मार्ग पर डाकगाड़ी बरसाती कीड़ों की तरह गोल-मोल होकर चल रही थी। सब ओर सन्नाटा था। इसी तरह धीरे-धीरे चलकर गाड़ी ओरेल जंकशन पर आकर खड़ी हो गई। इस समय तक पानी पड़ना शुरू हो गया था। ठण्डी हवा चल रही थी, अतः क्रोपेट अपना चेस्टर डालकर स्टेशन के बुकस्टाल की तरफ गया। वहां लकड़ी के चौखटों में ७ जुलाई के विभिन्न अखबारों के मुख्य समाचार जड़े हुए थे। क्रोपेट ने उड़ती निगाह से उपेक्षा के साथ इन विज्ञापनों की ओर देखा। यह क्या? क्रोपेट सहसा चौंक उठा। क्षण भर के लिए उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो भयंकरता से पृथ्वी हिल रही है। दैनिक अखबारों के इन विज्ञापनों पर मोटे-मोटे लाल अक्षरों में छपा हुआ था—

७ जुलाई……
क्रान्तिकारी संघ का भण्डाफोड़!
संघ का सरपंच गिरफ्तार
पुलीस विभाग के मुख्य अध्यक्ष
को १ लाख रूबल इनाम

बड़ी कठिनाई से क्रोपेट ने अपने को संभाला। सम्पूर्ण बल संग्रह कर वह स्टाल के निकट पहुंचा। चुपचाप ७ जुलाई के दो-तीन अखबार खरीदकर वह अपने डिब्बे में लौट आया। इसी समय सीटी देकर डाकगाड़ी चल दी। अपने चैस्टर पर ढासना लगाकर क्रोपेट अखबार पढ़ने लगा। उसे ज्ञात हुआ कि सरपंच को गिरफ्तार करनेवाला व्यक्ति उसका अपना सगा भाई मोशिए एलास्की ही है।

इसके बाद क्रोपेट खरकाफ़ नहीं गया। अगले जंक्शन पर यह डाकगाड़ी

छोड़कर क्रोपेट साइबेरिया की तरफ चला गया।

सरपंच को गिरफ्तार हुए तीन मास वीत चुके हैं। उन्हें शीघ्र ही प्राण-दण्ड दिया जानेवाला है। क्रान्तिकारी दल का संगठन अब नष्टप्रायः हो गया है। कुछ क्रान्तिकारियों ने सरपंच को छुड़ा लाने का प्रयत्न भी किया था, परन्तु वे स्वयं भी गिरफ्तार हो गए थे। अतः अब किसी व्यक्ति में यह साहस शेष नहीं रहा कि वह सरपंच की रक्षा के लिए कोई प्रयत्न करे।

आश्चर्य इस वात का है कि सरपंच के कैद होने के बाद से ही उनका दायां हाथ क्रोपेट भी लापता है। सरपंच की गिरफ्तारी से १०-१२ दिन पूर्व संघ ने उसे एक आवश्यक काम के लिए मास्को भेजा था। उस दिन के वाद से यह मालूम नहीं हुआ कि क्रोपेट कहां चला गया है। शुरू-शुरू में दल के लोग यह समझते थे कि सम्भवतः सरपंच की सहायता करने के उद्देश्य से ही क्रोपेट इस प्रकार अन्तर्धान हो गया है; परन्तु इतने दिनों तक उसका कोई समाचार न पाकर लोगों का यह विश्वास लगभग मिट गया है।

अब क्रान्तिकारी संघ में, क्रोपेट के सम्वन्ध में दो विचार हैं। दल के बहुमत का यह पूर्ण विश्वास है कि असल में क्रोपेट स्वयं ही खुफिया विभाग का कोई उच्च अधिकारी था। वह सरपंच को गिरफ्तार कराने और क्रान्तिकारी संघ को नष्ट करने की इच्छा से ही इस संघ में सम्मिलित हुआ था। अन्य लोगों का यह मत है कि क्रोपेट सरकार से डरकर कहीं छिप गया है। ये आपत्ति के दिन निकल जाने पर वह फिर से क्रान्तिकारी दल की नवीन आयोजना करेगा।

साइबेरिया के पुराने किले में लोहे का एक रुद्ररूप पिंजरा रखा हुआ था। ओस से बचाने के लिए पिंजरे की छत टीन डालकर बनाई गई थी। नवम्बर का महीना था। शिद्दत की सरदी थी। चारों तरफ बरफ़ के ऊंचे-ऊंचे अम्बार लगे हुए थे। सनसनाती हुई तेज बरफ़ीली हवा चल रही थी। दोपहर का समय था, परन्तु घने कुहरे की धुंध के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि शीघ्र ही रात होनेवाली है। लोहे के इस भयंकर पिंजरे में दो-एक फटे-पुराने कम्बल ओढ़कर सरपंच बैठा हुआ था। किसी जमाने में यह पिंजरा ज़ार के शेर रखने के

काम में आता था। कहते हैं कि यह पिंजरा उन दिनों आजकल की अपेक्षा बहुत अच्छी हालत में था—तब इसमें सरदी और हवा का इतना अबाधित प्रवेश नहीं था। कुछ भी हो, इतना तो फिर भी कहा जा सकता है कि सरपंच इस पिंजरे में उदास नहीं था। उसकी शारीरिक दशा अवश्य बिगड़ गई थी, परन्तु उसके चेहरे पर किसी प्रकार के दुख का भाव दिखाई नहीं देता था। वह बिलकुल गम्भीर और शान्त रहता था। पहरेदारों ने भी शायद ही कभी उसकी आवाज़ सुनी हो। मृत्युदण्ड के साधारण कैदियों की तरह वह चिड़चिड़ा या गमगीन नहीं बन गया था। किसी सन्तरी को उससे किसी प्रकार की शिकायत नहीं थी। वह इस समय कम्बलों में सिकुड़कर शान्त भाव से, सामने की बरफ़ से ढकी हुई छतों की ओर देख रहा था।

पिंजरे के बाहर आठ-दस सशस्त्र सिपाही पहरे के लिए नियुक्त थे। रूस के ये सिपाही बिलकुल उजड्ड और अशिक्षित होते थे। ये सब लोग एक अंगीठी के चारों ओर, टोली बनाकर गप्पें लगा रहे थे। मुफ्त में बारी-बारी से पिंजरे के चारों तरफ मार्चिंग करते फिरना, उन्हें अनावश्यक और मूर्खतापूर्ण प्रतीत होता था।

इनमें से एक सिपाही खूब लम्बी दाढ़ी-मूंछों वाला था। इसलिए उसके साथी उसे 'दढ़ियल' कहकर पुकारते थे। यह बड़ा ही हंसोड़ और बातूनी था। अन्य सब सिपाही उसके साथ ड्यूटी पर जाने के लिए उत्सुक रहा करते थे। करीब दो मास से ही वह इस किले की पुलीस में सम्मिलित हुआ था। उसका पूर्व परिचय लोग इतना ही जानते थे कि पहले वह एक कोयले की खान में मज़दूर का काम किया करता था, परन्तु पीछे बाबू बनने की प्रवृत्ति उसे इस महकमे में खींच लाई। वह अपनी दाढ़ी-मूंछों से बहुत प्रेम करता था। उसमें एक विचित्रता यह भी थी कि वह सदैव दो कोट, दो पतलूनें और दो कमीज़ें पहना करता था। दूसरे सिपाही जब इसपर उसकी हंसी उड़ाते तब वह जवाब दिया करता, 'बाबा, क्या करूं? उम्र भर बन्द और गरम कोयले की खान में काम किया है, अब यह सरदी, यह ठण्डी हवा कैसे बरदाश्त करूं?'

बातचीत के सिलसिले में एक सिपाही ने कहा, 'यार! गज़ब की सरदी है।'

दूसरा बोला, 'यह झंझट कब समाप्त होगा ?'

दढ़ियल बोला,'इस महीने के भीतर यह मामला अवश्य समाप्त हो जाएगा ।'

पहले सिपाही ने पूछा, 'क्यों, क्या फांसी की तारीख निश्चित हो गई ?'

ऊंचे स्वर से हंसते हुए दढ़ियल ने कहा, 'नहीं, अब फांसी की जरूरत भी क्या है । यह शिद्दत की सरदी ही इस कैदी का काम तमाम कर देगी । देखो न, किस तरह सिकुड़ा हुआ पड़ा है—जैसे लिपटा हुआ विस्तरा हो ।'

सब सिपाही खिलखिलाकर हंसने लगे ।

बस, दढ़ियल की सभा का रंग जम गया । वह तिलस्मी कहानियों की तरह अपने कोयले के काम के अनुभव सुनाने लगा । धीरे-धीरे कुहरा साफ हो गया । सूर्य भगवान् के दर्शन सुलभ हो गए ।

अचानक दूर पर बैठक के पीछे से 'आग, आग' का ऊंचा शोर सुनकर यह मण्डली इस तरह बर्खास्त हुई जिस तरह पत्थर की चोट खाकर भिड़ों का छत्ता खाली होता है । सब लोग एक साथ उसी तरफ भागे । इसी समय बैरक की ओर से एक सिपाही ऊंचे स्वर में आग लग जाने की सूचना देता हुआ पिंजरे की तरफ आया । सब सिपाही तो पहले ही उसी तरफ भागे जा रहे थे । दढ़ियल ने भारी-भरकम दोहरे कपड़े पहन रखे थे, अतः जब वह जोर से न दौड़ सकने के कारण सबसे पिछड़ गया, तब उसने चिल्लाना शुरू किया, 'अरे नालायको ! इस कैदी को अकेला छोड़कर कहां भागे जा रहे हो ।' परन्तु किसीने दढ़ियल की इस बात का जवाब नहीं दिया । यह देखकर दढ़ियल ठहर गया । इसी समय बैरक की ओर से दौड़कर आया हुआ सिपाही दढ़ियल के पास आकर बोला, 'चलो, कैदी पर हम दोनों पहरा दें ।'

दढ़ियल विना आनाकानी किए वापस लौट चला ।

सरपंच भी कौतूहल के साथ अग्नि की उन प्रचण्ड लपटों की तरफ देख रहा था । इसी समय अचानक उसे पुकारने की आवाज सुनाई दी । कोई बरसों से परिचित स्वर में कह रहा था, 'सरपंच !'

सरपंच ने आश्चर्य के साथ पीछे की तरफ मुड़कर देखा । दढ़ियल उसे पिंजरे के बाहर खड़ा होकर बुला रहा था । दो-एक क्षण तक दढ़ियल की ओर विस्मय के साथ देखते रहकर सरपंच भी चिल्ला उठा, 'क्रोपेट !' सरपंच खुशी से उन्मत्त हो गया था ।

समय अधिक नहीं था। दढ़ियल ने अपनी दोहरी पोशाक उतारकर सरपंच को पहनने को दिया। सरपंच के पुराने कपड़ों को इस तरह डाल दिया गया कि वे किसी लेटे हुए आदमी के समान प्रतीत हों। इसके बाद क्रोपेट ने दरवाज़ा खोलकर सरपंच को पिंजरे से बाहर निकाल लिया।

पिंजरे के बाहर, आग की अंगीठी अभी तक उसी प्रकार सुलग रही थी। इस अंगीठी के चारों ओर बैरक की तरफ भागे हुए सिपाहियों की बन्दूकें अस्त-व्यस्त रूप में बिखरी पड़ी थीं। इनमें से तीन बन्दूकें लेकर ये तीनों आदमी, सैनिक वेश में किले के फाटक की ओर चले।

ये तीनों सिपाही कदम मिलाते हुए फाटक पर पहुंचे। सरपंच को बीच में कर उसके एक ओर दढ़ियल क्रोपेट चल रहा था और दूसरी ओर बैरक की तरफ से भागकर आया हुआ सिपाही। किले के फाटक पर भी इस समय केवल दो-तीन सिपाही ही बचे थे। शेष सब अग्निकाण्ड का दृश्य देखने के लिए चले गए थे। ये लोग भी फाटक से १०-१५ गज़ दूर, धूप में बैठकर सम्भवतः आग के सम्बन्ध में ही बातचीत कर रहे थे। दो अन्य सिपाहियों के साथ दढ़ियल को किले से बाहर जाता हुआ देखकर एक पहरेदार ने बैठे-बैठे ही पूछा, 'क्यों भाई दढ़ियल, कहां चले ?'

दढ़ियल ने बिना ठहरे ही उत्तर दिया, 'अरे यार ! हमारा कमाण्डर भी कितना मनहूस है। आज इतने दिनों बाद जाकर तो एक दिलचस्प तमाशा देखने को मिला और वह हमें इसी घड़ी चौकी पर इस मामले की इत्तला देने के लिए भेज रहा है।'

पहरेदार एक बार धीमे से हंसकर फिर अपनी बातचीत में लग गए। ये तीनों व्यक्ति फाटक के बाहर आकर दो-तीन घण्टे में ही, बड़ी-बड़ी चट्टानों से परिपूर्ण उस पहाड़ी उपत्यका के घने जंगल में छिप गए।

क्रान्ति की ज्वालाएं अब देश भर में व्याप्त हो गईं। दल के नेताओं को इस बात का मौका ही न मिला कि वे सरपंच को मौत के मुंह से बचा लाने के उपलक्ष्य में कोई खुशी मना सकें। उस दिन किले के फाटक से बाहर आकर जब सरपंच को मालूम हुआ कि क्रोपेट के निर्देश से ही उसका वह साथी स्वयं बैरक में आग लगाकर पिंजरे की तरफ़ भाग आया था, तब सरपंच ने बड़ी कृतज्ञतापूर्ण भाषा

में इन दोनों को धन्यवाद दिया था। इसके अतिरिक्त इन लोगों के साथ अन्य कोई विशिष्ट व्यवहार नहीं किया गया। सरपंच का स्वास्थ्य अब बहुत बिगड़ गया था, अतः उसने अब अपने मन में यह दृढ़ धारणा कर ली थी कि क्रान्तिकारी संघ के सम्बन्ध में दो-एक विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य और कर, वह क्रोपेट को ही संघ का सरपंच बना देगा। दिल ही दिल में उसने क्रोपेट के दूसरे साथी को भी शीघ्र ही नायक बना देने का पूर्ण निश्चय कर लिया था। परन्तु अभी तक उसने अपना यह विचार क्रोपेट तक को भी नहीं बताया था। नए-नए कामों की धुन में उसे इस बात का अवसर ही नहीं मिला था।

आज एक बड़े गम्भीर विषय पर विचार करने के लिए क्रान्तिकारी संघ के नायकों की विशेष बैठक हो रही थी। सरपंच की ऊंची कुर्सी के नीचे उसके ठीक सामने क्रोपेट भी अपने स्थान पर बैठा हुआ था। इसी समय सरपंच ने अपनी जेब से एक छोटा-सा फोटो बाहर निकाला। क्रोपेट यह फोटो देखते ही चौंक उठा। उसके मुख से अनायास ही निकला, 'ओह मोशिए लीमैन।'

सरपंच आश्चर्य के साथ क्रोपेट के मुंह की तरफ देखने लगा। उसने पूछा, 'क्रोपेट, तुम इस आदमी को जानते हो?'

क्रोपेट ने इस प्रश्न का कोई जवाब नहीं दिया। उसकी नसों में खून बड़े वेग से गति कर रहा था। क्रोपेट को चुप देखकर सरपंच ने गूंजती हुई आवाज़ में फोटो के नीचे लिखा हुआ नाम पढ़ा, 'मोशिए लीमैन, एस० पी० के लार्ड मेयर।'

इसके बाद सरपंच ने एलान किया, 'आगामी १० मई की रात तक इस व्यक्ति की हत्या हो जानी चाहिए।'

क्रोपेट अब चुप न रह सका। उसने लड़खड़ाते हुए स्वर में सरपंच की इस बात का प्रतिवाद किया, 'ओह, मोशिए लीमैन तो बहुत ही भला आदमी है। उसके वध करने की क्या आवश्यकता आ पड़ी है।'

तेज निगाह से क्रोपेट के चेहरे की तरफ देखकर सरपंच ने क्रोध भरे स्वर में आदेश दिया, 'चुप रहो।'

क्रोपेट समझ गया कि उससे अपराध हुआ है। वह सिर नीचाकर चुप हो गया।

लार्ड मेयर के वध का काम किसके सपुर्द किया जाए, इसके लिए पर्चियां

डाली गई। भाग्यवश क्रोपेट का ही नाम निकला। क्रोपेट के चेहरे का रंग फक पड़ गया। आंखें नीचे की ओर झुक गईं। इसी समय क्रोपेट की ओर फोटो बढ़ाकर सरपंच ने पूछा, 'क्रोपेट ! तैयार हो ?'

क्रोपेट ने कांपते हुए हाथों से वह फोटो ले लिया। यह स्वीकृति का चिह्न था। सरपंच के साथ अन्य सब सरदारों ने खड़े होकर क्रोपेट की सफलता के लिए ईश्वर से प्रार्थना की।

बचपन में सुने हुए किसी मधुर संगीत की सुखद स्मृति की तरह क्रोपेट को अपने जीवन का कोई अतीत, रोचक पहलू याद हो आया। उसका हृदय झनझना उठा। बड़ी तपस्याओं और साधनाओं की सहायता से उसने अपनी जिन मानसिक भावनाओं का दमन किया था, वे सब मोशिए लीमैन की स्मृति के साथ ही साथ और भी अधिक प्रबलता से उसकी आंखों के सम्मुख नाचने लगीं। क्रोपेट उन भावों का मुकाबला नहीं कर सका। मोशिए लीमैन के बंगले के अहाते वाले बाग का खाका अपने साथ उसके मानसिक नेत्रों के सम्मुख जो मनोहारी चित्र लाया उसे क्रोपेट हठात् अपने मस्तिष्क से दूर नहीं कर सका। उसने अपने हृदय को ढीला छोड़ दिया। उठती हुई जवानी में उसका किशोर और उत्साही हृदय जिस अनिन्द्य सुन्दरी देवी की प्रतिमूर्ति का दिन-रात चिंतन किया करता था, बरसों के बाद आज फिर वही मूर्ति उसके नेत्रों के सम्मुख घूमने लगी। क्रोपेट, क्रान्तिकारी दल का नायक क्रोपेट, मोशिए लीमैन की एकमात्र कन्या—अपनी प्रणयिनी, रोजेलिन की याद में मग्न हो गया।

मोशिए लीमैन एक बहुत ही लब्धप्रतिष्ठ, उदार, मानी और सरल प्रकृति के मनुष्य थे। वर्षों से सेण्ट पीटर्सबर्ग की जनता, एक बहुत बड़े बहुमत से लगातार उन्हींको अपना लार्ड मेयर चुन रही थी। लार्ड मेयर का बंगला शहर से बाहर एक बड़े बाग में था। उनकी पत्नी का, बरसों हुए, देहांत हो चुका था। उनके दो पुत्र बड़े होकर उच्च सरकारी ओहदों पर काम कर रहे थे। इस बंगले में वह अपनी एकमात्र कन्या रोजेलिन के साथ रहा करते थे। रोजेलिन देवकन्या के समान आकर्षक और चंचल बालिका थी।

आज जो युग अतीत के काले पर्दे की ओट में छिप चुका है, उसकी स्मृति क्रोपेट को अधीर बनाने लगी। क्रोपेट को वे दिन स्मरण हो आए, जब उसके

पिता उसे अपने साथ लेकर मोशिए लीमैन के बंगले पर, उनसे मिलने के लिए जाया करते थे। उन दिनों क्रोपेट १६-१७ बरस का एक तेजस्वी बालक था। मोशिए लीमेन से क्रोपेट के पिता की प्रगाढ़ घनिष्ठता थी। दोनों प्रायः एक दूसरे के यहां आते-जाते रहते थे। सायंकाल को जब वे दोनों प्रौढ़ मित्र अपनी किसी उधेड़बुन में मस्त हो जाते थे, बालक क्रोपेट और बालिका रोज़ेलिन सहन के हरे-भरे निकुंजों में एक साथ खेला करते थे। वहां और कोई नहीं होता था; होता था एक किशोर अवस्था का बालक और एक बारह-तेरह बरस की बालिका। वे दोनों खेलते थे, कूदते थे, तस्वीरें देखते थे, धीरे-धीरे टहलते थे और कभी-कभी खूब तन्मय होकर आपस में बातें भी किया करते थे। वे दोनों अबोध बालक थे, उन्हें कोई दुख नहीं था, कोई चिन्ता नहीं थी, फिर भी उनके पास तन्मय होकर आपस में बातचीत करने के लिए बातों का असीम कोश था। बाग की बेलें, घर के कुत्ते, तालाब की मछलियां, मौसमी फल अभी उनकी बातचीत के कभी न थकाने वाले विषय होते थे। दोनों का हृदय बिलकुल निष्कलंक, अबोध और पवित्र था। फिर भी वे एक दूसरे से असाधारण स्नेह करते थे। उनके इस स्नेह में कोई वासना या भौतिक इच्छा नहीं होती थी।

परन्तु काल के एक मधुर अन्तराल ने धीरे-धीरे इन दोनों किशोर हृदयों को चुपचाप एक दूसरे के साथ सी दिया। मालूम नहीं, यह बात किस दिन हुई। जिस तरह क्रोपेट और रोज़ेलिन अपने अनजान में ही, केवल काल के अवधान से, बालक से नवयुवक बन गए, ठीक उसी तरह इन बालकों का निष्कलंक प्रेम भी न जाने किस मुहूर्त में नवयुवक और नवयुवती का प्रेम बन गया। अब प्रेम के साथ ही साथ वे एक दूसरे को चाहने भी लगे। उनके पारस्परिक व्यवहार में धीरे-धीरे एक खास गम्भीरता का समावेश हो गया।

क्रोपेट की इन मधुर स्मृतियों का सबसे अधिक मार्मिक स्थल था—मोशिए लीमैन के सहन का एक 'ओक' वृक्ष। यह वृक्ष बाग के एक कोने में एक छोटे से स्वच्छ जल-परिपूर्ण तालाब के किनारे पर छाया हुआ था। इस वृक्ष की घनी छाया के नीचे एक बेंच पड़ी रहा करती थी। इस बेंच के साथ क्रोपेट के जीवन के सबसे अधिक मनोरंजक और कोमल अध्याय का इतिहास सम्बन्धित है। इसी बेंच पर बैठे-बैठे एक दिन क्रोपेट और रोज़ेलिन के किशोर हृदयों ने यह अनु-

भव किया था कि अब वे एक दूसरे को चाहने लगे हैं। इस पवित्र ओक की मधुरतम स्मृति के साथ ही साथ क्रोपेट को उस युग की एक पुरानी घटना स्मरण हो आई। वह पुलकित हो उठा। उसका क्रान्तिकारी हृदय देशभक्ति आदि सभी मजबूत से मज़बूत बन्धन तुड़वाकर एक बार तो उस मधुर स्मृति के साथ झनझना ही उठा। उसे वह दिन याद आया—जिस दिन मई मास की एक स्वच्छ रात में दोनों हृदय पहले पहल एक दूसरे से मिले थे। उस समय आसमान से त्रयोदशी का चांद पृथ्वी पर अनन्त चांदनी बरसा रहा था। क्रोपेट और रोज़ेलिन यद्यपि बरसों एक दूसरे के साथ खेले-कूदे थे; परन्तु फिर भी एक तरह से वह दिन ही उनका प्रथम मिलन दिवस था; उस दिन की स्मृति में दोनों ने उस पवित्र ओक के तने पर एक साथ एक तेज़ चाकू से दो अक्षर खोदे थे—'के' और 'आर'। क्रोपेट के मानसिक नेत्रों के सम्मुख ये दोनों अक्षर सौ-सौ गुना बड़े होकर नाचने लगे। वह धीरे से गुनगुनाया—'आर के'।

परन्तु अगले ही क्षण वह सहसा चौंककर उठ खड़ा हुआ। इस तरह से, जैसे कोई मधुर स्वप्न देखते-देखते उसकी नींद उचट गई हो। वह धीरे-धीरे टहलने लगा। भूतों के नगर की तरह उसके वे सब कोमल विचार एक क्षण में ही, न जाने कहां, विलीन हो गए। पहले उसे अपनी स्थिति याद आई—'वह तो रूसी क्रान्तिकारी संघ का नायक है।' इसके बाद उसे अपना कर्तव्य स्मरण आया, 'आज ९ मई का दिन है।'

यह समझा जाता है कि केवल त्याग, दया और तितिक्षामय जीवन के लिए ही साधना की आवश्यकता होती है। परन्तु सच तो यह है कि कभी-कभी हत्या और घात भी एक ऐसी महती साधना का विषय बन जाते हैं कि देवताओं तक के लिए उस ऊंची साधना तक पहुंचना कठिन हो जाता है। आज क्रोपेट इसी महान् साधना की ताक में था। वह छिपे-छिपे, अपने को बचाता हुआ, मोशिए लीमैन के बंगले में प्रविष्ट होना चाहता था, परन्तु उसे इसकी आवश्यकता नहीं थी। एक भरी हुई दुनाली पिस्तौल ओवरकोट में छिपाकर वह धीरे-धीरे सहन के बाग में दाखिल हुआ। बाग में एक माली, रात अधिक हो जाने के कारण फव्वारे का पानी रोकने का प्रयत्न कर रहा था। क्रोपेट को देखकर उसने अदब

से सलाम किया। क्रोपेट चौंक उठा। उससे सलाम का जवाब तक भी नहीं दिया गया। माली ने डरते-डरते पूछा, 'हुजूर ! यदि हुक्म हो तो मालिक को जगा दूं।'

क्रोपेट ने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया। उसका दिल इतने वेग से धड़क रहा था कि यदि कुछ भी अधिक देर तक वह माली के सामने खड़ा रहता तो उसके बेहोश हो जाने में कोई सन्देह नहीं था। अतः फेफड़ों में ताज़ी हवा लेने की इच्छा से बाग की ओर चल दिया। माली एक बार आश्चर्य से क्रोपेट की तरफ देखकर फिर अपने काम में लग गया।

क्रोपेट के पैर, उसके न चाहते हुए भी, जबर्दस्ती उसे ओक वृक्ष के नीचे रखी हुई बेंच की तरफ खींच ले गए। वह बेंच आज भी ठीक उसी स्थान पर रखी हुई थी। क्रोपेट कटे हुए वृक्ष की भांति इस बेंच के ऊपर गिर गया।

आज भी आसमान से चांद टेढ़ा होकर, इस ओक वृक्ष के नीचे बेंच पर लेटे हुए क्रोपेट की तरफ झांक रहा था। परन्तु कुहरे के कारण उसकी सुधा उतनी स्वच्छ नहीं थी। क्रोपेट ने सिर ऊंचाकर उस पवित्र ओक वृक्ष की ओर देखा। आंखें धीरे-धीरे स्वयं अपने लक्ष्य पर आकर टिक गईं। क्रोपेट ने सोचा था कि वे अक्षर तो अब तक मिट ही चुके होंगे, इसलिए अब उस तरफ देख लेने में हर्ज ही क्या है। परन्तु उस गरिमाशाली ओक वृक्ष के तने की ओर देखते ही क्रोपेट को अत्यधिक विस्मय हुआ। उसने देखा कि वे दोनों अक्षर आज भी इस तरह चमक रहे हैं, मानो उन्हें हाल ही में बनाया गया हो। उसी क्षण क्रोपेट यह भी समझ गया कि यह कार्य किसका है। अब वह लेटा न रह सका। ओक का वृक्ष उसे चुम्बक की तरह अपनी तरफ खींचने लगा। अनायास ही क्रोपेट उस वृक्ष तक पहुंच गया। एक बार वह फिर गुनगुनाया, 'आर के'।

क्रोपेट 'आर' का एक हलका-सा चुम्बन लेकर पागलों की तरह वहां से भाग खड़ा हुआ।

पागलों की-सी इस अकल्पनीय दशा में पहुंचकर भी क्रोपेट संभल गया। उसने बड़ी साधना से अपनी सम्पूर्ण शक्ति को हृदय में केन्द्रित किया। इसके बाद अपनी प्रताड़िता, अवमानिता, जीर्णवसना, रूस-माता के दयनीय चित्र का मन ही मन स्मरण कर उसने अपने रिवाल्वर पर हाथ रखा। उसकी निर्बलता दूर हो गई। अपने पिछले जन्म की तरह, वह मोशिए लीमैन की सम्पूर्ण

स्मृतियों को कुछ देर के लिए भूल-सा गया।

शीघ्रता से कदम बढ़ाते हुए वह लार्ड मेयर के संगमरमर के चबूतरे पर सवार हो गया। क्रोपेट स्वयं अपने से डर रहा था; अतः वह कुछ भी देर किए बिना पिस्तौल हाथ में लेकर सीधा बंगले के बड़े हाल में प्रविष्ट हो गया। हाल में गैस का एक बड़ा हण्डा जल रहा था। वहां कोई आदमी नहीं था, केवल हण्डे का पैट्रोलियम वायु के दबाव से ऊपर चढ़ते हुए हलकी-सी परन्तु गम्भीर ध्वनि उत्पन्न कर; हाल की निस्तब्धता को भंग कर रहा था। हाल के उत्कट प्रकाश में पहुंचकर क्रोपेट फिर से शिथिल पड़ गया। इस हाल के दाईं ओर रोज़ेलिन का शयनागार था और बाईं ओर ३-४ कमरे छोड़कर, लार्ड मेयर के सोने का कमरा था। रोज़ेलिन इस समय क्रोपेट से केवल १०-१२ गज के व्यवधान पर ही सो रही है—इस विचार ने क्रोपेट को एकदम क्रियाहीन बना दिया। लकवे के बीमार की तरह उसका सारा शरीर कांपने लगा। उसके माथे से पसीने की धाराएं छूटने लगीं, मुंह लाल हो गया और हृदय बड़े वेग से धड़कने लगा।

अचानक यह क्या दृश्य दिखाई दिया। न मालूम किस कारण, किसी प्रकार की आहट पाए बिना ही, कुमारी रोज़ेलिन अपने सोने की पोशाक में शयनागार से बाहर निकलकर, धीरे-धीरे गैस के उस हण्डे के नीचे आकर खड़ी हो गई। उसके सिर पर कोई आवरण नहीं था। सिर के कोमल, सुनहले बाल, अस्त-व्यस्त होकर इधर-उधर बिखरे हुए थे।

क्रोपेट के शरीर में बिजली घूम गई। बड़ी शीघ्रता से उसने अपना पिस्तौल जेब में डाल लिया। वह एकटक निर्निमेष दृष्टि से रोज़ेलिन की तरफ देखने लगा। रोज़ेलिन की निगाह अभी तक क्रोपेट पर नहीं पड़ी थी, इसपर भी क्रोपेट न तो उसे बुला ही सका और न वहां से हिल सका।

बरसों के बाद अपने दिन-रात की मधुर स्मृति क्रोपेट को, इतनी रात बीत जाने पर, अचानक अपने ही शयनागार के किनारे खड़ा हुआ देखकर, पहले तो रोज़ेलिन अपनी आंखों पर विश्वास ही न कर सकी। इसके बाद वह उन्मत्त की तरह क्रोपेट की तरफ बढ़ी। उसने पुकारा, 'प्रियतम क्रोपेट !'

रोज़ेलिन को अपने इतना निकट पाकर पहले तो क्रोपेट दो-एक कदम पीछे हट गया, इसके बाद आगे बढ़कर उसने रोज़ेलिन का हाथ पकड़ लिया।

बरसों से खोई हुई अपनी निधि पाकर रोज़ेलिन पागल हो उठी। क्रोपेट की आंखों में अपनी आंखें गड़ाए रखकर उसने लड़खड़ाती हुई आवाज़ में पूछा, 'क्रोपेट ! यह क्या ?'

क्रोपेट कोई जवाब नहीं दे सका। रोज़ेलिन का कोमल हाथ ऊपर उठाकर, उसे बड़े स्नेह से चूमते हुए, उसने जल्दी-जल्दी केवल इतना ही कहा, 'प्राणप्यारी रोज़ ! विदाई ! सदा के लिए विदाई !'

इतना कहते ही क्रोपेट रोज़ का हाथ छोड़कर बाहर की तरफ भाग खड़ा हुआ। रोज़ेलिन और भी अधिक अचम्भे में आ गई। क्रोपेट के पीछे-पीछे शीघ्रता से बंगले के बाहर आकर उसने ऊंचे स्वर में पुकारा, 'क्रोपेट ! प्रियतम क्रोपेट !'

परन्तु रोज़ेलिन की चीखती हुई करुण पुकारों का किसीने उत्तर नहीं दिया। उसे केवल इतना ही दिखाई दिया कि चांदनी से ढके हुए बगीचे में से होकर क्रोपेट फाटक की तरफ भागा जा रहा है।

रोज़ेलिन बेचारी समझ नहीं सकी कि यह मामला क्या है। वह बड़ी निराशा और दुख से दूर पर भागी जा रही, क्रोपेट की उस अस्पष्ट मूर्त्ति की ओर देखने लगी। इसी समय उसे अपने फाटक पर से पिस्तौल छूटने की आवाज़ सुनाई दी। रोज़ बिलकुल घबरा गई। वह भयभीत होकर चिल्लाई, 'पापा ! पापा !'

बंगले में से श्वेत दाढ़ी वाली एक भव्य मूर्त्ति बाहर निकली। रोज़ेलिन के कन्धों पर अपना शुभ्र हाथ रखकर उसने पूछा, 'रोज़, क्या है ?'

रोज़ अधीर होकर रोने लगी। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

इस समय तक पिस्तौल छूटने की आवाज़ सुनकर मोशिए लीमैन के बहुत से नौकर भी वहां पहुंच गए थे। लैम्प लेकर वे फाटक के आसपास का स्थान ढूंढने लगे। परन्तु दो एक खाली कारतूसों के अतिरिक्त वे वहां से कुछ पा नहीं सके।

रोज़ेलिन, अभागी रोज़ेलिन, अपने वृद्ध पिता का हाथ पकड़े हुए अन्दर चली गई।

रूसी क्रान्तिकारी दल भयंकर था। उसके कारनामे और भी अधिक

भयंकर थे, परन्तु उसका कोर्ट मार्शल सबसे अधिक भयंकर था। आज दल के इसी कोर्ट मार्शल के सम्मुख अभियुक्त के स्थान पर स्वयं क्रोपेट उपस्थित था। उसके दोनों हाथ पीछे की तरफ बंधे हुए थे। उसका सिर लाल रूमाल से लपेट दिया गया था। मुख्य न्यायाधीश के स्थान पर सरपंच बैठा था और जूरी के स्थान पर अन्य सब नायक।

यह अभियोग भी एक विचित्र अभियोग था। न्यायाधीश और जूरी सब एक स्वर से अभियुक्त को निरपराध बता रहे थे, परन्तु अभियुक्त अपने को अपराधी कहता था। बहुत देर के वाद-विवाद के बाद स्वयं क्रोपेट ने ही संघ के मुखियाओं को, इस प्रकार कोर्ट मार्शल की प्रथा पूरी करने के लिए बाधित किया था।

कोर्ट मार्शल में पूरा मातम छाया हुआ था। अभियोग तो कुछ था ही। जज और जूरी सब अभियुक्त के हाथ की कठपुतली बने हुए थे। वह जैसा कहता था, सब लोग बाधित होकर वही करते थे।

अन्त में अभियुक्त ने न्यायाधीश को आदेश दिया, 'मैंने अवसर पाकर भी संघ की आज्ञा का पालन नहीं किया। संघ का पवित्र नियन्त्रण मैंने जान-बूझकर तोड़ा है, अतः मुझे प्राणदण्ड दीजिए। मैं तैयार हूं।'

सरपंच कुछ नहीं बोला। वह आंखों पर रूमाल रखकर न जाने क्या सोच रहा था। थोड़ी देर के बाद, इस सन्नाटे को तोड़ते हुए, धीरे-धीरे सरपंच ने केवल इतना ही कहा, 'क्रोपेट! उस दिन तुम्हें संघ में प्रविष्ट करते हुए, यदि मैं तुम्हारे साथ वह रियायत करने की भूल न करता तो शायद आज यह बुरा दिन न देखना पड़ता। इसलिए अभियुक्त के साथ ही साथ मैं भी अपने को अपराधी घोषित करता हूं।'

अगले ही क्षण दो बार पिस्तौल छूटने की भयंकर आवाज़ हुई। क्रोपेट और सरपंच दोनों की वीर आत्माएं एक साथ स्वर्ग की ओर कूच कर गईं। सरपंच ने क्रोपेट के अपराध और अपनी भूल, दोनों का एक साथ प्रायश्चित्त कर लिया।

दो पहलू

मीना जहाज़ के डेक पर एक रेलिंग के सहारे झुककर प्रशान्त महासागर के अन्तहीन, खुले, परन्तु विक्षुब्ध वक्षस्थल की ओर एकटक से निहार रही थी। सांझ होने वाली थी। आसमान में घने काले बादल छाए हुए थे और उनके कारण सब ओर अन्धकार, गम्भीरता और सन्नाटा-सा व्याप्त हो गया था। मीना जैसे अत्यन्त एकाग्र होकर इस सीमारहित जलराशि का दूसरा पार देखने का प्रयत्न कर रही थी।

यह एक छोटा-सा जापानी जहाज़ था, जो केवल शिशिर ऋतु के स्वच्छ दिनों में ही प्रशान्त महासागर को पार करने का साहस कर सकता था। अन्यथा उससे समुद्र-तट के आवागमन का काम ही लिया जाता था। आज, शिशिर ऋतु की एक सांझ को, सहसा आकाश में इतने प्रबल तूफान के चिह्न देखकर जहाज़ के मांझी और कप्तान एकाएक भयभीत और चिन्तामग्न हो उठे थे। आकाश के चिह्न अच्छे नहीं थे। आनेवाले तूफान की भीषणता, आकाश के मलिन पर्दे पर, जैसे स्पष्ट अक्षरों में लिखी दिखाई दे रही थी। जहाज़ के कर्मचारी और अधिकारी चुपचाप अपने जहाज़ की रक्षा के उपायों में संलग्न थे और उनके हाव-भाव ने चारों ओर के वातावरण में और भी अधिक गम्भीरता उत्पन्न कर दी थी।

परन्तु मीना का ध्यान उस ओर नहीं था। उसके हृदय में जैसे इस बाहर के तूफान से भी अधिक भीषण एक तूफान पूरे ज़ोरों पर था। चिन्तामग्न अधिकारी, गम्भीर खलासी, हिलता-डुलता जहाज़, मलिन आकाश, तूफान-गर्भ समुद्र, तेज़ हवा, भीषण लहरें, प्रतिक्षण बढ़ता हुआ डरावना अन्धकार, इन सबमें से किसी ओर भी मीना का ध्यान नहीं था। इस समय तो वह अपने प्रियतम कगावा को भी भूल गई थी। जापान के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित कुल

में जन्म लेकर वह अपने मां-बाप को किसी तरह की सूचना दिए बिना अत्यन्त सामान्य वंश के एक युवक के साथ घर से भाग खड़ी हुई है और अब अपनी जन्मभूमि से भी विदा ले रही है, शायद सदा के लिए। पिछले तीन दिनों में उसके मां-बाप उसके लिए कितना अधिक चिन्तित रहे होंगे, इस बात की चिन्ता करने का जैसे उसे आज जाकर अवसर मिला है।

और कच्ची उम्र का एक अनुभवहीन नवयुवक कगावा इस समय बिलकुल ही हतप्रभ-सा बनकर खड़ा था। अपने जीवन में वह पहली बार स्वदेश से बाहर चला था। विदेश जाकर वह क्या करेगा, इसका उसे कुछ भी पता नहीं था। मीना के शक्तिशाली मां-बाप यदि उसका पता पा गए, तो कानून और पुलीस की सहायता से उसे पृथ्वी के किसी भी कोने से वापस पकड़ ला सकते हैं। परन्तु इस तरह की सम्भावनाओं की ओर भी उसका ध्यान नहीं था। पिछले तीन दिनों में मीना उसके पास उसीकी संरक्षकता में रही है, इससे बढ़कर उसे और क्या चाहिए? अपने सन्दिग्ध भविष्य को वह अपने सुखी वर्तमान पर क्यों हावी बनने दे? यहां तक तो सब ठीक था। परन्तु आज, इस सांझ के समय, अचानक मीना को कुछ व्यथित और चिन्तित-सा देखकर पहले तो उसने उसे हंसाने का प्रयत्न किया; परन्तु जब उसे मालूम हो गया कि मीना की यह व्यथा दूर करना उसके काबू से बाहर की बात है, तो वह स्वयं भी अत्यन्त विषण्ण-सा चेहरा बनाकर चुपचाप अपने कमरे में जाकर बैठ रहा।

प्रशान्त महासागर के एक हिस्से में एक अपाहिज शार्क (एक बहुत बड़ी मछली) रहती थी। समुद्र की अन्य दानवकाय शार्कों के मुकाबले में उसका आकार बहुत छोटा और कमज़ोर-सा था। और तो और, सामुद्रिक मछलियों के छोटे-छोटे शिकार भी उसके हाथ नहीं लगते थे। केंचुए और कछुए तक उस शार्क से कुछ अधिक डरने की ज़रूरत नहीं समझते थे। उन्हें मालूम था कि तेज़ी से गोता लगाकर या किसी तरफ को दौड़कर वे उसकी पहुंच से बच सकते हैं। इस दशा में उस शार्क की देखभाल करने का काम अभी तक उसकी मां के जिम्मे ही था। अपनी अपाहिज सन्तान के प्रति मां का हृदय अभी तक वात्सल्य से परिपूर्ण था। वही उसे आहार जुटाती और वही सामुद्रिक आपत्तियों से उसकी रक्षा करती।

अब के पिछली सर्दियों में बहुत ज़ोर की सरदी पड़ने से समुद्र पर बर्फ की बहुत मोटी परत-सी पड़ गई थी। समुद्र के सभी जीव-जन्तु बहुत नीचे जा छिपे। किस्मत से समुद्र के उस भाग में रहनेवाले केंचुओं तथा इसी तरह के अन्य खाद्य जन्तुओं में एक बीमारी फैल जाने से अधिकांश का देहान्त हो गया। सामुद्रिक बड़ी मछलियों को अपना आहार जुटाने में बहुत दिक्कत हो गई। समुद्र के अनेक छोटे-छोटे जन्तु सर्दी के डर से समुद्र-तल के सघन जंगलों में जा छिपे थे, जहां से उन्हें तलाश कर निकालना शार्कों के लिए आसान नहीं था।

सामुद्रिक अकाल के इन दिनों में अपाहिज शार्क की मां को बहुत दिनों तक कुछ भी आहार नहीं मिला। वह स्वयं तो काफी डीलडौल वाली थी। कुछ दिनों तक निराहार रहना उसके लिए कोई बहुत कष्टकर बात न थी; परन्तु अपनी सन्तान का कष्ट उससे देखा नहीं जाता था। अपाहिज शार्क भूख के मारे अधमरी हो गई थी। उसके लिए घूमना-फिरना और भी कठिन हो गया था।

शिशिर की समाप्ति के निकट क्रमशः समुद्र की सतह पर से बर्फ तो पिघल गई; मगर सामुद्रिक अकाल का अन्त नहीं हुआ। समुद्र-तल के जंगलों में रहने वाले जंतुओं को जैसे इस अकाल की भनक-सी मिल गई थी। बहुत दिनों के बाद शरद के स्वच्छ दिनों में समुद्र जल की सतह के ऊपर जाकर कुछ समय के लिए हवा में उछलकर गोता लगाने की प्रबल अभिलाषा को मन में ही दबाए रखकर वे समुद्र-तल पर ही बने रहे। मुफ्त में शार्कों का आहार बनना उन्हें पसंद नहीं था। परिणाम यह हुआ कि मौसम बदल जाने पर भी शार्कों के दुष्काल का अंत न हुआ।

इन्हीं दिनों, एक सायंकाल को, समुद्र की ऊपर की सतह का जल एकाएक अत्यधिक विक्षुब्ध हो उठा। जैसे वहां पर्वत-शिखरों की-सी लहरें एक ओर से दूसरी ओर को दौड़ी फिर रही हों। अर्धमूर्छित-सी दशा में पड़ी अपाहिज मछली तथा उसकी मां ने इस भयंकर शब्द को सुना। बेटी ने बहुत अधिक घबराकर कहा, 'मां, यह इस मौसम में हवा का इतना बड़ा तूफान कहां से आ गया!'

मां ने कहा, 'अच्छा ही तो है बेटी! इन तूफानी लहरों के साथ दूर-दूर के केंचुए खुद-ब-खुद यहां पहुंच जाएंगे कि नहीं!'

उधर तूफान का वेग क्षण-प्रतिक्षण बढ़ता ही गया और चारों ओर घोर अंधकार व्याप्त हो जाने के साथ ही साथ जहाज़ के कप्तान ने घोषित कर दिया कि अब जहाज़ के बचने की कोई सूरत बाकी नहीं रही। उस डूब रहे छोटे-से जहाज़ पर भीषण आतंक छा गया। अधिकांश यात्री हिम्मत वाले थे। वे कप्तान के पास एकत्र होकर चुपचाप उसके आदेश की प्रतीक्षा करने लगे; परन्तु जहाज़ पर के स्त्री और बच्चे चीत्कार कर रो उठे। उनका वह करुण और भीत चीत्कार तूफान के प्रबल गर्जन की तुलना में एकदम अश्राव्य और व्यर्थ-सा था।

उस हिलते-डुलते जहाज़ ने एक तेज सीटी दी। यह सीटी उस डूबते हुए जहाज़ का जैसे अंतिम चीत्कार थी। जहाज़ के सभी मांझी और यात्री एक ही जगह एकत्र हो गए। सभी ने कार्क की पेटियां अपनी छाती के नीचे बांध ली थीं। जहाज़ पर सिर्फ दो ही किश्तियां थीं। इन दोनों किश्तियों पर जहाज़ के सभी यात्री और मांझी पूरे तो आ सकते थे; परन्तु ये अत्यन्त क्षुद्र-सी किश्तियां समुद्र के इस महा भयंकर तूफ़ान का मुकाबला कर सकेंगी, इसकी आशा किसी-को भी नहीं थी। तो भी एक किश्ती पर जहाज़ के सभी यात्रियों को एक साथ सवार कर उसे अन्धकार में समुद्र की सतह पर उतार दिया गया। मीना और कगावा दोनों ही इस किश्ती पर सवार थे। किश्ती के समुद्र में उतरते ही एक भीषण लहर आई और क्षण भर में उसे जहाज़ से सैकड़ों गज़ दूर भगा ले गई। सभी यात्री सहसा चीत्कार कर उठे।

जहाज़ के कप्तान को स्पष्ट दिखाई दे गया कि किश्ती का भविष्य जहाज़ की अपेक्षा भी अधिक संदिग्ध है। उसने मांझियों को आज्ञा दी कि वे दूसरी किश्ती पर सवार होकर जहाज़ से कुछ दूर पहुंचते ही समुद्र में कूद जाएं, ताकि किश्ती के साथ ही साथ वे भी समुद्र-गर्भ में न पहुंच जाएं।

कुछ ही देर के बाद सम्पूर्ण आकाश में बिजली की एक टेढ़ी-मेढ़ी रेखा-सी घूम गई। क्षण भर के लिए जैसे सम्पूर्ण समुद्र आलोकित-सा हो उठा। इस प्रकाश में दिखाई दिया कि एक ओर तो वह छोटा-सा जापानी जहाज़ जलमग्न हो रहा है और दूसरी ओर, कुछ दूरी पर, दो किश्तियां जैसे प्रतिक्षण डूबा ही चाहती हैं।

बिजली की तेज़ चमक के बाद समुद्र का वह प्रांत जैसे और भी घने

अंधकार में मग्न हो गया, और उसी क्षरण मूसलाधार वर्षा शुरू हो गई। वर्षा की बौछार ने सामुद्रिक हवा को कुछ भारी-सा बना दिया। परिणाम यह हुआ कि तूफान का वेग शिथिल होने लगा; परन्तु यह शिथिल पड़ता हुआ तूफान भी बुझते हुए दीए की अंतिम लौ के समान एक बार भीषण रूप में प्रकट हुआ और दोनों नौकाओं को जलमग्न करता गया।

नवयुवती मीना अत्यधिक भयभीत और अर्ध मूर्छित दशा में कगावा की छाती से चिपटी-सी बैठी थी। उनकी छोटी-सी नाव जैसे कभी पर्वत-शिखर पर चढ़ जाती और कभी खड्ड में जा गिरती। मीना को दोनों बाहुओं के अंदर छिपाकर कगावा सान्त्वना के अस्पष्ट-से शब्द बड़ी शीघ्रता से गुनगुनाता जा रहा था। इसी समय बिजली की तेज़ चमक से सहसा सभी कुछ प्रकाशमान हो उठा। इसके बाद चारों ओर पहले की अपेक्षा भी अधिक घना अंधकार व्याप्त हो गया। तभी वर्षा की तेज़ बौछार पड़ने लगी। कगावा ने प्रयत्नपूर्वक मीना के अंग-प्रत्यंग को अपनी सम्पूर्ण देह से जैसे ढंक-सा दिया। परन्तु उसी क्षरण उनकी नाव मानो एक पर्वत-शिखर से टकराकर उलट गई। इस चोट से कगावा और मीना दोनों एक साथ दस-पन्द्रह हाथ उछलकर समुद्र में जा गिरे।

वहां पानी बहुत शीतल था। रात का घना अंधकार। शिशिर ऋतु का हाल ही में पिघला हुआ हिम-शीतल समुद्र-जल। तूफान की पर्वतकाय भीषण लहरें और उसपर आसमान से तेज़ वर्षा की बौछार। मीना तो एकदम निस्संज्ञ-सी हो गई; परन्तु कगावा बड़े प्रयत्नपूर्वक उसे थामे रखकर समुद्र की सतह पर तैरने लगा। सिर्फ तैरना ही उसका उद्देश्य था। तैरकर वह क्या करेगा, किधर जाएगा, इस सम्बन्ध में उसे कुछ भी ज्ञान नहीं था। सिर्फ तैरते रहने और मीना का साथ न छोड़ने के अतिरिक्त उस वक्त उसका और कोई भी ध्येय या लक्ष्य नहीं था।

मालूम नहीं, वे कब तक इसी तरह तैरते रहे। मालूम नहीं, कब तक मीना की बांह कगावा के गले में शिथिल-सा बंधन दिए पड़ी रही। क्रमशः तूफान रुक गया। समुद्र का जल शांत-सा हो गया और आसमान में तारे निकल आए। न जाने कितनी देर के बाद पूरब के आसमान में क्षीण कला वाला चांद प्रकाशित हो गया और अत्यन्त थक गए कगावा को आसपास का सभी कुछ जैसे साफ-साफ दीख पड़ने लगा।

प्रभात हो जाने से कुछ ही समय पहले कगावा को एक अत्यन्त प्रबल खिंचावट-सी अनुभव हुई। उसने भरसक कोशिश की; मगर वह अपने को उस खिंचाव से बचा नहीं सका। एक विशालकाय शार्क कगावा और मीना को एक साथ पकड़कर समुद्र के भीतर की ओर खींच ले गई।

मीना की अत्यन्त कोमल देह को उदरस्थ कर लेने के बाद अपाहिज शार्क ने जैसे परितृप्ति की सांस लेते हुए, अपनी पैनी दाढ़ों में फंसी हुई कार्क की पेटी के टुकड़ों को बाहर थूकते-थूकते अपनी मां से कहा, 'मां, परमात्मा का धन्यवाद है कि आज उसने हमें यह स्वादिष्टतम भोजन खाने को दिया; परन्तु उस नरम-नरम, सुचिक्कण और मांसल जीव के ऊपर यह किस फोकी-फोकी-सी चीज़ का आवरण था? चमड़ा या हड्डी तो ऐसे बेस्वाद नहीं होते!'

भय का राज्य

नदीतट पर

मिदनापुर जिले में महीमपुर नाम के एक गांव के नज़दीक एक छोटी-सी नदी बहती है। साल में अधिकतर यह नदी क्षीण कलेवरा रहती है, परन्तु कभी-कभी, मसन्दन बरसात में, गंदला पानी किनारे तक भरकर इस तरह बहने लगता है, जैसे किसी सीमित स्थान की मिट्टी ही पिघलकर भाग चली हो। नदी के किनारे घने-घने पेड़ छाए हुए हैं। सरकंडे, घास, बथुआ आदि इतनी अधिकता से उगे हुए हैं कि उनकी घनी हरियावल के कारण नदी का तट बहुत सुहावना हो उठा है।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन के अभागे दिनों की एक बरसात का ज़िक्र है। नदी पूरी तरह उमड़कर बह रही थी। आस्मान में बादल के सफेद टुकड़े छितराए हुए थे। धूप और छाया कबड्डी खेल रही थीं—कभी घाम और कभी सुहावनी बदली। दोपहर ढल चुकी थी। नदी की लहरें एक दूसरे से लड़-झगड़कर शोर मचा रही थीं। प्रकृति के उस तीव्र और निरन्तर कोलाहल में भी एक विशेष प्रकार के सन्नाटे की उत्पत्ति हो रही थी। इसी समय दस-ग्यारह वर्ष की एक बालिका दो गायों को हांकती हुई नदीतट पर पहुंची। बालिका के वस्त्र विल्कुल सादे होते हुए भी मैले नहीं हैं। उसके गोरे मुख पर एक ऐसा स्वाभाविक उल्लास है, जो देखने वालों को हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। बालिका जिस समय नदीतट पर पहुंची, उस समय छांह ने धूप पर पाला चढ़ाया हुआ था। आकाश में बादल, चारों ओर बीच-बीच में जंगली फूलों का स्वाभाविक शृंगार किए हुए घनी हरियाली और सामने वेग से बहता हुआ पानी। बालिका का दिल खुश हो गया। वह तन्मय होकर ऊंची आवाज़ से कोई गीत गाने लगी।

इसी समय अचानक आकर किसीने उसकी आंखें बन्द कर लीं। बालिका चौंक पड़ी। परन्तु शीघ्र ही संभलकर अपनी आंखें छुड़ाने का व्यर्थ प्रयत्न करती हुई बोली, 'हट, हट, छोड़ दे ! कौन है ?'

दो-चार क्षण तक बालिका खूब परेशान रही। इसके बाद ऊंची परन्तु मीठी हंसी से नदी का वह रमणीक तट पुलकित हो उठा। यह हंसी सुनकर बालिका की रही-सही घबराहट भी दूर हो गई। वह गम्भीर बनकर बोल उठी, 'हट नालायक अज्जी।'

आंखें बन्द करने वाला अजित नाम का एक बालक था। उसकी अर्थहीन होने पर भी कवितामय हंसी अभी तक जारी थी। उसने बालिका की आंखें छोड़ दीं। बालिका भी अब धीरे-धीरे मुस्कराने लगी।

इसी समय अजित ने खूब महीन काते गए सूत की एक माला अपनी धोती की फेंट से बाहर निकाली। माला के सूत का रंग लाल था। उसमें बड़ी कारीगरी के साथ जगह-जगह सुन्दर गांठें दी हुई थीं। बालक ने वह माला अपने हाथ में लेकर कहा, 'ले मोहिनी ! यह माला तेरे लिए लाया हूं।'

मोहिनी माला को देखकर जैसे गम्भीर बन गई। उसने कहा, 'अज्जी ! तुम बिल्कुल निकम्मे हो। तुम्हारी मां दिन भर मेहनत करके जो सूत कातती है, उसे तुम इस तरह खराब करते हो। तुम्हारी माता जी तो अब बूढ़ी हो गई, उन्हें काम में मदद क्यों नहीं देते ?'

बालक अब की हंसा नहीं। मोहिनी से वह चार-पांच साल बड़ा है। दोनों दिन-रात के साथी हैं। अजित पर यदि मोहिनी गम्भीरतापूर्वक निठल्ला होने का अभियोग लगाती है, तो वह उसे बरदाश्त कैसे करे। उसने बड़ी शान्ति से, उस शान्ति से जिसका बचपन में न होना ही अच्छा है, कहा, 'नहीं, यह सूत मां के हाथों का काता हुआ नहीं, मेरे ही हाथों का काता हुआ है। मां ने तो सिर्फ इस-पर गांठें ही दी हैं।'

मोहिनी खुश हो गई। अजित अपने पेशे में अभी से इतना दक्ष हो गया होगा, उसे यह उम्मीद नहीं थी। मोहिनी चुप हो गई। तब अजित ने चुपचाप वह माला उसके गले में डाल दी। मोहिनी और अजित दोनों मुस्करा उठे। उनकी वह मुस्कराहट बिल्कुल अबोध और पवित्र थी, इसका प्रमाण यह था

कि थोड़ी देर हो जाने पर भी यह मुस्कराहट लज्जा के रूप में परिणत नहीं हुई ।

ठीक इसी समय नदी की वेगवती लहरों पर तीन मुरगाबियां तैरती हुई दिखाई दीं । इनमें एक माता थी, और दो उसके बच्चे । माता आगे-आगे थी और बच्चे उसके पीछे । मां जिस विह्वलता से बार-बार आवाज़ करके और अपनी गर्दन मोड़कर पीछे की ओर आते हुए अपने बच्चों की तरफ देखती थी, उसमें व्यग्रता मूर्तिमान होकर बसी थी, जैसे वह अपने बच्चों को पानी चीरकर तैरते आने के लिए बढ़ावा दे रही हो । मोहिनी और अजित, दोनों चुपचाप इस दृश्य को देखने लगे । यहां तक कि नदी के किनारे हरी-हरी घास चरती हुई दोनों गायों का ध्यान भी इन मुरगाबियों की तरफ आकृष्ट हो गया । ये मुरगाबियां नदी के दूसरे पार से इस पार आ रही थीं । क्रमशः माता किनारे के निकट पहुंचकर पानी के बाहर निकल आई । दोनों बच्चे अभी पानी में ही थे । मां बड़ी बेचैनी के साथ उन्हें देखने लगी । धीरे-धीरे वे दोनों बच्चे भी किनारे के निकट पहुंच गए ।

छप् ! छप् ! छप् !—दनादन बंदूक की तीन गोलियां किनारे पर खड़ी हुई उस मां मुर्गाबी पर पड़ीं । उसे चौंकने का मौका भी न मिला और वह मर गई । उसके दोनों बच्चे अभी तक पानी से बाहर न निकल पाए थे । वे भय के मारे चीं-चीं करके रो पड़े । पानी की लहरें उन रोते हुए बच्चों को अपने साथ नीचे की ओर बहाकर ले जाने लगीं ।

अजित और मोहिनी ने अपने छोटे-से जीवन में आज तक इतनी ऊंची आवाज कभी नहीं सुनी थी । दोनों चौंक पड़े । बालिका तो इतनी अधिक भयभीत हो गई कि उसके मुंह से आवाज़ तक निकलना भी असंभव हो गया । इसी वक्त दूर पर, जंगल की घनी हरियाली में से निकलती हुई चार-पांच प्रेत-सी मूर्तियों को देखकर अजित भय से चिल्ला उठा, 'भूत !'

मोहिनी ने भी पीछे की तरफ मुड़कर देखा । सचमुच पश्चिम की ओर बांस के बहुत-से घने-घने झुरमुटों की ओट से चार-पांच प्रेत मूर्त्तियां-सी निकलकर इसी तरफ चली आ रही थीं । मुंह को छोड़कर इनका सारा शरीर बिल्कुल ढंका हुआ था । घुटनों से नीचे का भाग चमकीले चमड़े से आवृत था । शरीर

टोकरी के नीचे जो चेहरा था, वह इतना अधिक चिट्टा था कि उसे अचानक देखकर उस समय के बंगाली उसे कोई बीमारी ही समझते। इन सभी के हाथों में लम्बी-लम्बी बन्दूकें थीं। ये प्रेत-मूर्तियां बड़ी शीघ्रता से उस मृत मुरगाबी की तरफ बढ़ी आ रही थीं। मोहिनी यह भयंकर दृश्य देखकर संज्ञाहीन-सी हो गई। अजित भी कम भयभीत नहीं था, फिर भी वह बेहोश नहीं हुआ था।

अचानक अजित ने जैसे इन प्रेतों को पहचान लिया। अपने मुंह को बेहोश मोहिनी के कानों के अत्यधिक निकट ले जाकर उसने धीरे से कहा, 'मोहनी! उठो, उठो। ये भूत नहीं, फिरंगी हैं!'

फिरंगी लोगों का वर्णन अजित गांव के लोगों से कई बार सुन चुका था, परन्तु उन्हें देखने का अवसर उसे कभी नहीं मिला था। मोहिनी की चेतना धीरे-धीरे जागृत हो गई। इतने में वे चारों पांचों फिरंगी मुरगाबी लिए हुए उसी स्थान पर आ पहुंचे। उन्होंने अजित और मोहिनी को घेर लिया। दोनों बालक चुपचाप बैठे रहे। ये फिरंगी इन दोनों बालकों को थोड़ी देर तक इस तरह देखते रहे, जैसे वे दोनों कोई निर्जीव बुत हों। फिरंगी हंस-हंसकर इन बालकों के सम्बन्ध में न जाने कैसी और क्या आलोचना करते रहे। उन्होंने जब देखा कि ये बालक कुछ भी नहीं बोलते, तो उन उजड्ड फिरंगियों ने मुरगाबी के मृत शरीर से बहते हुए खून की कुछ बूंदें इन बालकों पर टपका दीं। दोनों बालक भय से चीख उठे। फिरंगियों ने इसपर एक कहकहा लगाया और अपना शिकार लिए हुए पूर्व की ओर बढ़ गए।

अजित और मोहनी उठे। वे अभी तक कांप रहे थे। नदी के जल में कपड़े धो और स्नान करके उन्होंने अपनी गायों की सुध ली। फिरंगियों की बन्दूक की भयंकर आवाज़ सुनकर दोनों गउएं जंगल में भाग गई थीं। उन्हें ढूंढ़कर दोनों ने गांव की राह ली। मोहिनी अपने घर को चली गई और अजित अपने घर।

शाही फरमान

अजित के न तो बाप था, न कोई भाई और न बहिन, सिर्फ मां थी; वह भी बिल्कुल बुढ़िया—लाठी टेककर चलती थी। अजित का गांव महीमपुर

था। महीमपुर में अधिकांश घर जुलाहों के थे। अजित के पुरखे भी जुलाहे के काम किया करते थे। उसके पिता के देहान्त हो जाने के बाद से उसकी मां अकेली ही यह पेशा करके उसका तथा अपना पेट पालती थी। अजित की मां बहुत महीन सूत कातती थी और बहुत सुन्दर बुनती भी थी। उसकी काम की मांग थी। अतः मां-बेटे दोनों खुशहाल थे। उनकी आवश्यकताएं भी बहुत सीमित थी। वे न किसीके लेने में थे और न किसीके देने में। कुटिया के आंगन में काफी ज़मीन थी। बरामदे में सरकंडे और तागों से बनी एक खड्डी लगी थी। रुई, सूत, कूचियां आदि पास के छोटे-से कमरे में रखी रहती थीं। यही उनका वर्कशाप था। आंगन में जो जमीन थी, उसमें तरकारियां और मौसमी बेलें बो दी जाती थीं। बुढ़िया काम तो थोड़ा करती थी, मगर उसके काम की कद्र थी। अजित अभी बालक ही था, फिर भी उससे बुढ़िया को अपने काम में बहुत मदद मिलती थी। बूढ़ी मां को यकीन था कि एक दिन उसका अजित इतना अच्छा जुलाहा बनेगा कि मुल्क भर में उसके नाम को रोशन कर देगा।

सांझ के समय बुढ़िया आंगन में करेले की बेलों की जड़ में से घास खोद रही थी कि अजित गीले कपड़े पहने हुए घर में दाखिल हुआ। उसकी घबराहट अभी तक दूर नहीं हुई थी। मां ने उसके गीले कपड़े और उदास चेहरा देखते ही पूछा, 'क्यों अज्जी ! क्या बात है ?'

अजित ने घबराई हुई आवाज़ में कहा, 'मां ! गांव में फिरंगी आए हैं !'

बुढ़िया ने सुन रखा था कि फिरंगी बच्चों को चुरा ले जाते हैं, इसलिए वह भी घबरा गई। उसने पूछा, 'वे हैं किस जगह ?'

अजित ने नदीतट वाली सारी घटना मां को सुना दी। बुढ़िया 'हूं हूं' करके सारी कहानी सुनती गई, इससे अधिक वह कर भी क्या सकती थी। अचानक बुढ़िया को ख्याल आया कि गांव के मुखिया ने उसे जो दुपट्टा बुनने दिया था, वह इस समय तक उसके घर पहुंच जाना चाहिए। कोई और दिन होता, तो बुढ़िया अजित के हाथ ही वह दुपट्टा मुखिया के घर भेज देती, मगर आज तो गांव में फिरंगी आए हुए हैं। दुपट्टा कंधे पर डालकर एक हाथ से लाठी टेकती हुई बुढ़िया अजित के साथ गांव के मुखिया के घर की तरफ चली।

गांव के मुखिया का नाम था ताराचन्द मुखोपाध्याय। उन दिनों के बंगाली

चट्टोपाध्याय को चैटर्जी, मुखोपाध्याय को मुकर्जी, वसु को बोस, वन्द्योपाध्याय को बनर्जी और ठाकुर को टैगोर कहने में आत्मसम्मान अनुभव करना नहीं सीखे थे। ताराचन्द महाशय गांव में मुखोपाध्याय के नाम से प्रसिद्ध थे। अजित की मां जब मुखोपाध्याय के घर पहुंची, तो उसने देखा कि वहां बड़ी भीड़ जमा है। पूछने पर मालूम हुआ कि शाही फरमान लेकर १०-१५ फिरंगी महीमपुर में आए हुए हैं। वे अपने साथ जो फरमान लाए हैं, उसमें लिखा है कि भविष्य में महीमपुर की सारी मालगुजारी ये फिरंगी लोग ही वसूल किया करेंगे और गांव भर के जुलाहों से ये फिरंगी जिस प्रकार चाहें, काम ले सकेंगे।

जिस किसी तरह भीड़ में घुसकर बुढ़िया ने देखा कि मुखोपाध्याय के नजदीक, एक लकड़ी के तख्त पर पांच-सात फिरंगी बैठे हैं, मुखोपाध्याय बिल्कुल घबराए हुए हैं और ये फिरंगी कहकहा लगा कर हंस रहे हैं। गांव के लोगों में कुहराम मचा हुआ था। सभी इस परिवर्तन से दुखी थे, मगर वे सब के सब भेडों के गिरोह की तरह असहाय और कमज़ोर थे।

महीमपुर का शासन, व्यावहारिक रूप में, नवाब के हाथों से निकलकर कम्पनी के हाथ में चला गया और गांव वाले अपना यह भाग्य परिवर्तन उसी तरह देखते रह गए, जिस तरह जानवर एक खूटे से दूसरे खूंटे में बांध दिए जाते हैं।

कोठरी में

बाहर से आवाज़ आई, 'अजित ! अजित !'

अजित जेल की छोटी-सी कोठरी में एक चटाई पर लेटा ऊंघ रहा था। यह पुकार सुनते ही वह चौंककर जाग उठा। उसके मुंह से अनायास निकल गया, 'हूं ! कौन ?'

आवाज़ फिर से आई, 'अजित ! अजित ! उठो। मैं तुम्हारे लिए भोजन लाई हूं।'

अजित आवाज़ से पहिचान गया कि मोहनी आई है। यह जानकर पहले तो उसे बड़ी खुशी हुई, परन्तु फिर उसे ख्याल आया कि यदि कोई पहरेदार इस समय यहां आ जाए तो मोहिनी की बुरी दशा होगी। इसलिए उसने बड़ी गम्भीरता से कहा, 'मोहिनी, तुम यहां से भाग जाओ।'

मोहिनी धीरे से हंस पड़ी। उसने कहा, 'पहरेदार सो रहे हैं। तुम अपनी

कोठरी के झरोखे में से यह भात ले लो। कहां है तुम्हारा झरोखा ?'

अजित ने कहा, 'दक्षिण की दीवार में, ऊपर की तरफ।'

थोड़ी देर में वहां ढाक के एक बड़े पत्ते पर धरा हुआ भात और उसपर मक्खन की एक टिकिया रख दी गई। अजित ने यह सामान अन्दर सरका लिया।

मोहिनी ने फिर पूछा, यहां तुम्हें नींद आती है या नहीं ?'

अजित ने बड़े कष्ट से जवाब दिया, 'अन्दर असंख्य खटमल और मच्छर हैं। मेरी सारी पीठ चलनी हो गई है।'

बालिका की आंखों में आंसू भर आए। परन्तु कहीं अजित को उसके रोने की बात मालूम न पड़ जाए, इस कारण ज़बरदस्ती हंसकर बालिका ने कहा, 'अच्छा हुआ, तुम्हारे शरीर में जो इतना मांस भरा है वह और किस काम आता।'

अजित मोहिनी की यह बात सुनकर जोश में आ गया। उसने कहा, 'चार दिन और ठहर जाओ बच्चू, फिर तुम्हारी शरारतों की पूरी सज़ा दूंगा।'

मोहिनी ने याद दिलाया, 'धीरे-धीरे बोलो अजित ! कहीं पहरेदार न जग जाएं।'

अजित जैसे थोड़ी देर के लिए यह बात भूल गया था कि वह कोठरी में बन्द है। मोहिनी के मुंह से पहरेदार का नाम सुनकर वह सहम गया। उसने धीरे से कहा, 'मोहिनी, भाग जाओ, ये लोग बड़े खूंखार हैं।'

बाहर से बहुत ही कोमल आवाज़ आई, 'अजित !'

अन्दर से उसी स्वर में जवाब मिला, 'मोहिनी !'

इसके बाद फिर सन्नाटा छा गया। अजित समझ गया कि मोहिनी चली गई।

अभी रात का दूसरा ही पहर था। आसमान में चांदनी खिली हुई थी, फिर भी कोठरी में अन्धकार था। सिर्फ दक्षिण दिशा के छोटे-से झरोखे में चांद की थोड़ी-सी दिव्य किरणें कोठरी में पहुंच रही थीं। इसी अधूरे प्रकाश की सहायता से अजित मक्खन मिला-मिलाकर भात खाने लगा। उसे बहुत ज़ोर की भूख लग रही थी।

अजित को कोठरी में बन्द हुए आज तीसरी रात थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी

के कर्मचारियों द्वारा किए गए काम को वह नियत समय में पूरा नहीं कर सका था, इसी कारण उसे एक सप्ताह के लिए कोठरी की सजा दी गई थी। वह अभी सोलह साल का बालक ही था, परन्तु ज़माने की ठोकरें खाकर काफी समझदार बन गया था। कम्पनी के कारिंदे ने उसकी मां के जिम्मे उसकी कार्यशक्ति से बहुत अधिक काम लगा दिया था। इसी कारण बालक होते हुए भी अजित ने जानबूझकर माता का काम अपने जिम्मे ले लिया था। कोशिश करके उसने कारिंदे के कागज़ों में से मां का नाम कटवाकर अपना नाम लिखवा दिया था, ताकि काम पूरा न होने के कारण यदि कोठरी के कैदी बनने की नौबत आए, जिसकी उन्हें पूरी सम्भावना थी, तो वह सजा उसकी बुढ़िया मां को न भुगतनी पड़े। मां बूढ़ी थी और पुत्र था अनुभवहीन बालक। इसलिए कम्पनी के इस नए बन्दोबस्त के पहले महीने की समाप्ति पर ही जिन अभागे जुलाहों को कोठरी की कैद भुगतनी पड़ी, उनमें बालक अजित भी शामिल था।

भात खाकर अजित में कुछ जान आई। कम्पनी के नृशंस कर्मचारी कोठरी वाले कैदियों की दो-दो और तीन-तीन दिनों तक कुछ भी खबर नहीं लिया करते थे, इस कारण अभी तक अजित भूख से बहुत व्याकुल था। भात खाकर वह उस आठ फुट लम्बी और छः फुट चौड़ी कोठरी में धीरे-धीरे टहलने लगा। अन्दर सख्त गर्मी थी। हवा आने का रास्ता भी सिर्फ वह दक्षिण दिशा का ज़रा-सा झरोखा ही था। कोठरी के अन्दर सील के कारण बदबू भर रही थी। अन्धकार में मच्छरों की असंख्य सेना मानो प्रयाण का बैंड बजा रही थी। मगर इस समय मोहिनी से बातचीत करके अजित अपनी सब तकलीफें भूल-सा गया था। थोड़ी देर तक इसी तरह टहलते रहने के बाद वह चादर ओढ़कर चटाई पर सो गया। दो रातों का जगा था, इससे खूब गहरी नींद लगी।

प्रातःकाल पास की कोठरी से खूब चिल्ला-चिल्लाकर रोने की आवाज़ सुनकर अजित हड़बड़ाकर जाग पड़ा। अजित एकदम कूदकर खड़ा हो गया। वह समझ गया कि कोठरियों का जमादार पास की कोठरी वाले जुलाहे पर बेंत जड़ रहा है। अजित घबरा गया। उसे सन्देह होने लगा कि कहीं रात को मोहिनी के यहां आने का समाचार किसीको मालूम तो नहीं हो गया। इसी समय अजित का ध्यान कोठरी के कोने में पड़े मोहिनी द्वारा लाए गए ढाक के उस पत्ते पर पड़ा। उसे भय हुआ कि कहीं इसी पत्ते के कारण मेरी जान आफत में न पड़

जाए। यह विचार आते ही उसने उस पत्ते को उठा लिया और जल्दी-जल्दी चबाकर खा गया।

थोड़ी देर में अजित की कोठरी का दरवाज़ा भी खोला गया। जमादारों के साथ आज एक फिरंगी भी था। उसके हाथ में चमड़े का एक ज़बरदस्त कोड़ा था। अजित कोठरी से बाहर लाया गया। उसने देखा कि पास की कोठरी का जुलाहा कोड़ों की मार से अधमरा-सा होकर कराह रहा है। फिरंगी ने देखा कि अजित की उम्र अभी थोड़ी है, इस कारण उसने उसे दो-एक चपतें लगाकर ही छोड़ दिया। अजित को ताकीद कर दी गई कि भविष्य में यदि कभी वह अपना काम पूरा न करेगा, तो यह उसके लिए ठीक न होगा। इस धमकी के साथ उसे घर चले जाने की आज्ञा मिल गई।

वर्कशाप की उत्पत्ति

मिदनापुर जिले में कम्पनी का जो एजेंट उन दिनों काम कर रहा था, उसका नाम था, मिस्टर फाक्स। यह आदमी सचमुच लोमड़ी जैसा मक्कार और भेड़िए जैसा क्रूर था। फाक्स ने मिदनापुर के जुलाहों से काम लेने का एक और नृशसतम उपाय सोच निकाला। उसने प्रत्येक गांव में एक-एक वर्कशाप बनवाया। पहले जुलाहों को कुछ पेशगी देकर महीने भर का काम उनके सिपुर्द कर दिया जाता था। यह काम पूरा न करने वालों को कोठरी की सज़ा दी जाती थी। अब फाक्स ने यह नियम बना दिया कि प्रत्येक जुलाहा नियमित रूप से इसी वर्कशाप में काम किया करे। उन्हें अपने घर में काम करने की आज्ञा नहीं थी। जुलाहों से इन कारखानों में बारह घंटे काम लिया जाता था। दोपहर को भोजन के लिए सिर्फ एक घंटे का अवकाश मिलता था। इसी एक घंटे में अनेक जुलाहे भोजन पकाते भी थे, और खाते भी थे। केवल थोड़े-से त्योहारों को छोड़कर ये कारखाने कभी बन्द नहीं होते थे। जुलाहों से इतनी मेहनत करवाकर भी उन्हें प्रतिदिन केवल तीन पैसे से लेकर चार आने तक मजदूरी दी जाती थी।

अभागे अजित को भी कम्पनी के इस नए प्रबन्ध का शिकार होना पड़ा। उसकी माता के घर में जो खड्डी लगी थी, उसे तोड़-फोड़ डाला गया। कपड़ा

गन्ने की रस्सियां थामकर उन्हें धीमे चलने को लाचार करती है।

नदी से मोहिनी के घर की तरफ जो राह जाती है, उसमें एक मोड़ पर पूर्व दिशा से एक और पगडंडी आकर मिलती है। मोहिनी इस पगडंडी के मुहाने पर दो-चार मिनट अवश्य सुस्ताती है। व्याकुल गायों की रस्सी को अपने हाथ में थामे हुए मोहिनी प्रायः प्रतिदिन थकावट से झुके हुए शरीर तथा पीले चेहरे वाले जुलाहों को इसी पगडंडी पर से गांव की तरफ आते हुए देखती है। इनमें कभी-कभी दूर से, कारखाने से अकेला आता हुआ, अजित भी उसे दिखाई दे जाता है। मोहिनी रोज़ देखती है कि अजित दिन-ब-दिन कमज़ोर होता चला जा रहा है। अजित मोहिनी के निकट आकर सदैव मुस्करा तो देता है, मगर मोहिनी की बड़ी-बड़ी आंखों में उसने कभी गौर से नहीं देखा। यदि वह कभी उनमें ध्यान से झांकता, तो उसे स्पष्ट रूप से दिखाई दे जाता कि मोहिनी नदी-तट से पगडंडी के इस मुहाने तक निरन्तर रोती हुई आई है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अजित को वर्कशाप में कोड़ों की मार खानी पड़ती है। वर्कशाप से लौटते हुए, वह कोड़ों की मार से पड़े पीठ पर के चिह्नों को अपनी पुरानी चादर से ढांककर, उन्हें मोहिनी की नज़र से छिपाने का निष्फल प्रयत्न करता है। मोहिनी की अन्तर्भेदिनी दृष्टि से यह बात छिपी नहीं रहती।

यह बात नहीं कि अब उन दोनों का एक दूसरे के घर आना-जाना बन्द हो गया हो। जब मौका मिलता है, वे दोनों एक दूसरे के घर अवश्य आते-जाते हैं। फिर भी मोहिनी को सांझ के अंधेरे में वर्कशाप से चुपचाप और धीरे-धीरे लौटते हुए अजित को देखना बहुत अधिक पसन्द है। वह यह भी जानती है कि अजित के लिए इससे बड़ा और कोई पुरस्कार या आश्वासन उसके पास, उसीके पास क्या, किसीके पास भी नहीं है। दिन भर हड्डियां तोड़कर मेहनत करने के बाद जब सांझ के समय मोहिनी पर अजित की नज़र पड़ती है तो उसकी सम्पूर्ण थकावट स्वयं शान्त हो जाती है।

होली का त्यौहार

होली का दिन था। कारखाने में आज भी सिर्फ आधे दिन की ही छुट्टी थी। वर्कशाप आज मध्याह्न को एक बजे के बाद खुलना था। महीमपुर में

आज भी होली मनाई गई। होली मनाना तो परलोक के लिए भी आवश्यक है न, फिर भला हिन्दू लोग यह त्यौहार क्यों न मनाते। महीनों के बाद आज सवेरे ही से अजित नदीतट पर चला गया। वहां उसने एक पीपे में कीचड़ वाला पानी भर उसमें गहरा लाल रंग मिला दिया। उसकी रगों में मुद्दत से शरारत की जो भावना दबी पड़ी थी, वह जागृत हो उठी। नदीतट पर आने-जाने वाले चरवाहे, गांव के राहगीर और घाट पर स्नान की इच्छा से जानेवाली स्त्रियां—कोई भी इस उपद्रवी नौजवान की शरारतों से बच न सका। उसने सभी पर होली का वह रंगीन प्रसाद उछाला, मानो आज होली का सारा राग-रंग अजित में ही सीमित हो गया था। इस समय वह स्वयं भी इसी रंग मिले कीचड़ से पुता हुआ था। यहां तक कि उसे पहचानना भी कठिन हो रहा था।

दस बजे के लगभग मोहिनी अजित के घर गई। वहां अजित की बुढ़िया माता से उसे मालूम हुआ कि अजित सुबह से नदी की तरफ गया हुआ है। मोहिनी भी उसी तरफ चल दी। कुछ दूर जाकर, गली के एक मोड़ पर उसने जो नज़ारा देखा, उसे देखकर आज बहुत दिनों के बाद उसके मुंह पर स्वाभाविक मुसकान की एक सुन्दर रेखा दौड़ गई। उसने देखा कि अजित होली का मूर्तिमान अवतार बनकर उसीकी ओर भागा आ रहा है। मोहिनी को एक कदम भी इधर-उधर हटने का अवसर न मिला और अजित ने एक कटोरा भर कीचड़ उसपर उछाल दिया। अब मोहिनी की बारी थी। अजित ने अपना पीपा गली के ठीक बीच में रखा हुआ था। मोहिनी सीधे उसी तरफ बढ़ी और उसने अजित का वह सारा गोला-बारूद गली में उलट दिया। अजित को शरारत में अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी। दोनों अब एक साथ नदीतट की ओर गए। दोनों को आज बहुत दिनों के बाद अपना सुख-दुख एक दूसरे को सुनाने का अवसर मिला था, इसी कारण नदीतट पर उगी हुई दूर्वा पर दोनों बहुत देर तक बैठे रहकर एक दूसरे से बातचीत करते रहे।

इसके बाद जब अन्य आवश्यकताओं से निवृत्त होकर अजित अपने कारखाने में पहुंचा, तब दोपहर ढल चुकी थी। तीन बज रहे होंगे। अजित अत्यधिक घबराहट की दशा में अपनी खड्डी के निकट जा खड़ा हुआ। दुर्भाग्य से महीमपुर के वर्कशाप में आज स्वयं मिस्टर फाक्स निरीक्षणार्थ आए हुए थे।

अजित को यह बात मालूम नहीं थी। वह करघा ठीक करके अपना काम करने लगा। इसी समय एक जमादार ने आकर अजित से ताने में पूछा, 'आज इतनी सुबह कैसे आ पहुंचे।'

अजित ने कोई जवाब न दिया।

जमादार एकदम अक्खड़ था। उसने नज़दीक आकर अजित का कान पकड़ लिया और कहा, 'जवाब क्यों नहीं देते ?'

परन्तु अजित के आज प्रातःकाल के और इस समय के जीवन में जो यह तीव्र विषमता आ गई थी, उसने अजित को इस बेमौके भी दबने न दिया। जमादार का हाथ बलपूर्वक दूर हटाकर उसने जवाब दिया, 'इस धौंस का क्या मतलब है ?····देर से आया हूं तो तनख्वाह काट लो।'

जमादार के लिए अजित का यह साहस कल्पनातीत था। वह बदमाश झूठमूठ चिल्ला उठा, 'अरे इस लड़के ने मेरा हाथ तोड़ दिया ! हाय ! हाय !'

यह चिल्ल-पों सुनते ही सभी जमादार अजित पर कोड़े लेकर टूट पड़े। अभागा अजित घबरा गया। एक साथ इतने महारथियों की मार वह कहां तक संभालता। लाचार होकर उसने कोड़ों का प्रहार अपने हाथों पर रोकना शुरू किया। यह शोर-गुल सुनकर मिस्टर फाक्स भी उसी स्थान पर आ गए थे। अजित जिस ढंग से अपने को मार से बचाने का प्रयत्न कर रहा था, वह ढंग उन्हें अक्षन्तव्य गुस्ताखी से भरा हुआ जान पड़ा। इसलिए उन्होंने बीच-बचाव न किया। परिणाम यह हुआ कि जमादारों की मार उस अभागे लड़के पर तब तक निरन्तर पड़ती रही, जब तक वह लहू-लुहान होकर जमीन पर नहीं गिर पड़ा।

मोहिनी आज बड़ी खुश थी। दोपहर के बाद वह घर से बाहर नहीं निकली। सांझ को वह नदीतट पर भी नहीं गई। घर पर रहकर ही उसने बड़े प्रयत्न से रसगुल्ले तैयार किए। होली के उपलक्ष्य में एक कटोरा भर रसगुल्ले लेकर वह सूर्यास्त के बाद अजित के घर गई। वहां पहुंचकर उसने देखा कि अजित की बुढ़िया माता दरवाज़े की चौखट पर बहुत ही निराश भाव से बैठी है। वह बहुत अधिक घबराई हुई थी। आज उसका अजित कारखाने में देर करके गया था, इसलिए उसका दिल दोपहर ही से घबरा रहा था। अब रात हो जाने पर भी अजित को घर आया न देखकर वह दरवाज़े की चौखट पर आ बैठी थी। यहां के उलटे रंग देखकर मोहिनी ने रसगुल्लों का कटोरा अपने आंचल की ओट में

कर लिया और नज़दीक आकर पूछा, 'मां, अज्जी कहां है ?'

बुढ़िया ने जिस निराशभाव से हाथ हिलाकर 'पता नहीं' का इशारा किया, उसे देखकर मोहिनी को उससे कोई और बात करने की हिम्मत न हुई। वह उससे रसगुल्लों की बात तक न कह सकी। कटोरा उसी तरह से छिपाए हुए वह धीरे-धीरे वहां से लौट पड़ी।

मोहिनी अजित के घर से तो लौटी, मगर अपने घर की तरफ नहीं गई। वह गई वर्कशाप की तरफ। चतुर्दशी का चांद स्वच्छ आकाश से निर्मल सुधा बरसा रहा था। धूल से भरी वह पगडंडी जैसे चांदनी से ढकी-सी पड़ी थी। दूर तक सभी कुछ साफ-साफ दिखाई दे रहा था। शीघ्रता से उस पगडंडी पर चलते-चलते मोहिनी को दूर पर दिखाई दिया कि रास्ते के बीचोंबीच जैसे कोई भारी-सी चीज़ पड़ी हुई है। थोड़ी दूर और आगे चलकर उसे कराहने की आवाज़ भी स्पष्ट रूप से सुनाई देने लगी। मोहिनी का हृदय धक्-धक् करने लगा। निकट आकर उसने पहिचाना कि जो व्यक्ति आज दोपहर तक सारे गांव में होली का मूर्त्तिमान अवतार बनकर हर्ष और जीवन का संचार कर रहा था, वह इस समय इस धूलभरी पगडंडी पर मृतप्राय की-सी दशा में पड़ा है। भय, शोक और आश्चर्य के मारे मोहिनी के आंसू तक भी न निकल सके। रसगुल्ले के कटोरे को उसने वहीं पगडंडी पर ही फेंक दिया। इसके बाद ?····इसके बाद—बस इतना ही कि अपने दुर्बल शरीर का आसरा देकर वह घायल अजित को धीरे-धीरे उसकी बुढ़िया मां के पास ले गई।

अजित की बुढ़िया मां उस समय जिस करुण कातरता से रोई, वह रोना ही फिरंगियों की बढ़ती हुई उस भारी सल्तनत के प्रति एक बहुत बड़ा अभिशाप था। उसका रोना सुनकर गांव के बीसियों आदमी जमा हो गए। मोहिनी के मां-बाप भी वहां आ गए। अजित का उपचार प्रारम्भ हुआ।

महीमपुर गांव में रहने वाले नवाब मुर्शिदअलीखां के कारिन्दे ने इस घटना को बहुत बुरा तो मनाया, परन्तु यह बात फिरंगियों के किसी अदने-से चपरासी तक से कहने की हिम्मत नहीं कर सका। देश का शासन उन दिनों ऐसे ही नामर्द लोगों के हाथों में था।

अजित इस बार मरने से बच गया। पूरे एक मास बाद जाकर उसके घाव भर पाए। अगर कभी मनुष्य मौत से लड़कर अपने किसी प्रियजन को बचा सकता

है, तो यह निस्संकोच होकर कहा जा सकता है कि मोहिनी ने मौत से लड़कर अजित को बचा लिया।

विदाई

होली के ठीक एक मास बाद की बात है। अजित अब बिल्कुल स्वस्थ हो चुका था। उसकी बुढ़िया माता ने आज इसी प्रसन्नता में मोहिनी और अजित की दावत करने का निश्चय किया। प्रातःकाल खूब अन्धेरे में ही उठकर वह घर के काम-काज में लग गई। बड़े चाव से उसने नाना प्रकार के व्यंजन और मिठाइयां तैयार कीं। मोहिनी अब प्रति दिन नित्यकर्मों से निबटकर वहां आठ बजे के करीब पहुंचा करती थी। बुढ़िया ने पहले दिन उसे दावत के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं दी थी। आज, वह चाहती थी कि सब सामान मोहिनी के आने से पहले ही तैयार कर लिया जाए और इस तरह मोहिनी को आश्चर्य-चकित किया जाए। खाने-पीने का सब सामान तैयार हो गया। मगर जिसके लिए यह सब तैयारी हो रही थी, वह नहीं आई। आठ बज गए, मोहिनी नहीं आई। बुढ़िया की उद्विग्नता बढ़ने लगी। क्रमशः नौ बज गए, दस बज गए। मगर मोहिनी नहीं आई। अब अजित भी चिन्तित होने लगा। मां से आज्ञा लेकर अजित मोहिनी की खोज में उसके घर की तरफ जाने ही वाला था कि वह वहां आ पहुंची। अजित का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। उसने मुस्कराकर कहा, 'तुम्हारा इन्तजार करते-करते मां की आंखें थक गईं। तुम कहीं कैद हो गई थीं क्या?'

मोहिनी का चेहरा आज बहुत गम्भीर था। उसकी आंखों से प्रतीत होता था कि जैसे अभी-अभी रोकर आ रही है। फिर भी उसने जबरदस्ती मुस्कराकर जवाब दिया, 'नहीं, इस देरी की कोई खास वजह नहीं है।'

इसी समय दूर ही से बुढ़िया ने मोहिनी पर एक साथ बहुत-से आशीर्वादों की वर्षा-सी करते हुए आवाज दी, 'आओ मोहिनी! अजित बड़ी देर से तुम्हारी इन्तजार कर रहा है। आज तुम दोनों को मैं एक साथ अपने हाथ से भोजन कराऊंगी।'

मोहिनी ने हाथ जोड़कर मां को प्रणाम किया।

अजित से मोहिनी की आज की गम्भीरता छिपी न रह सकी। मां दूसरे

कमरे में थी। अजित मोहिनी के निकट आया और उसका हाथ पकड़कर बड़े कोमल स्वर में पूछा, 'क्यों, बात क्या है मोहिनी।'

मोहिनी ने कहा, 'कुछ भी तो नहीं।' इसके बाद जबरदस्ती मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए उसने कहा, 'चलो, मां के पास चलें।'

अजित ने मोहिनी का हाथ छोड़ दिया। वह भी अब बिल्कुल गम्भीर बन गया। यह देखकर मोहिनी खिलखिलाकर हंस पड़ी। उसने कहा, 'तुम भी अजीब आदमी हो। इस तरह भी कोई रूठता है ?'

अजित ने कोई जवाब नहीं दिया। दोनों जने मां के पास चले गए। वहां पहुंचकर मोहिनी आज की दावत के लिए बड़ा उत्साह दिखाने लगी।

अजित को मोहिनी के आज के प्रत्येक आचरण में कोई विशेषता नज़र आ रही थी। परन्तु इसका कारण वह अभी तक समझ नहीं सका था।

थोड़ी ही देर बाद मोहिनी ने अजित की मां से, ऐसे स्वर में जैसे वह कोई बिल्कुल मामूली बात कह रही हो, कहा, 'मां, अब तुम्हें महीमपुर गांव छोड़ देना पड़ेगा, और वह भी आज ही।'

मां, बेटा दोनों चौक पड़े। उन्होंने आश्चर्य से पूछा, 'वह क्यों ?'

'अब इस गांव में तुम्हारा निर्वाह न हो सकेगा।'

बुढ़िया ने पूछा, 'क्यों ?'

'इस गांव के जुलाहों पर भगवान का प्रकोप है। मैंने सुना है कि जो जुलाहा यहां बच रहेगा, उसीका सर्वनाश हो जाएगा।'

'किससे सुना है ?'

'सभी तो कहते हैं। तभी तो, जिस जुलाहे का बस चलता है, वह पूरब की ओर, गोलपाड़ा जिले में भाग जाता है। लोग कहते हैं कि ये फिरंगी जुलाहों को इस देश से मिटा देना चाहते हैं।'

बुढ़िया ने ये सब बातें पहले भी सुन रखी थीं। वह मन ही मन यह सोचती थी कि अजित के भले के लिए, उसके अच्छा होते ही वह उसे लेकर पूरब के जंगलों की ओर भाग जाए। परन्तु उसे विश्वास था कि अजित और उससे भी बढ़कर मोहिनी को इस बात से बड़ा दुख होगा। परन्तु अब स्वयं मोहिनी को यह बात कहते देखकर उसने अजित से कहा, 'सुनते हो, मोहिनी क्या कह रही है ?'

अजित ने कोई जवाब नहीं दिया। इसी समय बुढ़िया को सन्देह हुआ कि उसकी गाय का बछड़ा रस्सी तुड़वाकर आंगन की बेलें चर रहा है, वह वहां से उठकर उधर ही चली गई।

जब मोहिनी और अजित दोनों वहां अकेले रह गए तो अजित ने अपनी गीली आंखों को मोहिनी के मुंह पर गड़ाकर बड़ी गम्भीरता से कहा, 'ओह, तुम इतनी निष्ठुर हो।'

मोहिनी के शरीर भर में बिजली-सी घूम गई। उसकी आंखों में बलात् पानी उतरने लगा। मगर इस सबको बड़े यत्न से वश में करके उसने, ऐसे स्वर में जैसे वह हुक्म दे रही हो, कहा, 'अजित, तुम्हें पूरब तो जाना ही पड़ेगा।' यह कहते हुए उसके हृदय में विभिन्न भावों की परस्पर जो मारकाट हो रही थी, उसका खून शीघ्र ही उसके चेहरे पर झलकने लगा। उसका चेहरा बहुत अधिक लाल हो गया।

अजित ने फिर से कहा, 'निष्ठुर!'

मोहिनी की आंखों में आंसू उतर आए और उसी क्षण बड़े-बड़े मोतियों के समान दो स्वच्छ अश्रुबिन्दु उसके सुन्दरतम, विकसित और लाल हो रहे गालों को भिगोते हुए नीचे की तरफ लुढ़क गए।

इसी समय अजित की माता के वापस लौटने की आवाज़ सुनाई दी। मोहिनी ने शीघ्रता से अपनी आंखें पोंछ डालीं और मुस्कराकर कहा, 'मां! बड़ी भूख लग रही है। अब कितनी देर तक और तरसाओगी?'

बुढ़िया प्रसन्नता से गद्गद हो गई। वह मोहिनी के लिए बहुत-सी मंगल-कामनाएं करते हुए थाल परोसने लगी।

भोजन शुरू हुआ। अजित कुछ नहीं खाना चाहता था, मगर मोहिनी की जिद, उसकी स्नेहमयी प्रेरणाओं और स्वेच्छाचारी आज्ञाओं से बाधित होकर उसे खाना ही पड़ रहा था।

भोजन के बाद मोहिनी और अजित को पुनः एकान्त मिला। यह मालूम नहीं कि घंटों तक उन दोनों में क्या बातचीत होती रही, परन्तु इतना ज़रूर मालूम है कि दोनों के चेहरों पर आंसू, मुसकराहट और गम्भीरता के अनेक पटाक्षेपों के बाद अजित महीमपुर छोड़कर पूरब के जंगलों में जाकर रहने के लिए तैयार हो गया।

क्रमशः रात हो गई। आज वैशाख शुक्ल की चतुर्दशी थी। आसमान में पूरा चांद दिखाई दे रहा था, मगर आज उसकी सुधा उतनी स्वच्छ नहीं थी। आकाश में गरमी के कारण कुछ धुंध-सी छाई हुई थी। इसी समय दो गठरियां उठाकर अजित अपनी मां के साथ चुपचाप नदीतट की तरफ बढ़ा जा रहा था। मोहिनी भी उसके साथ थी। पकड़े जाने के भय से अजित ने अपना भेष किसानों का-सा बना रखा था।

ये तीनों जने गांव की सीमा पार करके नदीतट पर आ पहुंचे। हवा बन्द थी। जंगल में सन्नाटा था। नदी का पानी बिल्कुल उतरा हुआ था, इसलिए वहां भी ध्वनि नहीं थी। अजित और मोहिनी भी बिल्कुल चुपचाप चले जा रहे थे। सब ओर पूर्ण शान्ति थी। मगर नदी का यह नीरव तट अजित और मोहिनी के हृदयों में, मानो चिल्ला-चिल्लाकर पुरानी स्मृतियों की जो कहानी कह रहा था, उसने उन दोनों के हृदयों में कोलाहल का भारी तूफान-सा खड़ा कर दिया था। क्रमशः वह क्षण भी आया, जब वे दोनों एक दूसरे से विदा हो गए।

मोहिनी घर की ओर लौट पड़ी और अजित अपनी मां का हाथ पकड़कर धीरे-धीरे नदी का उथला जल पार करने लगा।

दस वर्ष बाद

ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे जो घने जंगल दूर तक छाए हुए हैं, उनमें एक शिकारी रहता है। इस समय तक सम्पूर्ण बंगाल में अंगरेज़ों का अखंड राज्य कायम हो चुका है, मगर इन जंगलों में उसी शिकारी का एकाधिपत्य है। इस शिकारी का मनुष्य जाति से कोई सम्बन्ध नहीं। इसकी प्रजा पशु है—हिंसक और शाकाहारी दोनों। बंगाल भर के छोटे-छोटे शिकारी इस ब्रह्मपुत्र के शिकारी को अपना देवता मानते हैं, यद्यपि उनमें से कभी किसीने उसे देखा तक भी नहीं। यह शिकारी एक लम्बा-चौड़ा जवान है। बिल्कुल अकेला रहता है। कपड़े नहीं पहिनता। सिर्फ एक बड़े बब्बर शेर की खाल को अपनी कमर के चारों ओर लपेटे रहता है। कोई नहीं जानता कि उसका जन्म कहां हुआ था। बंगाल भर में उसके सम्बन्ध की अनेक घटनाएं प्रसिद्ध हैं। लोगों में मशहूर है कि वह शेर पर सवारी करता है, जंगली हाथी अपनी सूंडों से उसका तिलक करते

हैं और वन के पक्षी इधर-उधर से फल बटोरकर उसके लिए भोजन ला देते हैं।

उसके सम्बन्ध में जो किंवदन्तियां सुनी जाती हैं, मालूम नहीं उसमें से कितनी गलत या कितनी सही हैं। परन्तु एक बात बिल्कुल ठीक है, वह यह कि वह शिकारी फिरंगियों का दुश्मन है। उसके सिर पर सदैव एक ताज रहता है। यह ताज मनुष्य की हड्डियों से बना होने पर भी बहुत सुन्दर है।

बरसात का मौसम अभी शुरू ही हुआ था। संध्या का समय था। ब्रह्मपुत्र नदी पूरे वेग से वह रही थी। नदी के किनारे, एक ऊंचे टीले पर वह शिकारी चुपचाप खड़ा था। टीले पर नरम-नरम दूर्वा उगी हुई थी। आसपास के वृक्षों पर पक्षी चहचहा रहे थे। जंगल में जानवर चिल्ला रहे थे। वह शिकारी बन्दूक के मुंह पर अपनी हथेली टेककर, एकटक, नदी में उठने वाली बड़ी-बड़ी लहरों की तरफ देख रहा था।

सहसा उसे दूर पर किसी कुत्ते के भौंकने की आवाज़ सुनाई दी। वह चौंककर सतर्क हो गया। कुत्तों का भौंकना अभी तक जारी था। शिकारी समझ गया कि आज फिर किसी मज़ेदार घटना की सम्भावना है। वह बन्दूक हाथ में सम्हालकर शीघ्रता से उसी ओर चल दिया। थोड़ी दूर जाकर शिकारी कुत्तों की भों, भों, ध्वनि के साथ किसी स्त्री के रोने की आवाज़ भी उसके कानों में पड़ी। शिकारी न जाने क्यों बिल्कुल अधीर हो उठा। उसमें असाधारण स्फूर्ति आ गई।

कुछ देर में उसे दिखाई दिया कि जंगल के एक भाग को साफ करके दो-तीन बड़े-बड़े तम्बू डाले गए हैं। इन तम्बुओं के सामने एक फिरंगी धीरे-धीरे टहल रहा है। उसके पीछे, तम्बुओं के दरवाज़ों पर, कई खानसामे पांच-छः शिकारी कुत्तों को सम्हाले हुए खड़े हैं। शिकारी बहुत अधिक सतर्कता से आगे बढ़ा। उसे दिखाई दिया कि उस फिरंगी की ओट में एक भारतीय महिला बंधी हुई पड़ी है। एक क्षण तक वृक्षों की ओट से उस महिला की ओर देखते रहकर शिकारी सहसा उछल पड़ा। न जाने इतना अधिक अधीर वह कैसे बन गया। बिजली की गति से वह उस स्थान पर जा पहुंचा। बन्दूक की तीन-चार गोलियां चलाकर शिकारी ने उस फिरंगी को वहीं पर ठण्डा कर दिया। इसके बाद उस महिला के निकट पहुंचकर वह बड़ी व्यग्र आवाज़ में चिल्लाया, 'मोहिनी !'

शायद वर्षों के बाद वह शिकारी आज पहली बार किसी मनुष्य से बोला था।

बन्दिनी गोलियों की आवाज़ सुनकर और भी अधिक डर गई थी। अब अचानक अपना नाम सुनते ही वह चौंक उठी। अगले ही क्षण शिकारी को उसने जैसे पहचान लिया। वह अत्यधिक उल्लास भरे स्वर में पुकार उठी, 'अज्जी'।

शिकारी ने उस बन्दिनी महिला को अपनी बलिष्ठ भुजाओं में उठा लिया और तुरन्त ही वायुवेग से वह जंगल में प्रविष्ट हो गया।

यह सब काण्ड सिर्फ एक ही मिनट में हो गया।

अचानक यह गड़बड़झाला देखकर कैम्प के नौकरों में भगदड़ पड़ गई थी। उन्होंने और कोई उपाय न देखकर अपने कुत्तों को इस शिकारी पर छोड़ दिया। दो-एक ने उसपर गोलियों का फायर भी किया। परन्तु उस शिकारी को न तो कोई गोली ही लगी और न शिकारी कुत्ते ही पकड़ सके।

इसके बाद किसीको नहीं मालूम कि अजित और मोहिनी कहां जाकर रहने लगे।

दो-चार दिनों के बाद कलकत्ते के सरकारी रजिस्टरों में यह दर्ज किया गया—'गोलपाड़ा के कलेक्टर मिस्टर फाक्स ब्रह्मपुत्र के एक असभ्य शिकारी के हाथों से एक भारतीय महिला को छुड़ाने गए थे, परन्तु वहां धोखे से मार डाले गए।' मिस्टर फाक्स कम्पनी के असाधारण हितचिन्तक थे। पिछले बरसों में मिदनापुर जिले में कम्पनी की आय बढ़ा देने का श्रेय भी इन्हींको था।

इन सरकारी रजिस्टरों में जो कुछ चाहे लिखा रहे, परन्तु गोलपाड़ा के निवासी जानते थे कि करीब नौ बरस पहले, पश्चिम की तरफ से आकर गोलपाड़ा के गांव-गांव में तपस्विनी-सी बनकर घूमने वाली सुन्दरी मोहिनी को फिरंगी साहब के नौकर किस उद्देश्य से पकड़ ले गए थे।

शराबी

'बनवारी ! ओ बनवारी !'

'आया हुज़ूर !' कहकर बनवारी बाबू दुर्गाचरण की बैठक में दाखिल हुआ। बाबू साहब ने कहा, 'जाओ, बाजार में जाकर सोड़े की छः बोतलें और पांच सेर बर्फ ले आओ।'

दोपहर का समय था। सूरज आग बरसा रहा था। सनसनाती हुई लू चल रही थी। बनवारी अब जवान नहीं रहा था, वह ४५ की उम्र पार कर चुका था। जिन दिनों वह जवान था, उन दिनों ऐसी गरम दोपहरी में नंगे पैरों बाज़ार जाना उसके लिए बिल्कुल मामूली बात थी। परन्तु अब उसमें जवानी का वह जोश बाकी नहीं रहा था। तो भी बनवारी ने अपने फटे जूते पहने और एक तौलिया हाथ में लेकर वह बाज़ार की ओर चल दिया।

बाबू दुर्गाचरण के मकान से जो गली बाज़ार को जाती है, उसके अन्तिम भाग पर बरगद का एक बड़ा वृक्ष है। यह बरगद सदियों का बूढ़ा है और उसकी जड़ें किसी पुराने वंश की संततियों के समान दूर-दूर तक फैली हुई हैं। यह बरगद का पेड़ एक अच्छे-खासे मैदान पर छाया हुआ है। बनवारी जब इस पेड़ के नीचे पहुंचा, तब उसने देखा कि एक जवान आदमी बेहोश-सा होकर मिट्टी पर ही सोया हुआ है। उसके सिर के लम्बे बाल अस्तव्यस्त होकर बिखरे पड़े हैं। उसकी दाढ़ी-मूंछों के कठोर नोकीले बालों पर धूल जम रही है। नौजवान के मुंह से लार टपक-टपककर बरगद के नीचे बालकों के खेल के कारण खूब महीन हो गई मिट्टी को सींच रही है। उसके शरीर पर मक्खियां भिनभिना रही हैं।

पास ही, बरगद के तने के बिल्कुल निकट कुछ बालक खेल रहे थे। बनवारी ने उनसे पूछा, 'यह कौन है ?'

एक छोटे बालक ने ताली बजाकर कहा, 'शराबी ।'

बनवारी उस नौजवान के पास आकर बैठ गया । नौजवान के पसीने से अत्यन्त दुर्गन्ध आ रही थी, फिर भी उसे सहन करते हुए बनवारी ने उस व्यक्ति को हिलाकर जगाया । बड़ी कठिनता से वह जागा । मालूम होता था, शराब का नशा उतर चुका था । उसकी लाल-लाल परन्तु आभाशून्य आंखों में अत्यधिक थकावट के चिह्न दिखाई दे रहे थे ।

उसने बनवारी की ओर घूरकर देखा । इसी समय बनवारी ने पूछा, 'यहां क्यों लेटे हो ?'

उस व्यक्ति को मानो यह प्रश्न बिल्कुल असंगत जान पड़ा । उसने कहा, 'क्यों का क्या मतलब !'

बनवारी ने उसे 'क्यों' का मतलब समझाना व्यर्थ समझा और उसका हाथ पकड़कर कहा, 'चलो, मेरे साथ चलो । मैं तुम्हें मिठाई खिलाऊंगा ।'

वह नौजवान खाने-पीने का नाम सुनकर खुश हो गया । बनवारी के साथ चलने के लिए बड़ी आतुरता दिखाता हुआ वह बोला, 'चलो, चलो, मुझे बहुत प्यास लगी है । मेहरबानी करके क्या मुझे एक अद्धा पिला सकोगे ?'

बनवारी ने नौजवान की बात का जवाब न देते हुए उससे पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है ?'

वह नौजवान बनवारी का यह प्रश्न सुनकर जैसे चौंक उठा । अपनी चाल को एकदम धीमा करके वह बोला, 'मेरा नाम तुमने बहुत बार सुना होगा ।'

बनवारी ने उसे डांटकर कहा, 'अपना नाम बताते हो या नहीं !'

उस नौजवान ने कहा, 'मेरा नाम सुनकर तुम डर जाओगे ।'

बनवारी ने समझा कि शायद अभी तक इस आदमी का नशा पूरी तरह उतरा नहीं है । इसलिए वह चुप हो रहा ।

बनवारी को उसके मालिक ने यह इजाजत दे रखी थी कि गैस वाले पानी की दूकान पर जाकर वह भी कभी-कभी एक बोतल पी लिया करे । आज बनवारी ने अपना हिस्सा इस शराबी को पिला दिया । शराबी गिड़गिड़ाया, 'मयखाने की तरफ ले चलो ।'

बनवारी ने कहा, 'चलो तुम्हें वहीं ले चलूंगा ।' यह कहकर बनवारी उस अभागे नौजवान को अपने घर ले आया । वहां दुर्गाबाबू बनवारी की प्रतीक्षा में

बैठे थे। उन्होंने नाराजगी से कहा, 'बनवारी, तुमने बहुत देर कर दी।'

बनवारी ने कोई जवाब नहीं दिया।

काम-काज से निपबकर, रात के समय बनवारी ने अपने कमरे में जाकर देखा कि उसका शराबी मेहमान इस समय गिलहरी के समान फुर्तीला बना हुआ है। सिनेमा की फिल्म की तरह उसकी आंखों की पुतलियां बड़ी तेजी से इधर-उधर घूम रही हैं। बनवारी यह देखकर भयभीत हो गया। शराबी की यह दृष्टि उसे बड़ी भयंकर जान पड़ी। कोई बात चलाने की इच्छा से बनवारी ने पूछा, 'हां, अब बतलाओ, तुम्हारा नाम क्या है?'

उस नौजवान ने मुट्ठी बांधकर बड़े रहस्यपूर्ण भाव से कहा, 'धीरे बोलो, धीरे!'

अब के बनवारी को कुछ हंसी आ गई। उसने कहा, 'क्यों भाई, धीरे क्यों बोलूं?'

नौजवान नाराज़गी से बोला, 'इतने बेवकूफ न होते तो नौकरी क्यों करते! देखते नहीं, अगर हम लोग चाहें तो इस समय इस बाबू के यहां से गहरा हाथ मार सकते हैं। मैं ताला तोड़ने के फन में उस्ताद हूं। मुझे तुम सिर्फ यही बता दो कि इस गधे का खज़ाना रहता किस जगह है?'

बनवारी फिर से चकरा गया। उसने धीरे से कहा, 'परमेश्वर से डरो भाई। वह तुम्हें तुम्हारे इन्हीं पापी इच्छाओं की सज़ा दे रहा है।'

वह शराबी नौजवान इस तरह ठठाकर हंस पड़ा, जैसे उसने कोई बड़ी मूर्खता की बात सुन ली हो। वह बोला, 'अरे बेवकूफ! परमेश्वर है ही कहां?'

बनवारी यद्यपि पढ़ा-लिखा नहीं था, परन्तु फिर भी वह बड़ा समझदार था। वह समझ गया कि यह बेचारा कोई बहुत अधिक सताया हुआ प्राणी है। इसी समय उस जवान ने पूछा, 'अच्छा बनवारी! तुम्हें इस बाबू के यहां काम करते कितना अरसा हुआ है?

बनवारी ने जवाब दिया, '४५ बरस।'

शराबी ने आश्चर्य से कहा, '४५ बरस! इन बाबू लोगों का तो यह एक मोटा असूल है कि जैसे फलों को अधिक समय तक पड़ा रहने देने से, वे गल-सड़ जाते हैं, उसी तरह नौकर भी पुराने होकर आलसी, गुस्ताख और आराम-

पसन्द हो जाते हैं। तुम इतने दिनों तक एक ही जगह कैसे बने रहे ?'

बनवारी ने कहा, 'बाबू जी के वालिद साहिब के यहां मेरे पिता नौकर थे। किस्मत से इन बाबू जी का और मेरा जन्म ठीक एक ही दिन हुआ था। मैं तो तभी से इनकी खिदमत में हूं।'

वह शराबी अब के दार्शनिक बन गया। उसने कहा, 'बाप रे बाप ! लगातार ४५ बरसों तक तुम एक ही आदमी की सेवा-टहल करते रहे—फिर भी वह एहसान फरामोश अभी तक तुमसे अपना कमरा साफ करवाता है, उसी तरह बाज़ार से सौदा खरीदवाता है, इसपर भी तुम कहते हो कि न्याय करने वाला कोई परमेश्वर है ! ! !'

शराबी आगे बकने लगा, 'मेरी भी कहानी सुनो। उसे सुनकर तुम्हें मालूम हो जाएगा कि यदि कोई ईश्वर नाम की चीज़ है भी, तो वह इन धनियों के यहां डाका डालने से ही प्रसन्न होती है। ये धनी लोग जोंक की तरह हमारा खून चूसकर ही तो धनी हुए हैं।'

बेचारा बनवारी बड़ी तकलीफ और अनिच्छा से ये बातें सुन रहा था। परन्तु शराबी इतने अधिक आवेश में था कि वह उसे रोक न सका। शराबी इस बात की परवाह किए बिना ही कि बनवारी उसके 'असत्य के प्रयोग' अर्थात् 'आत्मकथा' सुनना चाहता है या नहीं, बड़े मनोरंजक ढंग पर अपनी कहानी सुनाने लगा—

'मेरा नाम है बिहारी। मेरी उम्र इस समय २८ बरस की है। आज से सिर्फ तीन-चार बरस पहले मैं भी तुम्हारी ही तरह से खुदा और ईमान पर भरोसा रखने वाला था। उन दिनों मैं अहमदाबाद की एक बड़ी मिल में छः आना दैनिक लेकर काम किया करता था। मैं बचपन से अनाथ था, फिर भी किस्मत के जोर से मेरा ब्याह हो ही गया। एक छोटी-सी फूंस की झोपड़ी में मैं अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रहता था।

'इन दो बच्चों में एक लड़की थी—बहुत ही सुन्दर और अत्यधिक भोली। उसकी उम्र चार साल की होगी। एक बच्चा था—अधखिली कली से भी छोटा और पानी से भी अधिक मुलायम। वह अभी सिर्फ दो ही बरस का था।

'मैं दिन भर कारखाने में मेहनत करता था। मुझमें उन दिनों ऐसी कोई बात नहीं थी, जिन्हें लोग गलती और बेवकूफी से ऐब कहते हैं। मैं था तो

गरीब ही, मगर उन दिनों मैं उसीमें खुश था। दस घण्टे की मेहनत के बाद जब घर आकर मैं नमक की सहायता से रूखी रोटी चबाकर ठण्डा पानी पीता, तब मेरी आत्मा झुक-झुककर ईश्वर का शुक्रिया अदा किया करती थी। मैं इस गरीबी में ही सन्तुष्ट था। यदि मेरी ज़िन्दगी उसी तरह निकल जाती, तो भी एक बात थी। मगर तुम्हारे फरेबी खुदा से मेरी वह खुशी भी न सही गई।

'शराबी का स्वर अब धीमा और कोमल पड़ गया था। वह कहने लगा, किस्मत के फेर से मेरी घरवाली को वह बीमारी हो गई जिसका नाम तपेदिक है। मैं पहले इस बीमारी के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था। समझता था कि शायद मामूली बुखार है, उतर जाएगा। परन्तु कई महीनों बाद, उसे एक मामूली-से डाक्टर को दिखाने पर मालूम हुआ कि यह बीमारी ऐसी है जो किसी गरीब को एक बार होकर उसका साथ फिर कभी नहीं छोड़ती।

'मैं उन दिनों बिलकुल घबरा गया था। दिन भर मिल में मेहनत करना, उसके बाद घर आकर रोटी पकाना, बच्चों को खिलाना और रातभर अपनी औरत के सिरहाने बैठे रहना। धीरे-धीरे नौबत यहां तक आ गई कि मुझे बहुत बार मिल से छुट्टी लेने को बाधित होना पड़ा। मिल के मैनेजर को यह बात मंज़ूर न थी कि कोई मजदूर जिस दिन मर्जी हो उस दिन काम पर आए और जिस दिन ज़रूरत हो, छुट्टी मनाए। फिर यह जानकर कि मेरी पत्नी को तपेदिक है, उसने मुझे मिल से निकाल देना ही उचित समझा। नतीजा यह हुआ कि मैं जो छः आना रोज़ कमा लाता था वह भी अब बन्द हो गया।

'धीरे-धीरे मैं घर का सब माल-असबाब बेचकर अपनी पत्नी का इलाज कराने लगा। इलाज क्या होता था, एक तीसरे दर्जे का मूर्ख-सा डाक्टर कभी-कभी आकर देख जाता था। वह बेवकूफ कहता था, पहाड़ पर ले जाओ, जैसे पहाड़ों पर अमीरों के सिवा किसी और का भी हक है। घर का सब सामान बिक जाने पर भी मेरी स्त्री अच्छी न हो सकी और एक दिन प्रातः काल वह अपने दोनों बच्चों को मातृहीन करके वहां चली गई, जहां जाने पर अमीरों की घुड़कियों से छुटकारा मिल जाता है।

'मेरी झोपड़ी में दरिद्रता अब नंगा नाच कर रही थी। अगले दिन जब मैं नींद से जगा तो देखा कि मेरे दोनों बच्चे एक टूटी चारपाई पर पड़े भूख के

कारण सिसक रहे हैं। उनकी हालत का मैं जिक्र नहीं कर सकता। उनके फूल ऐसे गाल हड्डियों से चिपक गए थे। घर में खाने को कुछ भी नहीं था। सोचा, चलो फिर कहीं काम की तलाश की जाए। उसी मिल में गया। मैनेजर उस वक्त न मालूम किस वजह से नाराज़ बैठा था। शायद उसके हिसाब में कोई ऐसी गलती हो गई थी, जो उसे सूझ नहीं रही थी। मुझे गिड़गिड़ाता देखकर उसने चपरासी से कहा, 'निकालो इस बदज़ात को।' दरबान के हाथों धक्के खाकर मैं रोता हुआ बाहर चला आया।

'दिन भर मैं अहमदाबाद के बाजारों में घूमा-फिरा, परन्तु कहीं कोई काम नहीं मिला। मेरी बदकिस्मती ने मेरी शकल-सूरत को इतना घिनौना बना दिया था कि मुझे जो कोई अपने दरवाज़े पर खड़ा देखता, वही मुझे चोर या उचक्का समझकर घुड़क देता था। मेरी आंखें कमज़ोरी और शोक से लाल हो रही थीं, गाल चिपक गए थे और कपड़े फट गए थे।

'सांझ को दिन भर का थका-मांदा मैं अपने घर वापस आया। देखा, मेरे बच्चे उसी तरह खाट पर पड़े हैं। परन्तु चुप हैं। एक क्षण तो मुझे यह सन्तोष हुआ कि चलो, अभागे नींद के कारण ही सही, थोड़ी देर के लिए भूख से छुटकारा तो पा गए। मगर फिर पास जाकर देखा तो वे बेहोश पड़े थे। इस दृश्य ने मुझे पागल बना दिया। मैं घर से फिर बाहर चला आया। मैंने अब निश्चय कर लिया था कि जिस किसी तरह सम्भव होगा, चोरी से, धोखे से, फरेब से या लूट से, मैं कोई खाने की चीज लाकर ही घर लौटूंगा।

'मगर उस दिन कुछ चुराने की नौबत नहीं आई। मेरी झोपड़ी से थोड़ी ही दूर पर एक धनी व्यापारी का बंगला था। उसके छोटे लड़के के आज पहली ही बार बाल काटे गए थे, इसी उपलक्ष्य में, उसने एक बड़ी दावत दे रखी थी। इस भोज की जूठन इस समय कुत्तों को फेंकी जा रही थी। अपने मनुष्य होने के बल पर मैंने उन कुत्तों को भगाकर इस जूठन के बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। इसमें थे पूरियों के बहुत-से टुकड़े, रायते और खीर का मिश्रण तथा मिठाइयों का चूरा, जो केले की फलियों के गूदे में एक तरह से गूंद दिया गया था। वह सब माल पाकर मुझे इतनी खुशी हुई, जितनी इन पूंजीपतियों को हजारों मजदूरों का खून चूसने पर भी न होती होगी। घर जाकर, पानी

के छींटें देकर, मैं अपने बच्चों को होश में लाया और उन्हें यह षट्रस जूठन खाने को दी।

'अगले दिन आजीविका का मुझे एक और उपाय सूझा। वह यह कि मैं तो बन गया अंधा और मेरी लड़की बनी मेरी अभिभाविका।'

बनवारी उस शराबी की यह बात सुनकर हंस पड़ा। उसे डांटकर शराबी जोश में बकने लगा, 'बुड्ढ़े कहीं के! मेरी बात का मतलब तो समझते नहीं, उलटा उसपर हंसते हो। मेरी बात ध्यान से सुनो, हंसो मत। वर्ना मैं तुम्हें भी पीट बैठूंगा।

'हां, तो मैंने अभी तुम्हें बताया था कि मैं बना अन्धा। इसका मतलब यह है कि मैं आंखें मूंदकर, एक हाथ में लकड़ी लिए हुए बाजार में घूमता था। मेरी चार साल की लड़की उस लकड़ी को आगे से पकड़कर मुझे राह दिखाती थी। मैं बार-बार पुकारता था, 'अंखिया वाले आंखें बड़ी न्यामत हैं। मेरी चार साल की छोटी बच्ची कमजोर-सी आवाज़ में गिड़गिड़ाती थी, 'परमेश्वर के नाम पर अपाहिज को एक पैसा दो!' मगर ये खुदापरस्त, खुदगर्ज और लालची धनी ऐसे मौकों पर परमेश्वर के नाम पर की गई दोहाई पर भी ध्यान नहीं देते। खैर, फिर भी इस उपाय से मुझे कुछ न कुछ मिल ही जाता था।

'दिन को मैं इस तरह भीख मांगता था और रात को घर से निकलकर छोटी-मोटी चोरियां किया करता था। इस अन्धेपन के पेशे ने मुझे और किसी काम का न छोड़ा था। मेरी सारी ज़िन्दगी यदि इस तरह ही बसर हो जाती, तब भी एक बात थी। परन्तु जिस तरह टूटी हुई चिमनी आंच पाकर और अधिक टूट जाती है, उसी तरह मेरी फूटी किस्मत ने एक और चरका खाया।

'दसहरे का दिन था। लोग यथाशक्ति अपनी सब चिन्ताओं को भुलाकर शहर के बाहर एक बड़े मैदान में जमा हो रहे थे। इस जगह सैकड़ों रुपयों की आतिशबाज़ी फूंकी जानी थी। खूब बड़ा मेला लगा हुआ था। सड़क पर भारी भीड़ थी। लोगों में खूब धक्कमपेल हो रही थी। जहां इस तरह से लोग जमा हों, वहां भिखमंगों को भी कुछ न कुछ प्राप्त होने की आशा रहती ही है, इस कारण मैं भी अपनी लड़की की संरक्षा में इस मेले में गया। आज मैंने और भी अधिक फटे-पुराने कपड़े पहने थे, ताकि मुझपर लोगों को अधिक रहम आए।

'मेरी लड़की ने अभी पांचवां बरस भी समाप्त नहीं किया था, इस कारण

वह बेचारी इस भारी भीड़ में घुसते हुए बहुत घबरा रही थी। खासकर जब एक बड़े आदमी, वह भी अपने पिता, को ठीक राह पर ले चलने का उत्तर-दायित्व भी उसीपर था। परन्तु मेला देखने की उत्सुकता भी बच्चों में स्वाभाविक रूप से होती है, अतः वह बेचारी जिस किसी तरह मुझे लिए चली जा रही थी। मैं नकली बना हुआ अन्धा आज सचमुच बड़ी तकलीफ में था। जगह-जगह ठोकरें खानी पड़ती थीं। मगर यह मर्ज तो अब लाइलाज था। मैं आंखें खोल देता तो मेरी और भी अधिक दुर्दशा होती।

'इसी तरह सड़क पर आंखें बन्द करके चलते हुए मैं किसी चीज़ से अचानक बड़ी जोर से टकरा गया। मेरे हाथ से मेरी लाठी छूट गई, अर्थात् मुझे अपनी लड़की से मिलाने वाली शृंखला अब जाती रही। इसी समय मेरी पीठ पर तड़ा-तड़ कोड़े पड़ने लगे। मेरी पीठ जल उठी और साथ ही साथ मेरी आंखें भी हठात् खुल गईं। देखा कि एक सिपाहीराम मुझ पर कोड़े बरसा रहे थे। मैं अभागा उन्हींसे जा टकराया था। उस निर्दयी ने यह भी न सोचा कि बेचारा अन्धा अपाहिज है, टकरा गया तो जाने दो। कुछ जान-बूझकर तो टकराया न होगा। बस लगा तड़ातड़ कोड़े बरसाने।

'अगले ही क्षण एक और घटना हो गई। मेरी छोटी और निस्सहाय लड़की हतबुद्धि-सी होकर इस तरह अपने बाप का पिटना देख रही थी। भय के मारे उसकी आंखों से आंसू भी न निकल सके। इसी समय किसी सेठ की मोटर भों पों, पों पों करती हुई उसके बिलकुल निकट आ गई। वह बेचारी घबराकर, बिना कुछ भी देखे-भाले, अपनी जगह से हिली- मगर उसी तरफ, जिधर से मोटर पर सवार होकर उसकी मौत आ रही थी। इधर वह कसाई मुझपर कोड़े फटकार रहा था, उधर देखते-देखते मेरी निस्सहाया लड़की मोटर के नीचे आकर कुचल गई। मैंने उसकी अन्तिम चीख तो सुनी, परन्तु उसे बचा न सका। वह चली गई। मुझ अभागे को अपने ऊपर रोने के लिए जिन्दा छोड़कर वह अपनी मां के पास चली गई।

'उफ! उस भयंकर व्यथा ने मेरा दिल सचमुच तोड़ डाला। मैंने बहुत कुछ सहन किया था, मगर इतना भीषण प्रहार नहीं सह सका। मेरी लड़की की लाश मोटर के नीचे से निकालकर मेरे सामने रख दी गई। मैं वहीं बैठकर फूट-फूटकर रोने लगा। मेरे चारों ओर सैकड़ों आदमी गोल बांधकर खड़े हो

गए। परन्तु वे सब मेरे रोने से अपना मनोविनोद ही कर रहे थे। लोग मुझ-पर ताने कस रहे थे।

'एक ने कहा, 'बना हुआ है।' दूसरा बोला, 'अन्धा बनकर ठगने आया है।' तीसरे ने अपनी राय जाहिर की, 'बदमाश है।' अचानक मुझे सुनाई दिया, कोई टीकाधारी कह रहा था—'ईश्वर ने इसे इसके पापों का फल दिया है।'

'बस बनवारी, उस दिन से पाखण्डी ईश्वर का नाम सुनकर मेरे हाड़-मांस जल उठते हैं। अच्छा! तो मैं कह रहा था कि लोग मुझे घेरकर खड़े थे। थोड़ी देर बाद पुलिस आई और लाश सहित मुझे थाने में ले गई। वहां दो-चार दिन मुझे तरह-तरह से तंग किया गया। उन दिनों मेरा दिमाग सचमुच बिगड़ गया था। आखिर उन लोगों ने मुझे पागल जानकर छोड़ दिया।

'उसके बाद मैं घर नहीं गया। अहमदाबाद छोड़कर उत्तर की ओर चला आया। घर जाने की हिम्मत मैं नहीं कर सका। मालूम नहीं, मेरे बाद मेरे बच्चे का क्या हुआ? वह जीता है या मर गया। जब मैं होश में होता हूं, तब मेरे कानों में अपने बच्चे की करुण चिल्लाहटें गूंजने लगती हैं। इसी कारण मैंने शराब पीना शुरू कर दिया है। कम से कम जब तक शराब के नशे में रहता हूं तब तक तो उन चिल्लाहटों से छुटकारा मिल जाता है, शराब तो मेरे लिए अमृत है!'

इतना कहकर वह शराबी सिसक-सिसककर रोने लगा। यह देखकर बूढ़े बनवारी के दिल पर बड़ी चोट लगी। उसने कहा, 'अच्छा, अब सो जाओ!'

मगर शराबी अभी सोना नहीं चाहता था। उसने कहा, 'हां, तुमने यह तो पूछा ही नहीं कि मैं आजकल क्या पेशा करता हूं? मैं आजकल चोरी करके पेट पालता हूं। ताले तोड़ने और सेंध लगाने के सब तरीकों में मैं पक्का उस्ताद बन गया हूं। इस तरह से जो कुछ कमाता हूं वह सब शराबखाने में जाकर उड़ा देता हूं।'

इसके बाद उस शराबी ने बड़े आवेश से, मानो वह बनवारी को चैलेंज दे रहा हो, पूछा, 'अच्छा बुड्ढे! अब बताओ कि परमेश्वर है या नहीं?'

बनवारी ने उत्तर दिया, 'भाई! चाहे कुछ भी क्यों न हो जाए, परमेश्वर तो अवश्य है।'

उस शराबी को मानो आग लग गई। वह जमीन पर पैर पटककर बोला,

'तेरी खोपड़ी में बस गोबर ही गोबर भरा हुआ है। यदि परमेश्वर है भी, तो सिर्फ तेरी इस गोबर भरी खोपड़ी में है।'

इसी तरह बड़बड़ाता हुआ वह शराबी उस सुनसान अन्धेरी रात में ही बनवारी के घर से बाहर हो गया। बनवारी के बहुत अनुनय-विनय करने पर भी उसने ठीक उसी तरह परमात्मा पर विश्वास करने वाले व्यक्ति के घर ठहरने से इन्कार कर दिया, जिस तरह प्राचीन ऋषि सदैव संध्या और अग्निहोत्र न करने वाले राजा के घर भोजन करने से इन्कार कर देते थे।

दुर्भाग्य

गुस्से में भरकर यूथिका अपनी मां को बहुत कुछ सख्त-सुस्त और सरद-गरम सुना गई; परन्तु मां पर उसकी किसी बात का कोई असर नहीं पड़ा। वह जानती थी कि यूथिका अभी छोटी है, अपना भला-बुरा नहीं समझती। आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियां विवाह के नाम से घबराती हैं, यूथिका की इस बौखलाहट को वह इसी मनोवृत्ति का परिणाम समझती थी।

यूथिका से जब और कुछ न बन पड़ा, तो वह तेज़ी से उठी और अपने कमरे में जाकर उसने दरवाज़ा भीतर से बन्द कर लिया। उसकी सांस बड़ी तेज़ी से चल रही थी, जैसे उसकी कोमल छाती के भीतर कोई भारी चीज़ अटक गई हो और उसके फेफड़े पम्प कर उसे बाहर निकाल डालना चाहते हों। यूथिका ने चाहा कि वह फफककर रो उठे; मगर उसकी रुलाई फूट नहीं पाई। दुनिया में उसके लिए सभी ओर अन्धकार ही अन्धकार है। उसकी अपनी मां भी उसके हृदय की गहरी व्यथा को नहीं समझती। तब और किसको उसके साथ सहानुभूति हो सकती है? दुनिया के सामने वह अपना दिल चीरकर किस तरह रख दे? लोगों से वह किस तरह कहे कि वह पुरुषमात्र से घृणा करती है? पुरुष की कल्पना से ही उसे तीव्र घृणा है। इस छोटी-सी उम्र में उसने देख लिया है कि पुरुष स्वभाव से बेवफ़ा है। उसपर विश्वास नहीं किया जा सकता। वह पहले दर्जे का स्वार्थी और चलितचित्त है। बेटी होकर अपनी मां से वह अपनी गोपनीय कठोरतम अनुभूतियों की बात कैसे कह सकती है?

बिस्तरे पर लेटकर यूथिका ने अपने तकिए को कसकर छाती के नीचे दबा लिया और तब उसकी रुलाई सहसा फूट पड़ी। जिस तरह समतल भूमि में बाढ़ का पानी निःशब्द रूप से सभी ओर फैलता जाता है, उसी तरह यूथिका

चुपचाप पड़ी रहकर अजस्र रूप से आंसुओं द्वारा अपना तकिया गीला करती रही। मां अपनी किसी सहेली के घर चली गई थी, इससे यूथिका को जी भरकर रो लेने का स्वच्छन्द अवसर मिल गया।

और तब सहसा यूथिका के दिल में विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी। वह हर्गिज़, हर्गिज़ विवाह नहीं करेगी। उसकी आयु अब उन्नीस बरस की हो चुकी है। वह जानती है कि कानूनन अब उसपर कोई जबर्दस्ती नहीं कर सकता। वह किसीकी जबर्दस्ती सहन नहीं करेगी। मां रोएगी, बाप गुस्से होंगे। उसकी बला से! वे क्यों नहीं उसके दिल को समझने की चेष्टा करते? जब वह विवाह नहीं करना चाहती, तो क्यों वे जबर्दस्ती उसे किसीके पल्ले बांध देना चाहते हैं? यदि वह उन्हें भार प्रतीत हो रही है, तो वे साफ-साफ क्यों नहीं कह देते? वह किसीपर बोझ बनकर नहीं रहना चाहती—अपने मां-बाप पर भी नहीं।

अचानक उसे खयाल आया कि क्यों न वह घर से भाग खड़ी हो। वह तेरहवीं जमात तक पढ़ी है। मौका मिलता, तो इस साल बी० ए० भी पास कर लेती; परन्तु अब भी वह इतना जानती है कि वह कुछ न कुछ कर सकती है। कम से कम अपना जीवन-निर्वाह तो कर ही सकती है। उसके जिस्म पर पांच-सात सौ रुपए के जो गहने हैं, उनकी सहायता से वह अपना कुछ समय आसानी से बिता सकती है। उसके बाद ज़िन्दा रहने का कोई न कोई मार्ग वह निकाल ही लेगी। घर से भाग खड़े होने की इस कल्पना ने जैसे यूथिका के दिल में उत्साह का संचार कर दिया। वह उठ खड़ी हुई और उद्विग्नता के साथ कमरे में टहलने लगी।

उस दिन यूथिका के इंजिनीयर पिता बहुत रात गए घर वापस आए। खाना वे बाहर ही खा आए थे, इससे आते ही वे अपने सोने के कमरे में चले गए।

अगले दिन सुबह उन्हें कहीं इन्स्पेक्शन के काम पर जाना था। इससे बहुत तड़के ही तैयार होकर जब वे चाय पीने बैठे, तो उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा, 'यूथिका किधर है?'

'अपने कमरे में। शायद अभी वह सोकर नहीं उठी।'

बाप ने पूछा, 'उस सम्बन्ध में तुमने उससे बात की थी ?'

मां ने ज़रा मुस्कराकर कहा, 'जी हां।'

'वह क्या कहती है ?'

'वह कहती है कि विवाह करने की अपेक्षा मैं ज़हर खाकर मर जाना अधिक पसन्द करूंगी।'

बाप ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर सिर्फ हुंकार भर दिया, मुंह से वे कुछ नहीं बोले।

मां ने कहा, 'यूथिका विवाह करने के लिए हर्गिज़ तैयार नहीं है।'

'क्यों ?'

'यह तो मैं नहीं जानती, परन्तु इतना मैं समझती हूं कि उसका यह इनकार मामूली इनकार नहीं है।'

'कैसे ?'

'कल शाम तक मेरा खयाल था कि जिस तरह आजकल की सभी लड़कियां विवाह के नाम से घबराती हैं, उसी तरह यूथिका भी इस सम्बन्ध में जल्दी करना नहीं चाहती; परन्तु कल रात को उसका चेहरा देखकर मुझे अपना वह विचार बदल देना पड़ा।'

'तुम्हारी राय में इसका क्या कारण हो सकता है ?'

'अभी मैं कुछ भी नहीं कह सकती।'

बाप ने काफी देर तक इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। टोस्ट का शहद नीचे बहने लगा था, इससे उसके बचे हुए भाग को वह एक साथ ही मुंह में डाल गए। इस बड़े ग्रास की बदौलत उनके नकली जबड़े को अपनी जगह बनाए रखने के लिए जो संघर्ष करना पड़ा, उसने उन्हें दो-तीन मिनट तक बोलने नहीं दिया। इसके बाद बहुत धीमी आवाज़ में उन्होंने कहा, 'सुनो, एक भेद की बात मैं आज तुम्हें बताता हूं। आज वह कहने का समय आ गया है।'

'वह क्या ?'

'विनय को तुम जानती ही हो।'

'कौन-सा विनय ?'

'वही शंकरलाल कायस्थ का बेटा।'

'वह तो बिलायत गया हुआ था।'

'हां, वही विनय । पिछले साल कैम्ब्रिज से डिग्री लेने वह विलायत गया था । मालूम होता है, यूथिका और वह एक दूसरे को चाहने लगे थे ।'

'तुम्हें यह कैसे मालूम ?'

'विलायत से प्रति सप्ताह वह एक चिट्ठी यूथिका के नाम भेजता रहा । पहले तो मैंने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया । दोनों एक कालेज में पढ़ते रहे हैं, इससे उनका परिचय होने में कुछ बड़ी बात न थी । परन्तु पांच-छः महीनों की बात है कि सिर्फ कौतूहलवश मैंने उसकी एक चिट्ठी खोलकर पढ़ ली । वह सौ फी सदी एक प्रेम-पत्र था ।'

मां के हृदय को एक गहरा धक्का-सा लगा । उसकी नन्हीं-सी बेटी चोरी-चोरी किसीसे प्यार भी करने लगी है, यह बात जैसे उसके लिए अचिन्त्य और बहुत अधिक विचित्र थी । कांपती हुई-सी आवाज़ में मां ने पूछा, 'उसके बाद ?'

'वह पत्र मैंने यूथिका को नहीं दिया । इतना ही नहीं, विनय के जितने भी पत्र यूथिका के नाम आते रहे, मैंने उनमें से एक भी उसे नहीं दिया । मैंने देखा कि विनय का पत्र न मिलने से यूथिका बहुत अधिक उदास और एकान्तप्रिय-सी बन गई है । यह देखकर मुझे भी दुख हुआ; परन्तु जो बात बिलकुल असम्भव थी, उसे जड़ से ही काट डालना मैंने मुनासिब समझा । इसीसे इस सम्बन्ध में मैं एक ऐसा कार्य करने को भी लाचार हुआ, जिसे साधारण दशाओं में मैं स्वयं जालसाज़ी गिनता ।'—कहते-कहते उनका स्वर भारी हो गया ।

मां ने घबराहट भरी आवाज़ में पूछा, 'वह क्या ?'

'वह यह कि मैंने विनय द्वारा भेजे गए एक लिफाफे में से चिट्ठी तो निकाल ली और उसकी जगह अंग्रेजी में टाइप किया हुआ, 'मुझे भूल जाओ !' तथा एक अंग्रेज युवती का फोटो रख दिया । वह लिफाफा ज्यों का त्यों बन्दकर मैंने यूथिका के पास भिजवा दिया । यूथिका की इस गहरी उदासी का यही कारण है । अब तो इसका एक ही इलाज है कि यथाशीघ्र किसी अच्छे लड़के से उसका विवाह कर दिया जाए ।'

मां का चेहरा घबराहट और भय से पीला पड़ गया; परन्तु वह मुंह से कुछ भी नहीं बोली ।

बाप ने सफाई के तौर पर कहा, 'क्या कभी यह सम्भव था कि यूथिका

किसी कायस्थ को दी है ?'

समाज की इन संकुचित बाधाओं के प्रति मां का दयापूर्ण हृदय सहसा विद्रोह से भर उठा। ओह, मां होकर अनजान में ही अपनी पुत्री के कोमल हृदय को वह कितनी कठोर वेदना पहुंचाती रही है ! और यह बूढ़ा बाप कितना बेरहम है ! वह कांप उठी। कहीं यूथिका सचमुच आत्मघात कर बैठती तो !

अपने पति से कुछ भी कहे बिना वह कमरे से निकल गई और सीधे यूथिका के कमरे में पहुंची। दरवाज़ा भिड़ा हुआ ज़रूर था; परन्तु भीतर से बन्द न था। एक आवाज़ देकर वह भीतर पहुंची। अन्दर कोई नहीं था।

इसके पांच-सात मिनट बाद ही न केवल घर भर को अपितु सम्पूर्ण मुहल्ले को यह समाचार मिल गया कि यूथिका न-जाने कहां चली गई है। मेज़ पर उसकी एक चिट्ठी मिली थी, जिस पर सिर्फ इतना ही लिखा था, 'सदा के लिए प्रणाम !'

सुबह का समय था। झांसी स्टेशन से बम्बई मेल को सिगनल नहीं मिला था, इससे गाड़ी सहसा एक हरी-भरी छोटी-सी पहाड़ी के निकट धीमी होकर खड़ी हो गई। सभी तरफ सन्नाटा था। आसमान में बादल छाए हुए थे। सहसा पटरी के नज़दीक ही कोई पथिक आसावरी राग में कुहुक उठा। पास की पहाड़ी से प्रतिध्वनित होकर उसका मधुर स्वर जैसे सम्पूर्ण उपत्यका में भर गया, और तब यूथिका की नींद भी सहसा उचट गई।

यूथिका चौंककर उठ बैठी। यह घर नहीं है, रेलगाड़ी है। घर से वह पचासों मील दूर निकल आई है। ये खेत, ये पहाड़, ये जंगल—सभी कुछ यूथिका के लिए अदृष्टपूर्व हैं। ओह, वह तो घर से भागी जा रही है ! उसके घर में मातम छाया हुआ होगा। मां-बाप सभी चिन्तित होंगे। किसीको नहीं मालूम कि यूथिका कहां है। इतने भयंकर साहस का काम वह सहसा कैसे कर गई !

सैकण्ड क्लास के उस जनाने डिब्बे में सिर्फ दो ही तीन सवारियां और थीं। यूथिका ने उनकी ओर गहरी निगाह से देखा। साफ मालूम होता था कि वे सब किसी न किसीकी संरक्षता में सफर कर रही हैं, परन्तु यूथिका ? ओह, यूथिका ने अपने जीवन की नाव किस तूफान में छोड़ दी है।

पथिक गाते-गाते दूर निकल गया था; परन्तु उसकी मधुर तान किसी क्षीण

प्रतिध्वनि के समान अब भी सुनाई दे रही थी। आसमान के घने-घने और काले-काले बादलों में एक ओर से दूसरी छोर तक सहसा एक चमकीली गरज-सी घूम गई। नज़दीक की किसी झाड़ी में से एक मोर और एक मोरनी व्याकुल-से स्वर में बादलों की प्रतियोगिता का प्रयत्न करने लगे, और तब यूथिका के हृदय में तीव्र व्यथा और गहरी निराशा का तूफान-सा उठ खड़ा हुआ।

वह सपना नहीं देख रही। यह दिन का समय है, और वह जाग रही है। एक कुलीन परिवार में जन्म लेकर उन्नीस साल की एक कुमारी घर से भागी जा रही है! इस तरह! रेलगाड़ी में! बिलकुल अकेले! यूथिका भय से सिहर उठी। उसका वर्तमान महा अनिश्चित है। भविष्य एकदम अंधकारमय है, और भूत? कुमारी यूथिका को अपना बचपन पिछले जन्म की विस्मृत घटनाओं से कम पुराना नहीं जान पड़ा। जिस दुनिया में वह अकेली फांद पड़ी है, वह उसकी ज़रा भी देखी-भाली हुई नहीं। आज इस दुर्घट प्रात:काल में वह क्या पहने, क्या खाए, क्या करे, क्या सोचे—यह सभी कुछ यूथिका के लिए सहसा अगम्य हो उठा है।

सब ओर से निराश होकर यूथिका का चित्त सहसा विनय की याद से भर उठा। डेढ़ बरस पहले की घटनाएं यद्यपि उसे डेढ़ सदी पुरानी घटनाओं के समान जान पड़ने लगी थीं, तथापि उनमें इतनी मिठास थी कि क्षण भर के लिए मानो यूथिका का उद्विग्न हृदय दहल-सा गया। उन दिनों मानो संसार का सम्पूर्ण सौन्दर्य और सम्पूर्ण आकर्षण उसी विनय में आकर केन्द्रित हो गया था। अपने अपरिपक्व और अछूते हृदय की सम्पूर्ण चाह, सम्पूर्ण समर्पण-भावना और सम्पूर्ण प्रेम उसने विनय को अर्पित कर दिया था। वह विनय कितना मधुर और कितना प्यारा था! विनय विलायत गया। वह बराबर उसे लम्बी-लम्बी चिट्ठियां भेजता रहा। सुन्दर-सुन्दर फूल-पत्ते वह अपनी चिट्ठियों में अनगिनत प्रेम-चिह्नों के रूप में डालता रहा। इंग्लैण्ड की हृष्ट-पुष्ट, आकर्षक और स्वच्छन्द नवयुवतियों का जिक्र भी उसने अपने अनेक पत्रों में किया था; परन्तु सदैव वह लिखता रहा कि उसे सोते-जागते, उठते-बैठते प्रतिक्षण यूथिका का ही ध्यान रहता है। धीरे-धीरे उसके पत्र संक्षिप्त होने लगे। एक पत्र में उसने यह भी लिखा कि परीक्षा निकट आ जाने के कारण वह विस्तार से नहीं लिख सकता; परन्तु उसके बाद अचानक ही उसकी चिट्ठयां आनी बन्द हो गईं।

यूथिका के अनुनय-विनय से भरे पत्रों का भी उसने कोई जवाब नहीं दिया। और उसके बाद ?

कुछ ही समय पहले के एक सायंकाल की याद से कुमारी यूथिका का हृदय क्रोध, क्षोभ, और गहरे दुख से भर उठा। उस दिन वह कालेज से कितनी खुश-खुश घर वापस आई थी। अपने कमरे में पहुंचते ही अपनी टेबिल पर उसे गहरे नीले रंग का चिरपरिचित-सा एक सुन्दर लिफाफा दिखाई दिया था। कितनी मुद्दत और कितनी प्रतीक्षा के बाद ! उसका हृदय बल्लियों नाच उठा, जैसे उसे राज मिल गया हो। आखिर वे भूले नहीं हैं। प्रसन्नता के आवेग से कांपते हुए उसने वह लिफाफा खोला; परन्तु अन्दर से क्या निकला ! यूथिका के उल्लासपूर्ण कल्पना-जगत को भस्मसात कर देने वाली एक भयंकर चिंगारी।

उस नन्हीं-सी विद्रोहिणी का हृदय एक बार फिर से आवेशपूर्ण हो गया। पुरुष स्वभाव ही से कपटी है। वह आजन्म पुरुष का शासन स्वीकार नहीं करेगी !··· और उसके मां-बाप उसकी शादी कर देना चाहते थे ! आखिर किसी पुरुष ही से तो न। उसने अच्छा ही किया, जो घर से भाग खड़ी हुई। वह सभी तरह के कष्ट सहन कर लेगी; परन्तु अब घर वापस नहीं जाएगी, किसी भी तरह नहीं।

गाड़ी एक स्टेशन पर रुक गई और यूथिका के डिब्बे में, लाल कपड़ों में लिपटी, रोती हुई एक नववधू आकर सवार हो गई। स्टेशन पर बहुत-से लोग उसे विदा देने आए हुए थे। प्लेटफार्म पर बराती भी थे और नौशा भी था। यूथिका ने एक बार आग्नेय नेत्रों से उस लड़की की ओर देखा और उसके बाद छिपी निगाहों से भीतर को झांकते हुए नौशा की ओर।

पिछले तीन महीनों में कम से कम ३६ बार हिन्दुस्तान की डाक समुद्र और आसमान के रास्ते इंग्लैण्ड पहुंची थी, और उससे भी अधिक बार अत्यधिक उत्सुक होकर विनय डाकखानों की खाक छानता फिरा था; मगर जो कुछ वह चाहता था, वह उसे न मिला।

शुरू-शुरू में उसे चिट्ठियां न मिलने की अनेक शिकायतें आई थीं, परन्तु उसके बाद अचानक यूथिका के पत्र आने बन्द हो गए। विनय की समझ में न आया कि आखिर मामला क्या है। उसकी अक्ल कुछ भी काम न देती थी।

उसे यह भी शक हुआ था कि कहीं यूथिका के पिता ने ही तो उसे चिट्ठियां लिखने से मना नहीं कर दिया। परन्तु आज सायंकाल सारा भेद खुल गया है। यूथिका के सारे वायदे कच्चे वायदे थे। वह कमज़ोर हृदय की थी, अपनी बात पर टिक न सकी। आज की डाक से विनय के भाई का पत्र आया है, उससे मालूम हुआ है कि यूथिका की सगाई पक्की हो गई और कुछ समय के बाद उसका विवाह भी हो जाएगा। यदि यूथिका ऐसी लड़कियां भी इतनी आसानी के साथ अपने मां-बाप के सामने झुक जा सकती हैं, तब तो किसी भी लड़की के साहस और व्यक्तित्व पर भरोसा ही नहीं किया जा सकता। बेचारे विनय के लिए यह कितना दारुण समाचार है।

तो क्या सचमुच यूथिका ने बिना किसी तरह की बाधा उपस्थित किए ही अपनी सगाई स्वीकार कर ली ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। विनय का जी नहीं मानता। उसकी यूथिका इतनी कमजोर और व्यक्तित्व-विहीन तो नहीं थी।

एडिनबरा के सुप्रसिद्ध सामुद्रिक सैरगाह की रेत पर पड़ी पत्थर की एक बेंच पर लेटे-लेटे विनय खयाली घोड़े दौड़ाने लगा। यूथिका जैसी साहसी लड़की को अपनी इच्छा के प्रतिकूल विवाह कर लेने के लिए बाधित करने में उसके मां-बाप ने कितनी नृशंसता और क्रूरता से काम लिया होगा। ओह, यदि वह आज अपने देश में होता ! कहीं ऐसा तो नहीं कि लज्जावश यूथिका अपने इस आकर्षण का जिक्र तक भी अपने मां-बाप से न कर सकी हो। इस दशा में क्या यह ठीक न होगा कि वह स्वयं यूथिका के पिता को हवाई-डाक से सारी बातें साफ-साफ लिख दे।

परन्तु यह कैसे सम्भव है ? यूथिका न तो अब दुधमुंही बच्ची है और न वह इतनी दब्बू ही है। फिर यदि ऐसी बात होती भी, तब भी वह उसे चिट्ठी तो लिख ही सकती थी। यदि वह इशारा भी कर देती, तो विनय यह नौबत कभी न आने देता। नहीं, ऐसी बात नहीं है। विनय अभागा है, और यहां भी उसका अभाग्य ही बाज़ी मार ले गया है। यूथिका उसे भूल गई है। उसने कहीं ठीक ही पढ़ा था कि लड़कियां किसी तरह का खतरा नहीं उठा सकतीं। प्रेम की खातिर पुरुष अंधेरे में कूद सकता है, बड़े से बड़ा साहस का काम कर सकता है, परन्तु नारी ऐसे मामलों में सदा फूंक-फूंककर ही कदम रखती है। वह कभी खतरा नहीं उठाती। विनय आज विस्मृत है। वह आज निर्वासित-सा है।

अभागा है। लेटे-लेटे सहसा विनय की आंखों में आंसू भर आए। समुद्र में ज्वार आना शुरू हो गया था, और उसका पानी बढ़कर विनय की बेंच तक आ गया था। सहसा एक लहर आई और विनय के बालों पर छींटें डालती हुई नीचे की ओर लौट गई। विनय चौंककर उठ बैठा और उसने देखा कि आसपास का रेतीला मैदान जलमग्न हो गया है, और वहां कोई भी व्यक्ति मौजूद नहीं है।

उस जगह से चल देने के इरादे से विनय ने अपने बूट खोले और अपने नंगे पैर समुद्र के जल में डाले। पर वह उठकर खड़ा नहीं हुआ, उसी बेंच पर बैठा ही रह गया। जैसे उसमें किसी कार्य के लिए कोई उत्साह ही बाकी न बच रहा हो। बचपन ही से विनय अपने साथियों में सबसे अधिक क्रियाशील और उत्साही गिना जाता रहा है; परन्तु इस दारुण आघात ने जैसे उसके जीवन के स्रोत को ही मूर्च्छित बना दिया है। वह घर जाकर भी क्या करेगा ? पानी बढ़ रहा है, बढ़ने दो। पत्थर की ये बेंचें आखिर वह नहीं जाएंगी। ओह, यूथिका कितनी निष्ठुर है। वह मुझे इस तरह, बिलकुल अचानक भूल क्यों गई ?

सहसा विनय को याद आया कि उसके स्वदेश को वापस जाने के दिन नज़दीक आ रहे हैं। वह परीक्षा दे चुका है और परिणाम की प्रतीक्षा में है; परन्तु अब वह हिन्दुस्तान वापस जाकर क्या करेगा ? यह दारुण समाचार सुन लेने के बाद विनय के लिए अपने देश में कौन-सा आकर्षण बाकी बच रहा है। नहीं, अब वह हिन्दुस्तान नहीं जाएगा। उसके नाम बैंक में काफी रुपया जमा है, वह अब दुनिया भर का चक्कर काटेगा। मां-बाप को सूचना दिए बिना वह संसार के अज्ञात प्रदेश में, जब तक जी चाहेगा, भटकता फिरेगा।

लहरों का एक जबर्दस्त उफान-सा उठा और उसकी पैन्ट को बुरी तरह भिगोकर वापस लौट गया और विनय उसी तरह बेंच पर लेटा रहा।

अपने परिवार और अपनी बिरादरी में अत्यधिक बदनाम हो जाने पर भी दो ही वर्षों में कुमारी यूथिका का नाम देश की एक अत्यन्त श्रेष्ठ और लोकप्रिय अभिनेत्री के रूप में बच्चे-बच्चे की जबान पर पहुंच गया है। नृत्य और अभिनय का शौक उसे बचपन से ही था और दो वर्षों में वह इन दोनों कलाओं में अत्यन्त प्रवीण बन गई थी। दुनिया उसे मिस लता के नाम से जानती है। उसने किसीकी नहीं सुनी, अपने बाप की नहीं सुनी और मां की भी नहीं

सुनी। उसे मालूम था कि वह शिक्षिता और सुन्दरी है। उसे यह भी भरोसा था कि उसपर जबर्दस्ती कोई नहीं कर सकता—न तो कानून की रूह से और न व्यवहार ही में। अपनी रक्षा के लिए उसमें काफी साहस है। उसने निश्चय कर लिया था कि वह आज़ादी से रहेगी और सफल अभिनेत्री बनकर सम्पूर्ण पुरुष-समाज को बेवकूफ बनाने का प्रयत्न करेगी।

यूथिका का अनुपम नृत्य दर्शक के हृदय में भक्ति और समर्पण की भावना उत्पन्न नहीं करता। उसके कलापूर्ण अंगविक्षेप का अछूता और अतुलनीय सौन्दर्य दर्शकों के हृदय पर बरछी-सी चला जाता है। उसका मधुरतम स्वर वासना को उद्दीप्त करने वाला है, हृदय को कोमलता से भर देने वाला नहीं। बम्बई के विविध रंगमंचों पर यूथिका प्रायः प्रदर्शन देती रहती है। जिस दिन उसका अभिनय होता है, रंगशाला में सभी जमातों और सभी आयुओं के नागरिकों की भीड़ टूट पड़ती है। परन्तु रंगमंच पर उत्तेजना की बाढ़-सी ले आने वाली वही यूथिका रंगशाला के बाहर किसी पुरुष से सीधे मुंह बात भी नहीं करती। न वह लोगों द्वारा भेजा गया कोई उपहार स्वीकार करती है और न किसीको मिलने की ही अनुमति देती है। इस नियम का एक भी अपवाद नहीं। गैरजिम्मेवार नौजवानों के दिलों में वासना की आग सुलगाकर उनका तमाशा देखना जैसे उसका व्यसन बन गया है।

अगस्त मास की एक रात। हौर्नबी रोड की एक सुप्रसिद्ध रंगशाला में मिस लता अपना एक अद्भुत और नया नृत्य दिखा रही हैं। हाल खचाखच भरा हुआ है। करीब दो हजार आंखें मिस लता के परिपुष्ट, अत्यन्त कोमल और आदर्श सुन्दर अर्धनग्न अंगों के कलापूर्ण संचालन को तन्मय होकर देख रही हैं। मिस्री, भारतीय और पाश्चात्य नृत्यों के सम्मिश्रण से यूथिका ने सम्मोहन नृत्य नाम के एक नए नृत्य का निर्माण किया है, और बम्बई में आज पहली बार उसका प्रदर्शन किया जा रहा है। यह सम्मोहन नृत्य महाभारत के सम्मोहनास्त्र से कम भयंकर नहीं। बम्बई के चुने हुए समृद्ध और कुलीन नागरिक मुग्ध होकर मिस लता का यह अद्भुत नृत्य देख रहे हैं।

एक बार। दो बार। शोर हुआ, तीसरी बार। यूथिका को बाध्य होना पड़ा और बाईं ओर के परदे की ओट से धीरे-धीरे वह रंगमंच के मध्य भाग की ओर अग्रसर हुई।

सहसा यूथिका की निगाह हाल के दाहिनी ओर वाले ऊपर के बक्स में बैठे एक व्यक्ति पर पड़ी और एक चीख, मानो हठात्, उसके कंठ से निकल गई। ओह, यह तो विनय है! इतना दुर्बल और इतना कान्ति-विहीन! और उसके साथ जो अंग्रेज़ रमणी बैठी है, वह?

परन्तु यूथिका तो इस समय स्टेज पर है। संसार की कोई बड़ी से बड़ी घटना भी इस समय उसे विचलित नहीं कर सकेगी। लगभग उसी क्षण यूथिका ने यह अभिनय-सा किया, जैसे यह चीख भी उसके नृत्य का एक भाग ही थी। दर्शकों के मस्तिष्क पर हल्का-सा आघात पहुंचाकर यूथिका पुनः अपनी कलापूर्ण रचना के प्रदर्शन में व्यस्त हो गई।

यूथिका के आह्लादशून्य और मशीन की तरह काम करने वाले अन्तःकरण में अचानक भावों का एक प्रबल आवेग-सा उठ खड़ा हुआ, जिसने इस आकर्षक नृत्य को सचमुच अलौकिक बना दिया। मुग्ध-सी होकर नृत्य के साथ ही साथ वीणा-विनिन्दित स्वर में वह एक गीत भी गुनगुनाने लगी। सभी दर्शक व्याकुल होकर अश-अश कर उठे।

परन्तु यह हालत अधिक देर तक नहीं रही। यूथिका के हृदय का उफान जैसे भाटे की-सी दशा में आ गया। उसके चेहरे पर थकावट और साथ ही साथ गहनतम वेदना के भाव व्यक्त होने लगे। नृत्य क्रमशः शिथिल पड़ता गया और एक क्षण आया, जब वह मूर्च्छित होकर रंगमंच पर गिर पड़ी। गिरते हुए भी अपने सहज स्वभाव से वह दर्शकों की निगाहों को धोखा दे गई। वे कुछ भी नहीं समझे और परदा गिरने के साथ ही साथ सम्पूर्ण रंगशाला तालियों की तड़तड़ाहट से गूंज उठी।

परदा फिर से उठा और अब अन्य अभिनेत्रियां रंगमंच पर आईं। विनय अपने स्थान पर अर्द्ध मूच्छित-सी दशा में बैठा था और अस्पताल में उसकी परिचर्या करने वाली एक करुण हृदया नर्स उसके निकट बैठी उसकी दशा देखकर परेशान हो रही थी। सहसा बक्स के द्वार पर किसीके थपथपाने की आहट सुनाई दी। विक्षिप्त मस्तिष्क विनय तो जैसे कुछ भी नहीं सुन पाया, परन्तु नर्स उठी और द्वार खोलकर उसने पूछा, 'कौन है?'

नर्स के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि अभिनय की वही भड़कीली पोशाक पहने मिस लता स्वयं उनके बक्स के द्वार पर खड़ी है। नर्स

ने आदरपूर्वक कहा, 'भीतर आ जाइए !'

'नहीं, धन्यवाद ! आप कृपया अपने पतिदेव को एक मिनट के लिए इधर भेज सकेंगी ?'

नर्स भौंचक्की-सी रह गई । वह इस बात का प्रतिवाद करने ही वाली थी कि विनय उठकर द्वार पर आ पहुंचा । जैसे वह इसी बात की प्रतीक्षा में था। अपने आभा-विहीन मुरझाए-से चेहरे पर जबर्दस्ती मुस्कराहट की छाया लाने का प्रयत्न करते हुए विनय ने कहा, 'तुमने तो कमाल कर दिया यूथ ! परन्तु तुम्हारे पतिदेव इस सबको कैसे बर्दाश्त करते हैं ?' और इसके साथ ही साथ पगले विनय पर जैसे स्फूर्ति और आह्लाद का नशा-सा छा गया। वह बकने लगा, 'अपने विवाह की सूचना मेरे पास भेज देने में तुम्हारा क्या हर्ज था यूथ ?'

यूथिका का चेहरा भय से पीला पड़ गया । यह कैसा निर्लज्ज मज़ाक है ! क्या यह वही विनय है, जो शालीनता का पुतला बना रहता था ? अपने हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला जबर्दस्ती दहकाकर, अन्दर की ओर इशारा करते हुए उसने कहा, 'तुमने भी तो अपने विवाह पर मुझे निमन्त्रित नहीं किया था विनय !'

वह नर्स इन दोनों को बक्स के द्वार के बाहर छोड़कर स्वयं अपनी जगह जा बैठी थी । विनय ने उसकी ओर लक्ष्य करके कहा, 'रोज़ के सम्बन्ध में पूछती हो ? वह तो देवी है ।'

यूथिका को लगा, जैसे इस बेहूदे युवक ने शराब का ओवर डोज़ ले रखा है, तभी तो इस निर्लज्जता के साथ वह ऐसे घृणित मज़ाक कर रहा है। तो भी उसने पूछा, 'विलायत से कब लौटे ?'

'कल ही !'

'कहां ठहरे हो ?'

विनय बेवकूफों की तरह अट्टहास कर उठा, 'मेरा निवास-स्थान पूछकर क्या करोगी ? हः हः हः !'

यूथिका कांप गई । इसी समय ड्रेसिंग रूम में हरी रोशनी की घंटी बजी और यूथिका समझ गई कि उसकी वहां जरूरत है। विनय को प्रणाम तक किए बिना, वह अत्यधिक उद्विग्न और निराशभाव से लौट चली । जैसे वह अपने

प्रियतम की समाधि से लौट रही हो। उसकी आंखों में हठात् आंसू भर आए और जी खुलकर रो लेने के लिए मचल पड़ा।

विनय फिर लौटकर अपने बक्स में नहीं गया। नर्स समझती थी कि बाहर खड़े रहकर वह मिस लता से बातें कर रहा है। परन्तु विनय बम्बई का पैरेड मैदान पार करता हुआ समुद्र-तट की ओर बढ़ता चला जा रहा था। आसमान में बादल घिर आए थे। पश्चिम आकाश में कहीं छिपकर बैठा हुआ इन्द्र जैसे इन बादलों में बिजली की आतिशबाज़ी चला रहा था। सभी ओर अन्धकार व्याप्त था। दूर पर बम्बई की चौड़ी-चौड़ी सड़कों के किनारों की बत्तियां प्रकाश-मयी झण्डियों की कतारों के समान दीख पड़ती थीं। रह-रहकर ज़ोरों से बादल गरज उठते थे और अभागा विनय अस्पताल की बजाए चुपचाप समुद्र-तट की ओर बढ़ा चला जा रहा था।

पगली

मशहूर है कि गरमियों के दिनों में एक गंजा मनुष्य धूप से परेशान होकर ताल के एक पेड़ के नीचे गया। वहां बैठकर वह अभी आराम से दो-चार श्वास भी न लेने पाया था कि अचानक पेड़ पर से एक पका हुआ ताड़ ठीक उसकी खोपड़ी पर गिरा। अभागी फातिमा सचमुच इसी मसल का शिकार हुई। अरब के सैयद खानदान में उसका जन्म हुआ था। उसका पति एक अच्छे स्वभाव का, कुलीन और हृष्टपुष्ट नवयुवक था। धन की भी उसके परिवार में कोई कमी न थी, परन्तु वह स्वभाव से कुछ सनकी था। विदेश-यात्रा की धुन उसपर बचपन से ही सवार थी। मां-बाप से आजाद होते ही वह फातिमा को लेकर ईरान के रास्ते अफगानिस्तान होते हुए हिन्दुस्तान चला आया। यहां आकर भी उसे चैन नहीं मिली। बादशाह की फौज में एक उच्च स्थान प्राप्त कर और थोड़े ही समय में बादशाह की कृपा-दृष्टि पाकर भी वह दिल्ली छोड़कर बंगाल के लिए चल दिया। बंगाल में उन दिनों नवाब अमीरअली शाह हुकूमत करता था। फातिमा का पति इसी नवाब की फौज में भर्ती हो गया, परन्तु थोड़े ही दिनों में वह एक लड़ाई में अचानक गोली खाकर मर गया।

अपनी जन्मभूमि से हजारों मील दूर एक बिलकुल अपरिचित देश में आकर अकस्मात् फातिमा का सर्वस्व लुट गया। वह अब सर्वथा निस्सहाय हो गई। उसकी गोद में इस समय छः मास का कासिम नामक बच्चा भी था। घाव पर नमक यह कि मुर्शिदाबाद के शाही महलों के निकट रहने के कारण उस अनिंद्य सुन्दरी फातिमा पर बदचलन नवाब की वासनापूर्ण कुदृष्टि पड़ गई। फातिमा के पति की मृत्यु का समाचार राजधानी में पहुंचते ही फातिमा को आश्वासन देने के बहाने से इसके निवास-स्थान पर पहुंचकर नवाब अमीरअली शाह ने जो कुत्सित हाव-भाव प्रदर्शित किए, उनसे वह अरबी भद्र महिला बहुत अधिक

भयभीत हुई। नवाब के स्वभाव से परिचित बहुत-से लोगों का तो यहां तक विश्वास था कि युद्धक्षेत्र में फातिमा के पति की मृत्यु, दुश्मन की गोली द्वारा नहीं, बल्कि नवाब की गुप्त प्रेरणा से ही हुई है। इस बात की भनक मिलते ही फातिमा ने उसी रात को लुक-छिपकर मुर्शिदाबाद छोड़ दिया।

मुर्शिदाबाद छोड़ देने पर भी अभाग्य ने फातिमा का साथ न छोड़ा। पांच-सात दिन तक नन्हें-से कासिम को गोद में लिए हुए वह पागलों की तरह बंगाल के हरे-भरे गांवों में भटकती फिरी। वह भीख नहीं मांगती थी, उसे यह काम आता ही न था। यदि उसे कोई कुछ खाने को देता, तो वह चुपचाप ले लेती, देने वाले को धन्यवाद तक भी न देती थी। कुछ दिनों तक इसी तरह निरुद्देश्य भटकते रहने के अनन्तर वह एक सांझ को वीरपुर गांव में पहुंची। आबादी की दृष्टि से वीरपुर एक अच्छे-खासे कस्बे के समान था। इसके अधिकांश निवासी हिन्दू थे, परन्तु अब फातिमा की दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान दोनों एक समान थे। रात के समय फातिमा ने जिस हिन्दू परिवार में आश्रय ग्रहण किया, उस परिवार के स्वामी ने उसके साथ माता के समान व्यवहार किया। फातिमा खूब निश्चिन्त होकर सो गई। यहां तक तो सब ठीक था, परन्तु आधी रात के समय जब सम्पूर्ण ग्रामवासी निश्चिन्त होकर सोए हुए थे, अचानक गांव के उसी मुहल्ले में, जहां फातिमा ठहरी हुई थी, आग लग गई। फूंस और सरकंडों के प्रयोग की अधिकता के कारण आग एक साथ फैलने लगी। सारा गांव जाग उठा। तेज़ लपटों की प्रचण्ड भों-भों ध्वनि के साथ ही स्त्री और बच्चों की चिल्लाहट ने आधी रात की शान्त वेला में एक विचित्र और भयानक दृश्य उत्पन्न कर दिया।

इस गांव के जमींदार एक वृद्ध ब्राह्मण थे। गांव के बाहर एक छोटे-से बगीचे में उनका घर था। गांव से 'आग! आग!' का ऊंचा शोर सुनकर वृद्ध ब्राह्मण जाग उठे। गांव के ऊपर अग्नि की प्रचण्ड लपटें देखकर घबराई हुई आवाज़ में उन्होंने पुकारा, 'हरिहर! हरिहर!' हरिहर उनकी एकमात्र सन्तान था। इस तेजस्वी और प्रतिभाशाली बालक की आयु अभी केवल १२ बरस की ही थी। हरिहर अपने नाम की पुकार सुनकर 'क्या है पिताजी?' कहकर जाग उठा। परन्तु अपने प्रश्न का उत्तर उसे अपने पिता से सुनने की आवश्यकता न रही। वह एक क्षण भी विलम्ब न कर अग्निकाण्ड की ओर भाग खड़ा

हुआ। वृद्ध महोदय के निषेध की उसने कोई परवाह नहीं की।

गांव में पहुंचते ही हरिहर को सबसे पूर्व जो कुछ दिखाई दिया, उसे देखकर उसका दयापूर्ण हृदय दहल उठा। उसने देखा कि ५०-६० मनुष्यों की भीड़ में एक अपरिचित—परन्तु भद्र महिला चिल्ला-चिल्लाकर रो रही है। उसे गांव के दो आदमियों ने पकड़ रखा है, इस अवस्था में भी वह धधकती हुई आग में घुसने के लिए हाथ-पैर मार रही है। उसकी चिल्लाहट में से कुछ भी समझ सकना आसान नहीं था, इसलिए हरिहर ने पास ही खड़े हुए एक आदमी का नाम लेकर पूछा, 'क्यों बेचू, माजरा क्या है?'

बेचू एक नौजवान किसान था। अभी तक उसकी नज़र अपने मालिक के पुत्र पर नहीं पड़ी थी। हरिहर की आवाज़ सुनते ही उसे नम्रतापूर्वक प्रणाम-कर बेचू ने कहा, 'मालिक, यह परदेसी महिला कल सांझ को आकर हलधर के घर में ठहरी थी। इस अग्निकाण्ड में हड़बड़ाकर निकलते हुए इसका छोटा-सा बच्चा हलधर के घर के आंगन में गिर पड़ा। जल्दी में हलधर इसके बच्चे को ढूंढ़े बिना ही इसे वहां से बाहर खींच ले आया। अब यह अभागिनी अपने बच्चे के लिए ही रो रही है। यह तो आप जानते ही हैं कि हलधर के घर का आंगन चारों ओर से कमरों से घिरा हुआ है और इन कमरों की छतें भयानक रूप से जल रही हैं। खासकर दरवाज़े के पास जानवरों के लिए जो छप्पर पड़ा हुआ था, वह तो बड़े ही उग्र रूप में जल रहा है।'

बेचू की बात सुनकर हरिहर को सारा मामला समझने में देर न लगी। पास के एक मकान को आग से बचाने के लिए कुछ लोग उसपर पानी डाल रहे थे। इनमें से एक आदमी का घड़ा लेकर हरिहर ने अपने ऊपर उलट लिया। इसके बाद कुछ भी कहे-सुने बिना वह तीर की तेजी से हलधर के जलते हुए मकान में प्रविष्ट हो गया। गांव के सब लोगों में मृत्यु के समान सन्नाटा छा गया। सब लोग हतबुद्धि-से खड़े रह गए। यहां तक कि अभागिनी फातिमा का आसमान को दहला देने वाला करुण क्रन्दन भी थोड़ी देर के लिए शान्त हो गया। जो लोग आग बुझाने का कार्य कर रहे थे, वे भी दम भर के लिए रुक गए। जिस प्रकार खिली चांदनी में कभी-कभी कोई तारा टूटकर अपनी चमक से चांद के प्रकाश को भी मात कर देता है और लोग सौ काम छोड़कर उसकी

तरफ देखने लगते हैं, उसी प्रकार हरिहर के इस अग्नि-प्रवेश के सम्मुख यह भयंकर अग्निकाण्ड भी लोगों को कुछ देर के लिए फीका जान पड़ा।

ठीक इसी समय हरिहर के वृद्ध पिता ने घटनास्थल पर प्रवेश किया। वहां पहुंचते ही आग के धुंधले प्रकाश में उन्होंने भीड़ में से हरिहर को ढूंढ़ना शुरू किया, परन्तु हरिहर के कहीं दिखाई न देने पर वह व्याकुल हो उठे। उन्होंने चीखती हुई आवाज़ में पुकारा, 'हरिहर ! हरिहर !!'

फातिमा अभी तक सहमी हुई बैठी थी। अब इस बूढ़े जमींदार को 'हरिहर, हरिहर' पुकारते हुए सुनकर उसके हृदय का दुख फिर से उमड़ पड़ा। उसने समझा शायद मेरी तरह ही इस बूढ़े का बच्चा भी आग में ही रह गया है। वह भी अत्यन्त करुण स्वर में चिल्ला उठी, 'कासिम ! कासिम !!'

इसी वक्त स्वयं हलधर ने आकर अपने मालिक से हरिहर के साहस की सम्पूर्ण कहानी कह सुनाई। वृद्ध ब्राह्मण यह समाचार सहन नहीं कर सका, वह वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा।

हलधर के घर के फाटक में से बड़ी मात्रा में गहरे, काले और नीले रंग का धुआं निकल रहा था। गांव के सब लोग किंकर्तव्यविमूढ़ होकर इसी धुएं की तरफ देख रहे थे। अभी पांच-चार मिनट भी न बीते होंगे कि फाटक में से धुएं के साथ ही साथ नवयुवक हरिहर अस्पष्ट रूप में बाहर निकलता हुआ दिखाई दिया। अगले ही क्षण लोगों ने स्पष्ट रूप से देखा कि हरिहर धुएं से निकलकर गली में आ गया है। परन्तु लोग अभी प्रसन्नता में भरकर चिल्लाने भी न पाए थे कि हरिहर गली में लड़खड़ाकर गिर पड़ा ! मालूम होता है, धुएं से उसका दम घुट रहा था। गली के दोनों ओर के मकान जल रहे थे, उसमें घुसना भी आसान नहीं था, परन्तु हरिहर को अपनी आंखों के सामने मृत्यु के मुंह में पड़ा देखकर ग्रामीण नवयुवकों का उत्साह भी जाग उठा। अनेक किसान जान पर खेलकर गली में घुस गए। बड़ी शीघ्रता से हरिहर को आग से दूर एक सुरक्षित स्थान पर ले आया गया। उसकी छाती पर से कपड़ा हटाकर बालक कासिम को लोग उसकी माता के पास ले गए। कपड़ों का व्यवधान होने के कारण कासिम अभी तक बेहोश नहीं हुआ था। मालूम होता है, वह बहुत देर से रो रहा था। रोते-रोते उसका गला बैठ गया था। लोगों ने कासिम को फातिमा के सुपुर्द किया। पुत्र के उष्ण प्रेम के स्पर्श से माता के हृदय को कल्पनातीत ठंडक

के सामनेवाले खुले आंगन में खड़े थे। अभी-अभी उन्होंने सैकड़ों भिक्षुकों को देवी की भिक्षा अपने हाथ से बांटने का कार्य समाप्त किया था। इसी समय कासिम वहां आ पहुंचा। उसने देखा कि पण्डितजी आज कुछ उदास प्रतीत हो रहे हैं। आज से पहले उसने हरिहर शर्मा को कभी उदास या निराश नहीं देखा था। खासकर इस पुण्य-कार्य के बाद तो उनके सुन्दर मुख पर सदैव सरल मुस्कराहट दिखाई दिया करती थी। कासिम ने अनुमान किया कि शायद उनकी उदासी का कारण उनकी रैयत का बढ़ता हुआ कष्ट है। उसने पास आकर पुकारा, 'काका !'

हरिहर शर्मा अन्यमनस्क-से होकर रिक्त दृष्टि से नीचे की ओर देख रहे थे। भाई से भी प्रिय कासिम की अचानक आवाज़ सुनकर वह चौंक उठे। कासिम के समीप आकर उन्होंने पूछा, 'क्या है कासिम ?'

कासिम ने कहा, 'आज उदास क्यों हो ?'

'नहीं तो' कहकर पण्डित हरिहर शर्मा ज़रा मुस्करा दिए, परन्तु ठीक उसी समय उनकी आंखों ने उन्हें धोखा दिया। उनसे दो बूंद आंसू टपककर उनके कपोलों को भिगोते हुए नीचे की ओर लुढ़क गए। इन आंसुओं ने पण्डितजी की 'नहीं तो' का सीधा प्रतिवाद कर दिया।

कासिम का दिल मसोस उठा। पण्डितजी के कंधे पर अपना हाथ रखते हुए उसने बड़े प्रेम से कहा, 'काका ! तुम भी रोओगे, तो फिर इन हज़ारों लोगों को ढाढ़स बंधाने वाला कौन रहेगा ?'

पण्डितजी ने जवाब दिया, 'भाई कासिम, मै अपने लिए नहीं रोता ?'

पण्डितजी के इस उत्तर से कासिम को विश्वास हो गया कि उनकी उदासी का कारण उनकी प्रजा के बढ़ते हुए कष्ट को छोड़कर और कुछ नहीं है, अतः कासिम ने मुस्कराते हुए कहा, 'औरों के लिए मुझे रोने दो। इस कष्ट का सारा बोझ मुझपर डालकर तुम हलके हो जाओ।'

पण्डितजी हंसे नहीं। उन्होंने कहा, 'कासिम, तुम मेरा मतलब नहीं समझे।'

कासिम ने गम्भीर होकर पूछा, 'तो फिर ?'

पण्डितजी ने उत्तर दिया, 'भाई ! मालूम होता है कि मैं अब तुमसे शीघ्र ही जुदा कर दिया जाऊंगा।'

कासिम पर मानो किसीने सहसा तमंचे का वार कर दिया। बहुत ही

विचलित होकर अपने दोनों हाथ काका के गले में डालते हुए उसने कहा, 'यह कैसे काका !' पण्डितजी को अपनी बाहुओं में जकड़कर वह मानो कह रहा था—हम दोनों को अलग कर ही कौन सकता है !

पण्डितजी ने उत्तर दिया, 'नवाब ने परसों मुझे अपने दरबार में हाजिर होने का हुक्म दिया है। कुछ ही क्षण पूर्व उसका आदमी मुझे परवाना...'

कासिम ने बीच में ही टोककर कहा, 'सम्भवतः नवाब आपसे कोई सलाह-मशविरा करना चाहता होगा।'

पण्डित हरिहर शर्मा ने कहा, 'नहीं, यह बात नहीं है कासिम ! मेरे बुलाने का कारण भी उस चिट्ठी में साफ-साफ लिखा हुआ है। मुझपर यह इलजाम लगाया गया है कि मैं दीनदार मुसलमानों को जबर्दस्ती काफिर बनाता हूं। अपने इलाके की दो मस्जिदों को जान-बूझकर मैंने तुड़वा दिया है।'

कासिम गरम हो उठा। वह बड़बड़ाया, 'उस बेईमान की इतनी मजाल ! नवाब क्या बना है, मानो खुदा भी उसका गुलाम है। शैतान कहीं का !'

पण्डितजी ने कहा, 'शान्त रहो कासिम ! क्रोध करने से क्या बनेगा ?'

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद कासिम ने उत्तेजित होकर कहा, 'काका ! मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा।' शायद वह दिल में नवाब से कुश्ती लड़ने के मनसूबे बांध रहा था।

परन्तु पण्डितजी ने आज्ञा के ढंग पर उत्तर दिया, 'नहीं, तुम मेरे साथ न जा सकोगे। तुम भी यदि मुर्शिदाबाद ही चलोगे, तो यहां की देखभाल कौन करेगा ?'

कासिम उदास होकर चुप हो गया। पण्डितजी ने देखा कि उसकी बालकों के समान पवित्र आंखों में आंसू भरे हुए हैं। उनके मुंह से सहसा निकला 'हे भगवान् ! तेरी सृष्टि में इतनी विषमता क्यों है ?'

'मैं इन काफिरों को सूअर से भी नापाक समझता हूं'—शराब पीकर बदमस्त हुए एक दरबारी ने नवाब अमीरअलीशाह से कहा।

एक और मौलवी ने हंसकर जवाब दिया, 'तब तो इन काफिरों को मारना हराम माना जाएगा।' इसपर खूब कहकहा पड़ा। नवाब ने कहा, 'खूब, खूब !'

इसी समय वजीर ने कहा, 'शाहंशाह, वीरपुर के काफिरों का सरदार, वह

विरहमन, अभी तक क्यों नहीं आया ?'

अमीरअली ने बड़े सन्तोष के साथ कहा, 'वह आज वक्त पर हाज़िर न हो, तब तो और भी अधिक अच्छा है। हमें कोई झंझट ही न करना पड़ेगा।'

वज़ीर ने कहा, 'इस काफिर के बाप-दादा को जहांपनाह के दाहिनी ओर कुर्सी दी जाती थी; हुज़ूर यदि आज उसे इस फर्श के नीचे जूतियों पर ही खड़ा रहने के हुक्म दें, तो बहुत अच्छा हो।'

नवाब ने कहा, 'बहुत ठीक।'

ठीक इसी समय पण्डित हरिहर शर्मा ने अपने दो सेवकों के साथ दरबार में प्रवेश किया। वह एक रेशमी धोती और दुपट्टे को छोड़कर अन्य कोई वस्त्र नहीं पहने थे। उनके पैरों में खड़ाऊं पड़ी हुई थीं। अपने जनेऊ को उन्होंने ठीक उसी तरह कान पर चढ़ा रखा था, जिस तरह उन दिनों पेशाब जाते हुए चढ़ाया जाता था। मालूम होता है, वह पहले से ही नवाब से पूरी तरह लड़ाई करने के लिए तैयार होकर आए थे। उनके माथे पर एक बड़ा-सा तिलक लगा हुआ था।

पण्डितजी के दरबार में पहुंचते ही दरबारियों में सन्नाटा छा गया। सब दरबारी कौतूहल के साथ उनके इस विचित्र स्वरूप की ओर देखने लगे। पण्डित हरिहर शर्मा जब चबूतरे की सीढ़ियों पर चढ़ने लगे, तब एक चोबदार ने आकर उन्हें वहीं खड़े रहने का हुक्म सुनाया। पण्डितजी ने तीक्ष्ण दृष्टि से उस चोबदार की ओर देखा। वह सहम गया। पण्डितजी खड़ाऊं तक बिना उतारे, नवाब के ठीक सामने जा खड़े हुए। यह देखकर वजीर के क्रोध और विस्मय का ठिकाना न रहा। पण्डितजी से इसका बदला लेने के लिए उसे खुजली उत्पन्न होने लगी; परन्तु स्वयं नवाब को भी आश्चर्य से पण्डितजी की ओर ताकते हुए देखकर उसकी कुछ कहने की हिम्मत न हुई।

पण्डितजी ने नवाब से सलाम-प्रणाम आदि कुछ भी नहीं कहा। फर्श पर ठीक सीधा समकोण बनाते हुए वह नवाब के सामने जाकर खड़े हो गए। एक बार चारों ओर दृष्टि फेरकर उन्होंने कड़ी आवाज़ में वजीर से पूछा, 'मेरे लिए कुर्सी कहां है ?'

नवाब अमीरअलीशाह ने आज तक कभी ऐसा नज़ारा न देखा था। वह विस्मय से आंखें फाड़-फाड़कर हिन्दुस्तान के इस 'ब्राह्मण' नामक विचित्र जीव

को देख रहा था। अन्य दरबारियों ने भी जब देखा कि पण्डितजी ने खड़ाऊं फटकारते हुए आकर सीधा वजीर को डांटना शुरू किया है, तब उनकी हंसी न रुकी।

इसी समय वजीर ने पण्डितजी से कहा, 'तुम्हारा स्थान इस फर्श के नीचे है।'

पण्डितजी ने बड़े क्रोध से डपटकर कहा, 'चुप रहो, नीच ! अधर्मी !'

दरबारियों के लिए हंसी रोकना कठिन हो गया, वे खांस-खांसकर हंसी रोकने लगे।

वजीर अपना यह तीव्र अपमान सहन न कर पण्डितजी को सज़ा देने के लिए नीचे उतरने ही वाला था कि नवाब ने उसे ऐसा करने से रोका।

पण्डितजी और अधिक देर तक प्रतीक्षा न कर सके। वह अपना रेशमी दुपट्टा फर्श पर डालकर उसीपर बैठ गए।

अब नवाब ने कहा, खड़े होकर मेरे सवालों का जवाब दो !'

पण्डितजी ने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया, 'पहले मेरे लिए कुर्सी मंगवा दो, तब तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूंगा।'

पण्डितजी का यह उत्तर सुनकर नवाब को भी क्रोध आ गया। वह दो-एक मिनट तक पण्डितजी की ओर ठीक उसी तरह देखता रहा, जिस तरह शिकारी जीव अपने आखेट की ओर ताका करते हैं। इसके बाद उसने गरजकर कहा, 'खड़े होते हो या नहीं ?'

परन्तु इस समय तक पण्डितजी ने एक और कार्य आरम्भ कर दिया था। वह आंखें बन्द कर धीरे-धीरे गीता के श्लोकों का पाठ कर रहे थे :

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहं इति मन्यते ॥

नवाब की बात को मानो उन्होंने सुना ही नहीं। दरबारियों की हंसी गुम हो गई, वे चकित और स्तम्भित होकर इस अभूतपूर्व दृश्य की ओर देखने लगे।

इसी समय वज़ीर ने नवाब से कहा, 'इस काफिर को यहीं पर कोड़ों से पिटवाइए।'

अब पण्डितजी का ध्यान इस दुनिया से बहुत ऊपर उठ चुका था। भारतवर्ष की निर्भीक ब्रह्म-शक्ति का वह पुंजस्वरूप हरिहर शर्मा गीता के पाठ में मग्न होकर इस मानापमान के आडम्बर से अब बहुत ऊपर उठ गया था।

नवाब ने अपने पाशविक क्रोध को चरितार्थ करने की इच्छा से पण्डित हरिहर शर्मा के इस भौतिक शरीर का अपमान करने के लिए चार दरबारियों को उन्हें बिल्कुल नंगा कर डालने का हुक्म दिया, परन्तु वह मूर्ख था। जब दरबारियों ने पण्डितजी के पवित्र शरीर का स्पर्श किया, तब तक उनका शरीर प्राण-शून्य हो चुका था ! पण्डितजी शायद विषपान कर दरबार में आए थे।

पण्डित हरिहर शर्मा जब अपने गांव से मुर्शिदाबाद की ओर चले थे, तब कासिम उन्हें कुछ दूर तक पहुंचाने आया था। विदा होते समय पण्डितजी ने उसे छाती से लगाकर दो-चार उपदेश दिए थे। अन्त में पण्डित जी की आज्ञा से कासिम उनसे जुदा हुआ था। जुदाई के समय पण्डित जी की आंखों में नीरव आंसू ही थे, परन्तु कासिम तो बच्चों की तरह से फूट-फूटकर रो रहा था।

घर लौटकर कासिम ने बूढ़ी फातिमा से काका के मुर्शिदाबाद जाने का विस्तृत हाल सुनाकर कहा, 'अम्मा, मुझे उम्मीद नहीं कि अब इस जिन्दगी में काका के दर्शन फिर कभी नसीब हों। मालूम नहीं, मेरे इतना कहने पर भी काका मुझे अपने साथ मुर्शिदाबाद क्यों नहीं ले गए। उनकी बात मानना अपना धरम समझकर मैं यहां वापस तो लौट आया हूं, परन्तु मेरा दिल कह रहा है कि मेरा यहां रह जाना अच्छा नहीं हुआ। अम्मा, मुझे बताओ कि इस हालत में मैं क्या करूं ?'

बूढ़ी, अरब महिला फातिमा अपने प्राणों के एकमात्र अवलम्ब कासिम की बात बड़े ध्यान से सुन रही थी। बात सुनते हुए कासिम के मुख की ओर वह एक विचित्र दृष्टि से देख रही थी। उस दृष्टि में पागलपन की कुछ अजीब झलक थी। इसके द्वारा शायद वह अपने इस सन्देह का उत्तर कासिम के चेहरे पर से खोज रही थी कि कहीं मेरा बहादुर कासिम मौत से तो नहीं डरता। कासिम की अन्तिम बात सुनकर उसे अपने सन्देह का सन्तोषजनक उत्तर स्वयं प्राप्त हो गया। उसने कासिम के प्रश्न का उत्तर देने में एक क्षण का भी विलम्ब न किया। फातिमा ने बड़े स्थिर स्वर में कहा, 'बेटा ! जाओ, इसी वक्त तुम मेरा आशीर्वाद लेकर मुर्शिदाबाद चले जाओ। मैं तुम्हें यह आज्ञा दे रही हूं, इसलिए अपने काका की बात टालने का पाप तुमपर नहीं आएगा। प्यारे कासिम ! तुमने मेरा दूध पीया है। उस दूध को कलंकित मत करना। एक दिन तुम्हारे

काका, तुम्हें ढूंढ़ने के लिए जलती हुई ज्वालाओं में घुसे थे। बेटा कासिम, तुम भी आज ठीक उन्हींकी तरह अपने काका को सकुशल वापस लौटा लाने के लिए मुर्शिदाबाद जाओ।'

बूढ़ी फातिमा इतना कहकर चुप हो गई। ये बातें कहते-कहते जोश के कारण उसकी आवाज़ कांपने लगी थी।

कासिम उसी समय अपनी माता के पैर छूकर मुर्शिदाबाद के लिए प्रस्थान कर गया। जब तक कासिम दिखाई देता रहा, तब तक फातिमा की आंखों से एक बूंद पानी भी न गिरा; परन्तु ज्यों ही कासिम उसकी आंखों से ओझल हो गया, त्यों ही बूढ़ी फातिमा 'देवी' से 'माता' बन गई—उसकी आंखों से आंसुओं का एक सोता फूट पड़ा। बूढ़ी फातिमा के इस दर्द को केवल वे राजपूत माताएं ही समझ सकती हैं, जो हंसती-हंसती अपने बेटों को केसरिया बाना पहनाकर रणभूमि में भेजा करती थीं।

मुर्शिदाबाद से तीन मील दूर एक बरसाती नाले की सूखी तलहटी में रेत पर एक धधकती हुई चिता जल रही थी। चिता के आसपास पूरी तरह सन्नाटा था। केवल अग्नि की बड़ी-बड़ी लपटें 'धू-धू' ध्वनि कर आसमान को चाटने का प्रयत्न कर रही थीं। रात अभी शुरू ही हुई थी। आसमान से चतुर्दशी का चांद सफेद चांदनी बरसा रहा था। नाले के पास वाले जंगल में गीदड़ चिल्ला रहे थे। चिता के अन्दर से बार-बार चिटकने की आवाज़ इस निस्तब्धता को और भी भयंकर बना रही थी। इसी चिता के निकट बिल्कुल अकेला खड़ा हुआ कासिम चिता की ओर देखते रहकर गम्भीर चिन्ता में निमग्न था। मुर्शिदाबाद के पांच-सात ब्राह्मण पं० हरिहर शर्मा की चिता को आग देकर शहर को वापस लौट गए थे; परन्तु कासिम उनसे आंख बचाकर फिर चिता की ओर लौट आया था।

कासिम एकटक स्थिर दृष्टि से आंखों में आंसू भरकर इस चिता की ओर देख रहा था। वह सोच रहा था, 'इस बदचलन दुनिया में इस प्रकार के फरिश्ते खुदा क्योंकर पैदा कर देता है! यहां तो फरेबी और मक्कारी ही कामयाब होती है। शायद ऐसी पाक रूहों को खुदा महज इसीलिए पैदा करता हो कि ये लोग दुनिया के सितम और गुनाहों को अपनी छाती पर झेलकर इस पापी

संसार के पापों का बोझ हल्का किया करें।' फिर वह सोचने लगा, 'एक दिन काका ने इसी प्रकार की तेज ज्वालाओं में, अपनी इच्छा से घुसकर मेरी रक्षा की थी। वह छाती, जिसपर चिपकाकर काका मुझे आग से बाहर लाए थे, आज स्वयं आग में भस्म हो रही है।'

इस अन्तिम भाव ने कासिम को उद्विग्न कर दिया। उसने सोचा, 'काका मुझे बचाने में कामयाब हुए थे, परन्तु मैं उन्हें बचा न सका। मुझे उन्होंने इसका अवसर ही नहीं लेने दिया ! अब और कुछ कर सकूं या न कर सकूं, उनके साथ जान तो दे सकता हूं।'

विचारधारा यहां आकर समाप्त हो गई। स्वर्ग की एक सच्ची और पवित्र किरण कासिम चिता में कूद पड़ा। चिता के अन्दर से मांस और मज्जा के चटखने की आवाज़ और भी अधिक तीक्ष्ण हो गई, परन्तु उसे सुनने वाला वहां कोई नहीं था !

सन् १७१९ के अकाल के अगले ही साल एक पगली 'बेटा कासिम ! क्या काका को ढूंढ़ लाया ?' चिल्लाती हुई मुर्शिदाबाद के आसपास के गांवों में घूमा-फिरा करती थी। स्त्रियां उसे देखकर भय से भाग जाती थीं, बच्चे उसपर धूल फेंकते थे, जवान उसकी हंसी उड़ाते थे, गांव के आवारागर्दों ने अपनी उदासी मिटाने का साधन बना रखा था; परन्तु जो थोड़े-से लोग उस बूढ़ी फातिमा की सच्ची कहानी जानते थे, वे आंखों में आंसू भरकर उस 'पगली माता' के सम्मुख श्रद्धा से सिर झुकाया करते थे।

◇ ◇ ◇

काका, तुम्हें ढूंढ़ने के लिए जलती हुई ज्वालाओं में घुसे थे । बेटा कासिम, तुम भी आज ठीक उन्हींकी तरह अपने काका को सकुशल वापस लौटा लाने के लिए मुर्शिदाबाद जाओ ।'

बूढ़ी फातिमा इतना कहकर चुप हो गई । ये बातें कहते-कहते जोश के कारण उसकी आवाज़ कांपने लगी थी ।

कासिम उसी समय अपनी माता के पैर छूकर मुर्शिदाबाद के लिए प्रस्थान कर गया । जब तक कासिम दिखाई देता रहा, तब तक फातिमा की आंखों से एक बूंद पानी भी न गिरा; परन्तु ज्यों ही कासिम उसकी आंखों से ओझल हो गया, त्यों ही बूढ़ी फातिमा 'देवी' से 'माता' बन गई—उसकी आंखों से आंसुओं का एक सोता फूट पड़ा । बूढ़ी फातिमा के इस दर्द को केवल वे राजपूत माताएं ही समझ सकती हैं, जो हंसती-हंसती अपने बेटों को केसरिया बाना पहनाकर रणभूमि में भेजा करती थीं ।

मुर्शिदाबाद से तीन मील दूर एक बरसाती नाले की सूखी तलहटी में रेत पर एक धधकती हुई चिता जल रही थी । चिता के आसपास पूरी तरह सन्नाटा था । केवल अग्नि की बड़ी-बड़ी लपटें 'धू-धू' ध्वनि कर आसमान को चाटने का प्रयत्न कर रही थीं । रात अभी शुरू ही हुई थी । आसमान से चतुर्दशी का चांद सफेद चांदनी बरसा रहा था । नाले के पास वाले जंगल में गीदड़ चिल्ला रहे थे । चिता के अन्दर से बार-बार चिटकने की आवाज़ इस निस्तब्धता को और भी भयंकर बना रही थी । इसी चिता के निकट बिल्कुल अकेला खड़ा हुआ कासिम चिता की ओर देखते रहकर गम्भीर चिन्ता में निमग्न था । मुर्शिदाबाद के पांच-सात ब्राह्मण पं० हरिहर शर्मा की चिता को आग देकर शहर को वापस लौट गए थे; परन्तु कासिम उनसे आंख बचाकर फिर चिता की ओर लौट आया था ।

कासिम एकटक स्थिर दृष्टि से आंखों में आंसू भरकर इस चिता की ओर देख रहा था । वह सोच रहा था, 'इस बदचलन दुनिया में इस प्रकार के फरिश्ते खुदा क्योंकर पैदा कर देता है ! यहां तो फरेबी और मक्कारी ही काम-याब होती है । शायद ऐसी पाक रूहों को खुदा महज इसीलिए पैदा करता हो कि ये लोग दुनिया के सितम और गुनाहों को अपनी छाती पर झेलकर इस पापी

संसार के पापों का बोझ हल्का किया करें।' फिर वह सोचने लगा, 'एक दिन काका ने इसी प्रकार की तेज ज्वालाओं में, अपनी इच्छा से घुसकर मेरी रक्षा की थी। वह छाती, जिसपर चिपकाकर काका मुझे आग से बाहर लाए थे, आज स्वयं आग में भस्म हो रही है।'

इस अन्तिम भाव ने कासिम को उद्विग्न कर दिया। उसने सोचा, 'काका मुझे बचाने में कामयाब हुए थे, परन्तु मैं उन्हें बचा न सका। मुझे उन्होंने इसका अवसर ही नहीं लेने दिया! अब और कुछ कर सकूं या न कर सकूं, उनके साथ जान तो दे सकता हूं।'

विचारधारा यहां आकर समाप्त हो गई। स्वर्ग की एक सच्ची और पवित्र किरण कासिम चिता में कूद पड़ा। चिता के अन्दर से मांस और मज्जा के चटखने की आवाज़ और भी अधिक तीक्ष्ण हो गई, परन्तु उसे सुनने वाला वहां कोई नहीं था!

सन् १७१९ के अकाल के अगले ही साल एक पगली 'बेटा कासिम! क्या काका को ढूंढ़ लाया?' चिल्लाती हुई मुर्शिदाबाद के आसपास के गांवों में घूमा-फिरा करती थी। स्त्रियां उसे देखकर भय से भाग जाती थीं, बच्चे उसपर धूल फेंकते थे, जवान उसकी हंसी उड़ाते थे, गांव के आवारागर्दों ने अपनी उदासी मिटाने का साधन बना रखा था; परन्तु जो थोड़े-से लोग उस बूढ़ी फातिमा की सच्ची कहानी जानते थे, वे आंखों में आंसू भरकर उस 'पगली माता' के सम्मुख श्रद्धा से सिर झुकाया करते थे।